कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाव्य का साहित्यिक अध्ययन

A Literary Study of Parijatharan Maha Kavya Written by Kavi Umapati Diwedy

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डि० फिल उपाधि हेतु प्रस्तुत)
शोध प्रबन्ध

●

प्रस्तुत कर्त्री
मंजरी वर्मा
एम० ए० संस्कृत

●

निर्देशक
पं० राज कुमार शुक्ला
प्रवक्ता संस्कृत

●

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

नवम्बर १९८७

" अपूर्वं यद्वस्तुप्रथयति विना कारण कलाँ,
जगद्गावप्रख्यं निजरसभरात् सारयति च ।
क्रमात् प्रख्योपाख्याप्रसर सुभगं भासयति त-
त् सरस्वत्यास्तवं कवि सहृदयाख्यं विजयते ।।"

—अभिनवगुप्त लोचन
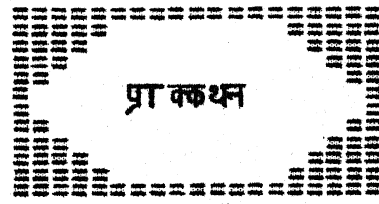
प्राक्कथन

"भाषासु मुख्या मधुरा दिव्या गीर्वाण भारती एवच्च संस्कृत नाम देवी वागन्वाख्याता महर्षिभि" इत्यादि। विरुदावलियों से प्रशंसित इस सुरभारती के साहित्य के प्रति मानवमात्र का सहज अनुराग होना स्वाभाविक ही है। संस्कृत साहित्य अत्यन्त विशालकाय एवं वैभवपूर्ण है। बाल्यकाल से ही मेरी संस्कृत के प्रति स्वाभाविक रुचि थी। इसी कारण मैंने एम०ए० की परीक्षा भी इसी विषय में उत्तीर्ण की।

जीवन के उच्चावच परिस्थितियों के झंझावातों तथा आर्थिक वैषम्य से समय-समय पर पीड़ित किये जाने पर भी धैर्य मात्र धन तथा पूज्य गुरुजनों के निरन्तर आशीर्वाद के कारण इस विषय में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने में सफल हुई।

हृदय में शोधकार्य की अभिलाषा उत्पन्न होने पर ही मैं अपने प्रयत्न में सफल हो सकी। मैं अपना इच्छित विषय पाकर आनन्द विभोर हो उठी, और यथा सम्भव प्रयास आरम्भ कर दिया। इस प्रकार किसी अज्ञय संस्कार की प्रेरणा प्राप्त कर एवं अपनी पूज्य माता श्रीमती शशि प्रभा की संस्कृत भाषा की साधना विषयणि इच्छा का समादर करके इस भाषा की विशेष एवं उच्च शिक्षा हेतु मैंने अपने को समर्पित करने का प्रयास किया। स्नातकोत्तर कक्षा उत्तीर्ण के अनन्तर नियति की विडम्बना के वातचक्र में भ्रमित होना भी स्वाभाविक था और ऐसे समय में पूज्य माँ ने अपनी प्रेरणा प्रदान कर शोधकार्य के प्रति अपने अनुराग को प्रदर्शित किया। शोधकार्य के प्रारम्भिक चरण में पर्याप्त उत्साह एवं लगन होने के कारण कार्य में आपेक्षित तीव्रता रही।

संस्कृत के काव्यों का यह वैशिष्ट्य है कि वे अपनी मनोहर पदावली द्वारा सहृदय के हृदय को हठात् आकृष्ट कर लेते हैं । किन्तु आलोचक उसमें अलंकार, रस गुणादि का भली-भांति विवेचन करने में तत्पर रहते हैं । यही कारण है कि किसी रचना के साहित्यिक विवेचन को प्रस्तुत करने के लिए ये तत्त्व अनिवार्य हैं ।

इसके अतिरिक्त किसी विषय के साहित्यिक अध्ययन के पूर्व उसकी प्रारम्भिक स्थिति का ज्ञान भी रखना चाहिए । इसी कारण से निबन्ध को विविध अध्यायों में विभक्त किया गया है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाव्य पर साहित्यिक अध्ययन है । इस निबन्ध में कुल मिलाकर पांच अध्याय हैं ।

इस निबन्ध को लिखते समय जिन ग्रन्थ रत्नों की सहायता मिली है उन सबके प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ । जिन विद्वज्जनों एवं सहयोगियों के सहयोग से आज यह इस रूप में समक्ष आया उनका उल्लेख करना मैं अपना पावन कर्तव्य समझती हूँ । सर्वप्रथम मैं अपने मार्गदर्शक एवं निर्देशक पं० राजकुमार शुक्ला के प्रति अपनी हार्दिक भावनाएं समर्पित करती हूँ तथा उनके प्रति विशेष आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे हर सम्भव प्रयास द्वारा मेरी सहायता पर कार्य में पर्याप्त श्रम का गुरुतर भार उठाया तथा विशेष सहायता प्रदान की है । शोध निर्देशक पं० राजकुमार शुक्ला के विस्तृत ज्ञान एवं शिष्यों के प्रति दयालुता भाव के कारण ही मैं अपने शोध-प्रबन्ध को पूर्ण कर सकी हूँ । उनके तथा अन्य विभागीय गुरुजनों के प्रति मैं आभार प्रदर्शित करती हूँ ।

इसके अतिरिक्त घर के शैक्षिक वातावरण एवं पूज्या माँ के अनुराग, वात्सल्य और सुविधाओं में भी यह शोध प्रबन्ध पनप सका है । शोधनिर्देशक पं0 राजकुमार शुक्ला के सहज एवं कुशल निर्देशन में मुझे निरन्तर कार्यरत रहने की प्रेरणा मिलती रही है । उनके व्यक्तित्व की उदारता मधुर भाषण तथा शब्दोद्गार एवं स्नेहिल पर्यवेक्षक की याद दिलाते रहेंगे ।

पुस्तकीय एवं हस्तलेख सहायता विशेषतः साहित्य सम्मेलन गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ प्रयाग, प्रयाग विश्वविद्यालय पुस्तकालय के परिसर में ही प्राप्त हुई हैं । अतः मैं पुस्तकालयों एवं संग्रहालयों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने शोध सामग्री के संकलन में अपेक्षित सुविधा प्रदान की ।

विद्या अपार निधि है । अतः इस विषय के प्रस्तुतीकरण में कुछ त्रुटियाँ अवश्य रह गई होंगी । शोध-प्रबन्ध एक बौद्धिक प्रयास होता है । प्रयास में त्रुटियाँ सम्भावित हैं । टंकणकार्य में भी त्रुटियाँ अपक्षित हैं कहीं-कहीं विचार असंगत भी हो सकते हैं । अतः विभिन्न सुधीजनों द्वारा प्राप्त होने वाले परामर्श एवं विचारों का सदैव स्वागत है तथापि मुझ अकिंचना द्वारा जो कुछ प्रयास किया गया है वह सदसद् विवेकी विदग्ध सहृदय मनीषियों के समक्ष सविनय प्रस्तुत हैं ।

कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाव्य के प्रथम अध्याय में कवि का परिचय तथा कवि का व्यक्तित्व और कृतियों का मूल्यांकन है । द्वितीय अध्याय में पारिजातहरण महाकाव्य के कथानक का वर्णन किया गया है साथ ही यह भी बताया है कि इक्कीस सर्गात्मक पारिजातहरण एक पूर्ण काव्य है । तृतीय अध्याय में "कथानक का मूल स्रोत" तथा "कथानक लिखने का मूल उद्देश्य क्या है" यह बताया है तथा कथानक के औचित्य पर भी प्रकाश डाला है।

चतुर्थ अध्याय में पारिजातहरण महाकाव्य के शास्त्रीय पाण्डित्य का वर्णन है । पारिजातहरण महाकाव्य में कवि उमापति का पाण्डित्य अत्यन्त विस्तृत है । इस सबका विवेचन इस अध्याय में किया गया है । पंचम अध्याय में काव्य के काव्यात्मक सौन्दर्य का वर्णन है, जिसमें प्रकृति-वर्णन, गुण, दोष, रीति, अलंकार, रस, छन्द आदि का विवेचन है ।

और अन्त में --

"कृतात्मनां तत्पदृशां च मादृशो"
जनोअभिसन्धिं कइवावभोत्स्यते"

-- "आचार्य भामह"

निवेदिका
मंजरी वर्मा
+ मंजरी वर्मा

कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाव्य

प्रथम अध्याय

कवि-परिचय

"जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम् ।।

देवरिया ज़िले के पकड़ी नामक गांव में कश्यप गोत्रीय पं० बच्चूराम द्विवेदी के छोटे भाई पं० कान्ताराम द्विवेदी के पुत्र पं० उमापति द्विवेदी का जन्म हुआ । इनकी मां का नाम मर्यादा देवी था । इन्होंने श्री पं० नच्छेदराम शर्मा उपनाम से प्रसिद्ध गुरु पं० उमापति से काशी में रहकर शिक्षा प्राप्त की । इसके अनन्तर श्री भवानीदत्त दीक्षित श्री रामभवन उपाध्याय एवं अन्त में अनन्त श्री स्वामी मनीष्यानन्द के चरणों में बैठकर भी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर उन्हें मिला । इसी समय 1921 ई० में देश में असहयोग आन्दोलन जब प्रारम्भ हुआ तो अपने गुरुदेव पं० नच्छेदराम शर्मा के भतीजे तथा अपने सहपाठी काशीनाथ द्विवेदी के साथ आचार्य परीक्षा के अन्तम भाग को त्याग कर आंदोलन में सम्मिलित हो गए । इसी बीच उनके पिता का अपने परिवार में बंटवारा हो गया । अपने पिता के एकमात्र पुत्र होने के नाते घरेलू सहायता के लिए पिता ने इनको घर बुला लिया । वहीं रहकर क्षेत्रीय श्री कुबेरनाथ विद्यालय में अध्यक्ष श्री जगदानन्द ब्रह्मचारी द्वारा नियुक्ति पाकर अध्यापन करने लगे और उसके बाद तमकुही नरेश जित्प्रतापशाहि ने उनको अपने यहां बुलाकर उनका पर्याप्त सम्मान किया और अपने यहां ही रखा । तमकुही नरेश के स्वर्गवासी हो जाने के बाद वापिस अपने घर आ गए और वहीं रहकर पारिजातहरण महाकाव्य की रचना की । महाभारत के समान इस काव्य का अंगीरस भक्ति अथवा शान्त है । अन्य रस अंग रूप में यहां वहां निष्पन्न हुए हैं । गौडीय और वैदर्भी रीति का काव्य में दर्शन होता है । ओजस्वी शब्द विन्यास उदार अलंकार - योजना सर्वथा अभिनव-भाव सर्वथा अनवद्यसंवाद इस काव्य की विशेषताएं हैं ।

"अनेक अनेक अर्थ देने वाले पदों से युक्त जो वचन है अगर उसमें जगत् को पवित्र करने वाले भगवान हरि का गुणगान नहीं किया और मानव का यशोगान किया है तो व्यास के अनुसार यह वाणी पाप है " ऐसा मानकर ही कवि उमापति ने अपने काव्य के लिए इस विषय को चुना । इसके अतिरिक्त सन् 1921 के असहयोग आन्दोलन के बाद देश में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार को रोकने के लिए तथा मानव का मन हरि में लगाने के लिए ही उन्होंने परिजातहरण महाकाव्य की रचना की । इसके अतिरिक्त पुत्र प्राप्ति के लिए उन्होंने हरिवंश पुराण का अध्ययन किया था, तभी से उन्होंने इस विषय पर विचार किया और महाकाव्य लिखने को सोचा ।

अपनी वाणी रूप संतान को भी प्रसन्न करने के लिए उन्होंने कुछ स्तोत्र तथास्तुति की रचना की । इन्होंने सुप्रभात् नाम का एक संस्कृत पत्र भी प्रकाशित किया अपने अध्ययनकाल में ही इन्होंने विद्वानों को प्रसन्न करने वाली शिवास्तुति लिखी । जिससे इन्हें "कविपति" की पदवी से विभूषित किया गया । इन सबके अतिरिक्त पारिजातहरण महाकाव्य की रचना की जिसके फलस्वरूप बहुत प्रसिद्धि मिली और अन्त में कवि उमापति द्विवेदी के शब्दों में :-

श्री पं0 सुरति नारायण मणित्रिपाठी (सदस्य लोक सेवा संघ, उत्तर प्रदेश) दम्पत्ति के कर कमलों में निम्नांकित पद्य के द्वारा सादर यह पारिजातहरण महाकाव्य समर्पित करता हूँ ।

"पदस्थाः सन्त्यन्ये कवि न सुहृदः के न सुधियः ।
परन्त्वेतैरस्मत्स्थितिरनुसत्र्री न विदिता ।।
मयाऽतस्त्वत्संगा द्विविधगुणहार्दाहृतहृदा ।
प्रसादोऽयं दत्तस्तव सुरतिनारायण करे ।।

"कविपतिः"

काव्य में कवि का व्यक्तित्व तथा कृतियाँ:-

कवि का हृदय उसके काव्य में झलकता है । छिपाने का लाख प्रयत्न करने पर भी कवि का अपना सच्चा व्यक्तित्व काव्य में प्रकट हो ही जाता है और यदि प्रयत्न करके कोई कवि अपने स्वभाव के विरूद्ध कोई काव्य रचना करे भी तो वह उसकी अत्यन्त निम्न श्रेणी की कृति होगी क्योंकि वह उसके हृदय के सच्चे भावों से रहित होगी । उत्तम काव्य तो वही है जिसमें कवि के हृदय का सच्चा स्वर सुनाई पड़ता है । राजप्रशस्तियाँ इसलिए अधिक लोकप्रिय न हो सकीं कि उन्हें कविगण धन कीर्त्यादि की लिप्सा से दूसरों को प्रसन्न करने के लिए (विशेष स्वार्थवश) लिखा करते थे । सच्चे काव्य में यदि सूक्ष्मदृष्टि से देखा जाय तो कवि का सच्चा स्वरूप दिखाई देता है । कवि-उमापति के पारिजातहरण महाकाव्य में वैसे तो भगवान श्रीकृष्ण की कथा है किन्तु काव्य की सूक्ष्म समीक्षा करते समय कवि के निजी व्यक्तित्व की कथा भी मिल जाती है ।

उनके ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने वेदों, दर्शनों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता, पुराण ज्योतिष, व्याकरण, काव्यशास्त्र आदि का गम्भीर अध्ययन किया था, उनके पारिजातहरण महाकाव्य में नीति संबंधी कहावतें भरी पड़ी हैं तथा जीवन की अनेक समस्याओं पर उन्होंने विचार किया है । दान, व्रत, धर्म, गृहस्थाश्रम, जीवन की क्षण-भंगुरता, यज्ञ, जीवन-मुक्ति, प्रेम-भावना, भक्ति-भावना, संस्कृत भाषा, सतीत्व आदि अनेक विषयों पर उन्होंने महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है ।

कवि उमापति बड़े धार्मिक एवं गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे। सांसारिक सुखों को वे हेय समझते थे। पारिजातहरण महाकाव्य के कई सर्गों में ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिससे कवि की इस भावना का पता चलता है।[1]

हे मुक्तिनाथ! अपने शरीर पर रेंगते क्षुद्रातिक्षुद्र कीटों के समान संसार के सारे जीवों को विशेष आस्था न होने के कारण जब तक आप उपेक्षित किए रहते हो, तब तक ये संसार में आते जाते बन्धनों में पड़े रहते हैं। जब अपनी इच्छा से ही आपकी दृष्टि के वे लक्ष्य बन जाते हैं, तब बन्धन रहित मुक्त हो जाते हैं, यही उनका मोक्ष है।[2]

कवि उमापति द्विवेदी की रचनाएं उनके व्याख्या पर प्रकाश डालती हैं। वे उच्चकोटि के दार्शनिक थे और ईश्वर में तथा उसकी भक्ति में उनका विश्वास था।[3] परन्तु वे किसी एक देवता के कट्टर भक्त नहीं थे। उन्होंने "शिवस्तुति" ग्रन्थ लिखा जिसमें शिव की स्तुति की गई है। उनके पारिजातहरण महाकाव्य के पंचम तथा द्वादश सर्ग में भगवान कृष्ण की स्तुति की गई है तथा अट्ठारहवें सर्ग में भगवान शिव की स्तुति की गई है। अतः सभी देवताओं के प्रति उनमें आदर की भावना थी। इससे उनके जीवन

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 3-20

2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 21

3 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग -3-32

पारिजातहरण महाकाव्य -अष्टादश सर्ग -

की आस्तिक्य वृत्ति का परिचय मिलता है । शास्त्रों के प्रति उन्हें श्रद्धा थी । उन्होंने अपने पारिजातहरण महाकाव्य में नीतिशास्त्र[1] तथा धर्मशास्त्रों[2] के कई उदाहरण सिद्धान्तों को लेकर कई श्लोक उद्धृत किए हैं ।

"साधन शक्ति रूप तीन शक्तियां, छः गुण, चार साधन, तीन सिद्धियां एवं तीन उदय इत्यादि विषयों को एकस्थ करने वाली उक्तियों के संग्रह ग्रन्थ ही नीतिशास्त्र कहे जाते हैं । अच्छे लोग साम, दान, दण्ड, भेद चार रूप उपायों से ही सारे पारस्परिक जगद व्यवहारों का पालन करते हैं, ऐसा नीतिशास्त्र में कहा गया है ।[3]

अतः कवि ने मोक्ष रूपपरम पुरुषार्थ को श्रेष्ठ माना है, मोक्ष देने वाली सप्तपुरियों में मोक्षोत्पादन में यह मुख्य द्वार है । लौकिक सुखों का उपभोग कर मानव-अलौकिक सुख {मोक्ष} की प्राप्ति कर लेता है । इसके सेवन से मनुष्य संसार बंधन से रहित हो मुक्ति के भागी हो जाते हैं ।[4]

कवि उमापति को जीवन में मुनियों, सत्पुरुषों तथा महात्माओं की सी शान्त एवं निरपराध वृत्ति प्रिय थी । पारिजातहरण महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में कवि ने बताया है - सन्तों का दर्शन निष्पाप ही प्राप्त करते हैं । जिसे सज्जन अनुगृहीत करते हैं या अपनी सेवा सत्कारादि गुणों से जो स्वयं महात्माओं को अपनी ओर खींच लेते हैं वही वास्तव में गृह हैं । महात्माओं का शुभ दर्शन देव का दिया {उन्नति का प्रमाण रूप} पुरस्कार है । निरपेक्ष

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशमसर्ग - 42, 43
  पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 53, 54

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग

3 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग -73

4 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 38 - 41

महात्मा जिसकी अपेक्षा कर दर्शन दे तब तो कहना ही क्या है । सज्जनों का सभाजन ही उस उन्नति का प्रमाण है । तेजस्वियों के दर्शन से तो बाह्य मालिन्य दूर हो जाता है सबका अगम्य आन्तर मालिन्य दूर करने वाला आपका दर्शन विलक्षण है ।[1]

कुटिम्बियों को महात्माओं के दर्शन से बढ़कर दूसरी वस्तु कमनीय नहीं होती । प्रस्ताव के बिना सन्तों का दर्शन कराने वाला कर्म रूप बीज ही सर्वोत्तम है ।[2] इनका कर्तव्य सरस तथा सभी लोगों के द्वारा सरलतापूर्वक समझा जा सकता है । वे अतिथि-सत्कार को गृहस्थ का सबसे प्रधान कर्तव्य मानते हैं ।[3] गृहस्थ से इतर कुछ भी अपेक्षा जिसे है, वह अतिथिमात्र भिक्षु हैं । जो मनुष्य इस गृहस्थ आश्रम के सभी सुख दूसरों को न भुगाकर अपने भोगते हैं वे इस लोकोपकारिणी संस्था के सर्वस्व हड़प जाने वाले महान पापी हैं । गृह की कृतार्थता प्रत्येक जीवों की सेवा से होती है ।[4]

कवि उमापति में उदात्त वृतियां थीं तथा वे गुणों के प्रशंसक थे । सर्वथा प्रसन्न करने वाली सुन्दर गन्धवाली, सरस भावों के विकास से रमणीय, सन्दर्भ शुद्धि, पद-विन्यास की स्वच्छता पक्ष में सम्यक् गुथन की सुरीति तथा पूर्णरूपेण पुष्ट(माधुर्यादि)गुण, सूत्र से युक्त, प्रसादवाली, भली-भाँति अलंकृत तथा संस्कार से शोभित माला के समान आपकी यह वाणी हृदय में रख लेने से किसकी श्री को नहीं बढ़ा देगी ।[5]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 111 - 117
2 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 105-- 108
3 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 104
4 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 113 - 115
5 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 57

वे उत्कृष्ट गुणों वाली वस्तु की खुलकर प्रशंसा करने के पक्ष में थे । उन्होंने पारिजातहरण महाकाव्य में कृष्ण तथा रुक्मिणी के गुणों की प्रशंसा की है ।[1] भगवान कृष्ण तो सर्वेश्वर है और समस्त जगत् का पालन तथा नियंत्रण करने वाले हैं । उन्हीं की इच्छा से यह संसार चलता है । संसार में सभी प्राणी उन्हीं की इच्छा से पैदा होते हैं तथा मरते हैं ।

भगवान की ज्येष्ठा पत्नी रुक्मिणी की प्रशंसा नारद के द्वारा की गई है - हे चितिद्रे । तू महान ईश्वर को भाँपने वाली माया हो । सारे शक्तिधारियों की सर्वसाधारण शक्ति हो । हे ईश्वरि । इस परम पुरुष को यदि तुम चेतना न दो तो यह निर्गुण पुरुष अपनी गति किसी से वर्णित नहीं करा सकता है । यह सारे जीव-लोक इस जगती तल में चेतना रूपिणी तुम्हीं को अवलम्बित की जा रही है अर्थात सबकी चेतना की मूलाधार तुम्हीं हो ।[2]

कवि उमापति का पाण्डित्य प्रशंसनीय है । उनके द्वारा सम्पूर्ण भारतीय दर्शनों का गम्भीर अध्ययन किया गया था । सांख्य के तो वे पण्डित थे । सांख्य, वेदान्त, न्याय, ज्ञानयोग तथा कर्मयोग आदि अन्य मतों से उनके पाण्डित्य का पता चलता है । पारिजातहरणमहाकाव्य के कई सर्गों से कवि के इस पाण्डित्य का बोध होता है । सांख्य की प्रकृति सत्व, रजस्, और तमस्, तीनों गुणों को धारण किये हुए है ।[3] यह जड़ा प्रकृति सांख्य मतानुसार 24 तत्व रूप में फैली हुई है ।[4] पृथ्वीआदि, पंचभूतों के रहते हुए भी प्रपंच के

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग

2 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 36, 37, 38

3 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 13

4 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 10

विचित्रता का जो भान है इसका आदि कारण आपकी इच्छा है ।[1] संसार की प्रकृति जन्य मलिनता यमुना को और परमपुरूष की श्वेत विभूति गंगा को उनके पदारविन्द की प्रेमिका सरस्वती एक में मिला रहीं है ।[2] नारायण की मूल प्रकृति तथा नारायण की आठ पटरानियों को आठ प्रकृतियों के समान कहा गया है ।[3]

न्याय सिद्धांतों के अनुसार पारिजातहरण महाकाव्य में कहा गया है असाध्य संसार के अदभूत विधान उत्पत्ति, विनाशाली कार्य बिना कारण नहीं हो सकते ।[4] कारण गुणानुरूप ही कार्य सिद्धि प्रसिद्धि है । किसी भी कार्य के कारणों की लघुता या गुरुता जीव के चित्तगत बोध का अनुसरण करती है।[5]

वेदांत के अद्वैतवाद का सिद्धांत पारिजातहरण महाकाव्य के सप्तम् सर्ग में बताया गया है जैसे रज्जु में सर्पज्ञान भ्रमात्मक है वैसे ही अद्वितीय ब्रह्म में सारा द्वैत प्रपंच भ्रमात्मक है ।[6] ये अन्नमय कोष को प्रचुर मात्रा में उत्पन्न करते हैं ।[7] कृष्ण को मायावी कहा गया है ।[8] इस काव्य में कृष्ण को निर्लेप अद्वैत बताया गया है ।[9]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 15
2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग -44
3 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 18
4 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 7
5 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग 63, 64
6 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तम सर्ग 38
7 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 20
8 पारिजताहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 82
9 पारिजताहरण महाकाव्य - एकादशं सर्ग - 87

वेदों तथा उपनिषदों का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था । उन्होंने अपने पारिजातहरण महाकाव्य में यज्ञ का विशद वर्णन किया है । यज्ञ की इतिकर्तव्यता पर भी विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है ।[1] वैदिक ऋचाओं का भी वर्णन किया है तथा उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों[2] का भी वर्णन किया है । पारिजातहरण महाकाव्य के सत्रहवें सर्ग में योग-क्षेम[3] के बारे में बताया गया है जिससे पता चलता है कि उन्होंने उपनिषदों का भी अध्ययन किया था ।

इसके अतिरिक्त उन्हें पाक - शास्त्र, पक्षि-विज्ञान, ज्योतिषशास्त्र, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र पुराण शास्त्र, कामशास्त्र आदि का भी ज्ञान था । वे इन सब शास्त्रों के पण्डित थे । उनके पारिजातहरण महाकाव्य में इन शास्त्रों से संबंधित उदाहरण भरे पड़े हैं । उन्होंने इन शास्त्रों का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया था ।

पारिजातहरण महाकाव्य में कवि उमापति के विभिन्न शास्त्रों के पाण्डित्य को बोध होता है । काव्य के बारहवें सर्ग में गरुड़ के प्रसंग में स्थान-स्थान पर कवि ने ऐसी सूक्ष्म बातों का उल्लेख किया है जो उनके पक्षि विज्ञान की विशेषताओं की द्योतक है । कवि ने गरुड़ के पंखों का वर्णन, चोंच का वर्णन तथा शरीर का वर्णन किया है । उड़ते समय वह गरुड़ चन्द्रमा तथा सूर्य को भी अपने पंखों से छिपा लेता है । वह अपनी चोंच में साँप लटकाए हुए रहता है । वह गरुड़ मनुष्यों की वाणी में बोलता है । उस गरुड़ ने मनुष्यों की वाणी में भगवान कृष्ण की स्तुति की ।[4]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 31-53

2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 43

3 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग - 20

4 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 25, 26

पारिजातहरणं महाकाव्य के विभिन्न सर्गों में ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है । नक्षत्र मण्डल का शासक, ज्योतिष शास्त्र चन्द्रमा को कहा गया है ।[1] काव्य में बायीं भुजा का फड़कना अशुभ माना गया है ।[2] श्रवण नक्षत्र तथा आद्यभि नक्षत्र में जाना शुभ माना गया है।[3] काव्य के प्रथम तथा द्वितीय सर्ग में नायक नायिकाओं के वर्णन कवि के काम शास्त्र ज्ञान को बताते हैं ।[4] द्वितीय सर्ग में रात्रि को गर्भवती स्त्री के समान बताया गया है ।[5]

पारिजातहरण महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में यज्ञ के प्रसंग में कवि ने अपनी पाक-शास्त्र संबंधिनी कुशलता का परिचय दिया है । छः रसों के अपूर्व यज्ञागंभूत भोजन से ब्राह्मणों को तृप्त किया । गो रस ﴾दूध, दही, आदि﴿ से बने पदार्थों को भोजन में दिया ।[6]

महाकाव्यों और पुराणों के अनेक प्रसंगों से उनके अपरिमित पौराणिक ज्ञान का परिचय मिलता है । उनके पारिजातहरणमहाकाव्य का कथानक ही पुराण पर आधारित है । हरिवंश पुराण की कथा को आधार मानकर इस काव्य की रचना की गई है । इसलिए उनका यह काव्य पुराणों से बहुत समानता रखता है । पुराणों में जिस प्रकार द्वारिका वर्णन, युद्ध का वर्णन स्थान - स्थान पर भगवान की स्तुति का वर्णन, पुण्यक-व्रत का वर्णन, नदियों का वर्णन, ऋतुओं का वर्णन, समुद्र का वर्णन, स्वर्ग का वर्णन मिलता है बिलकुल उसी प्रकार कवि के पारिजातहरणमहाकाव्य में भी वर्णन मिलते हैं । द्वारिका वर्णन प्रथम सर्ग में किया गया है सत्रहवें सर्ग में नारायण तथा इन्द्र के युद्ध का

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 8
2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 24
3 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 58
4 पारिजातहरणमहाकाव्य - प्रथम सर्ग - 18, 19, 20
5 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 4-46
6 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 60, 61

वर्णन मिलता है । चतुर्थ सर्ग में समुद्र का वर्णन पंचमसर्ग में त्रिवेणी का वर्णन तथा एकादश सर्ग में स्वर्ग का वर्णन किया गया है । शरद ऋतु का वर्णन दशम सर्ग में तथा वसन्त ऋतु का वर्णन एकविंश सर्ग में किया गया है ।

पुराणों में भगवान के विभिन्न अवतारों का वर्णन किया है, इसी प्रकार पारिजातहरण महाकाव्य में भी भगवान के विभिन्न अवतारों का वर्णन किया गया है । कूर्मावतार[1] का वर्णन विंश सर्ग में मिलता है । भगवान ने समय-समय पर कछुआ, सूकर, हिरण्यकश्यप आदि अवतारों[2] का ग्रहण किया है ।

इतना पाण्डित्य होते हुए भी कवि के इस पारिजातहरणमहाकाव्य में मनोविनोद के दर्शन होते हैं । इससे उनकी मनोविनोदात्मक वृत्ति का परिचय मिलता है । काव्य के दशम सर्ग में कवि ने शरद ऋतु का वर्णन किया है तथा साथ ही भगवान कृष्ण और सत्यभामा के मनोविनोद का भी वर्णन किया है -

> " इस प्रकार अपनी प्रिया सत्यभामा के मनोविनोद के व्याज से शरद ऋतु की विशेषताएं हर्ष के साथ दिखाते हुए जब तक कुछ और सोच ही रहे थे, तब तक ही नारायण ने मुनियों के अग्रणी नारद को सामने आ गया देखा ।"[3]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - विंश सर्ग - 31
2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 11
3 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 26

काव्य जगत्में प्रसिद्धि के कारण कवि उमापति द्विवेदी को "कविपति" की उपाधि मिली थी तथा पारिजातहरण महाकाव्य लिखने पर विशेष रूप से सम्मानित किया गया था ।

कवि की कृतियाँ :

कवि उमापति द्विवेदी की कृतियों में कुछ स्तोत्र तथा स्तुतियों की रचना मिलती हैं । जिसमें गंगशिखरिणी शिवास्तुति, गणेश पंचचामर, चंडिकाष्टम तथा सुप्रभात नामक सूर्य - स्तोत्र उल्लेखनीय है । इन्होंने सुप्रभात नाम का एक संस्कृत पत्र भी प्रकाशित किया, इन सबके अतिरिक्त पारिजातहरण महाकाव्य की रचना की जिसके फलस्वरूप इन्हें विशेष ख्याति मिली है ।

द्वितीय अध्याय
****

कथानक

प्रथम सर्ग

पारिजातहरण महाकाव्य के प्रथम सर्ग में द्वारिकापुरी का वर्णन किया गया है तथा रुक्मिणी के द्वारा दूती के मुख से व्रतोद्यापन के लिए भगवान कृष्ण से अनुमति की याचना का तथा उसकी प्राप्ति का वर्णन किया गया है ।

सर्वथा स्वाधीन और समस्त जगत् के नियन्ता भगवान श्रीकृष्ण ने मानव-सम्बन्धिनी समस्त सम्पत्ति को उपाधि-रूप में धारण कर लिया और कंस आदि दानवों के विनाश द्वारा स्वस्थ कर अपनी बसायी कुशस्थली (द्वारिका) को सभी सुखों से पूर्ण कर दिया । वे भगवान श्रीकृष्ण एक असाधारण नायिका के वेश को धारण करती हुई इस द्वारिका का शासन करते थे । यह पुरी समस्त ऐश्वर्यों से सुसज्जित थी तथा इसमें गगनचुम्बिनी अट्टालिकाएं थीं तथा इसमें विविध रत्नों की विचित्र प्रभा से द्वारिकापुरी की अपूर्ण छटा दिखाई पड़ती थी । यह पुरी चित्र रूप में तीनों लोकों की आकृति लिए समुद्र से घिरी हुई थी । इसकी दीवारें अत्यन्त ही प्रकाशमान थीं । इसके चारों ओर तोरणों की कान्तिमण्डली फैली हुई थीं ।

इस पुरी में सदैव मन्द-मन्द शीतल तथा सुगन्धित वायु बहती रहती थी । संसार में औषध, मणि तथा मन्त्रों का प्रभाव सर्वोत्तम माना गया है, इस पुरी में वह साधारणतः सभी का प्राप्त था । यह पुरी सुवर्णमय गवाक्ष, सोने के बने कलश-कंगूरों से अलंकृत, विभागपूर्वक बनाए गए राजमार्ग, विश्रामस्थल एवं चौराहों से युक्त थे । जलधारों में शरदधन के भ्रम से मयूर तथा मोती के आकार की बूंदों के भ्रम से चातक इस पुरी के धारागृहों को सदा घेरे रहते थे ।

इसमें पग-पग पर मनोहर बावड़ी और सरोवर शोभा पाते थे जो परस्पर नायक और नायिका की भाँति परस्पर रमण करने से प्रतीत होते थे । इस पुरी में कहीं क्रीड़ापर्वत सुशोभित होते थे, जो बहुत ही ऊँचे थे तथा विविध प्रकार के फूले हुए वृक्षों और लताओं से उल्लसित थे । इसका बाजार मनुष्यों के कोलाहल से युक्त था तथा घनी दुकानों से सुसज्जित था । इस पुरी के उत्कृष्ट कलामर्मज्ञ शिल्पी गण सूत करघा आदि के व्यवहारों और ताने-बाने आदि प्रकार - विशेष से विविध वस्त्रों का निर्माण करते थे । यह पुरी स्वच्छ स्फटिक मणि की भूमि पर बसायी गई थी तथा विविध प्रकार के मन्त्रों के व्यवसाय से शोभित थे ।

यहाँ विशुद्ध अन्तःकरण वाले वेदपाठी ब्राह्मण निवास करते हैं, तथा निरन्तर वेदध्वनि गूँजती है । यहाँ सात तल्ले वाले मकान कमलनयन श्रीकृष्ण की कृपा दृष्टि से लक्षित एवं सुरक्षित हैं । यहाँ के घरों में ध्वजाएं फहरा रही हैं । इस पुरी में नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग करने वाले शूरवीरों को एक-एक दल रणक्षेत्र में होड़ लगाकर तीनों लोकों के साथ युद्ध कर सकता है । इस पुरी में कहीं राजनीति सम्बन्धिनी विशेष मन्त्रणार्थ अधिकारियों की बैठक सजायी गई है कहीं योद्धाओं के युद्धकला-सम्बन्धी कौशल का प्रदर्शन हो रहा है, कहीं कुशल शिल्पियों की कलाओं की प्रदर्शनी सजायी जा रही है, इस प्रकार यहाँ सदा सारे दिन उत्सवमय आनन्द में ही बीतते हैं । यहाँ की विशाल सड़कों पर नाना प्रकार के रथ निरन्तर दौड़ते रहते हैं तथा इस नगरी की रक्षा में तत्पर रहते हैं । मोक्ष देने वाली सप्तपुरियों में मोक्षोत्पादन में यह मुख्य द्वार है इसलिए अनादिकाल से ही विद्वान इसे "द्वारिका" इस सत्य नाम से पुकारते हैं । यहाँ के निवास करने मात्र से ही लौकिक सुखों का उपभोग कर मानव अलौकिक सुख (मोक्ष) की प्राप्ति कर लेता है । इस पुरी के दर्शन से पापों की राशि भी विलीन हो जाती है तथा

सेवन से मनुष्य संसार बन्धन से रहित हो मुक्ति का भागी हो जाता है । भगवान श्रीकृष्ण ने इस पुरी को अत्यन्त अवर्णनीय कहकर अपने निवास के लिए भरपूर सजाया । इसके राजमहल में कहीं प्रत्येक दिशाओं की अप्सराएँ नाच रही हैं तथा कहीं परम् निपुण यादवों की कौंसिल सजी है । यहां के अन्तःपुर में अपार सौन्दर्य वाली ललनाएं हैं । मल्लयुद्धादि व्यायामोपयोगी अखाड़े आदि में कर्पूर की ही धूलि भरी हुई है तथा जो अष्टागन्ध की अधिक मात्रा से सम्पादित अनेक रंगों से चित्रित तथा सर्वथा प्रिय है । यहां कहीं मयूर नृत्य कर रहे हैं कहीं कबूतर कलाबाजी कर रहे हैं । यहाँ के राजमहल बहुत ऊँचे तथा स्वच्छ शीशों से जड़े हैं । यहां का प्रांगण मोटर आदि विभिन्न सवारियों से भरा हुआ है । यहां का राजमहल सैंकड़ों रत्नमय वेदियों से भूषित तथा सुधर्मा नामक देवसभा मण्डल से सुसज्जित है जिसमें मुख्य अन्तरंग मंत्रियों के साथ भगवान श्रीकृष्ण मन्त्रणा कर रहे हैं । तब तक व्रतिनी रुक्मिणी के अभिप्रेत सन्देश को पहुँचाने वाली उसकी प्रधान दासी ने आकर अवसर से भगवान का इशारा पाकर कहा कि भगवन् आपकी ज्येष्ठा पत्नी रुक्मिणी अपने किए व्रत की पूर्णता के लिए कल आपके साथ ही रैवताचल पर पूजनीय देव ब्राह्मणों की पूजा करना चाहती हैं । इस प्रकार दासी के निवेदन पर भगवान ने अनुराग सहित कहा - कथय कलयतात्सा कामनामद्य पूर्णांसरंति स जगदीशस्तामितिब्याजहार ।[1]

इस प्रकार पारिजातहरण नामक इस काव्य का क्षेत्र नामक प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 63

द्वितीय सर्ग

पारिजातहरण महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में प्रभात का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है तथा साथ ही यज्ञ के लिए रैवतक पर्वत की यात्रा की तैयारी का वर्णन भी किया है ।

कवि उमापति के इस महाकाव्य में रात्रि की बहुत ही सुन्दर उपमा दी गई है । रात्रि की तुलना एक गर्भवती स्त्री से की गई है । अपने संकल्पित कार्य की सिद्धि के लिए जगदीश्वर भगवान श्रीकृष्ण की अनुमति पाकर रात्रि बीतने की राह देखती हुई मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुई । उस समय रात्रि गर्भवती स्त्री के समान प्रतीत होती थी, उसका चन्द्रमारूपी मुख पीला पड़ गया था, उसके अंगों पर नक्षत्ररूपी आभूषण इने-गिने रह गए थे और उसने अपने भीतर बालरूपी सूर्य को धारण कर रखा था । वह रात्रि शीघ्र ही प्रसव करना चाहती थी अर्थात् प्रातः होने को थी । उस समय जगदीश्वर के शयन कक्ष में उनकी शय्या के समीप वैतालिक मण्डल उन्हें जगाने के लिए गीत गाने लगा । हे नाथ ! निद्रा का परित्याग कीजिए क्योंकि चन्द्रमा प्रभात काल में पक्षियों के कलरव से सूर्योदय की सूचना दे ताराओं को साथ लिए चला जा रहा है । भगवान भास्कर से भयभीत सी होकर मानों आकाश से भूमि पर छिपने के लिए आई हुई ताराओं जैसी कितनी अभिसारिकाएं यहां भी सूर्य के पुनः आगमन की आशंका से मानों अन्यत्र छिपने के लिए भागी जा रही हैं । प्रभात के कारण दीप की प्रभा मलिन हो रही है । कितनी पतिव्रता स्त्रियां पति के पहले जगकहर सन्ध्या पूजनादि की सामग्रीं जुटाते समय पति देव को जगाने की युक्तियां कर रही है । हे हरे ! थोड़ी देर के बाद संसार में सूर्योत्पत्ति रूप होने वाले मंगल को देखिए । पूर्व की ओर से लोक कल्याणकारी सूर्य रूप तेजस्वी पुरुष जन्म ले रहे हैं, इसलिए गौ रूपी किरणों का पूर्व-दिशा के द्वारा दान हो रहा है । उषाकाल की प्राप्ति से प्रसन्न पक्षि-मण्डल श्रवण सुखकारी

मंगलगान कर रहे हैं एवं दिगड़नाएं लाल वस्त्रों से रञ्जित हुई उक्त महोत्सव के पुनीत क्षण को सूचित कर रही हैं । प्रकाश के जाने से सभी सुन्दर वर्ण प्राप्त कर लेंगे । रात्रि का मुख उज्जवल होकर शोभायमान हो गया है । सहचरी दिशाएं भी शोभित हो उठीं, मनोहर सुगन्ध फैलाती हुई गर्व लिए वायु बह रही है । इस महोत्सव के समय वायु से इस शुभ सूचना को पाकर पृथ्वी पर सब ओर दल रूपी अपने हाथों से ओस बिन्दु रूपी मोती बरसा रहे हैं । भंवरे इस समय यशोगान कर रहे हैं कमल भी इस समय खिल गए हैं । प्रातः काल कोलाहल करते हुए पक्षीगण मानो यह कह रहे हैं कि दिननाथ सर्वथा अस्त हो गया यह समझकर क्यों निर्भय काम क्रीड़ा में निमग्न हो, समय का यह क्रम है देखो फिर वह उगा आ रहा है अर्थात् मोह निद्रा त्यागकर जागो । भगवानकृष्ण के मुख-चन्द्र से डरा हुआ चन्द्रमा आपके उठने के भय से अभी अस्त हो रहा है । विरह रूप व्रत में सारी रात बिताने वाले अपने प्रिय जोड़े से चक्रवाकी अभी आ मिलेगी सूर्योदय के समय सारी दिशाएं रञ्जित हो रही हैं । मुर्गे रूप ऋत्विजों का वृन्द शुभ सम्पत्ति के लिए जगत् के सारे व्यसनों का तेजस्वी सूर्य में हवन कर देना चाहता है । अग्नि को दीप्त करने वाली ऋचाओं को पढ़ते हुए अग्निहोत्री ब्राह्मणगण कुशकण्डिका आदि विधि से शोभित कुण्ड वाले मण्डप में बैठे स्वाहाकार आलापते हवन कर रहे हैं । प्राभातिक वायु का संचार प्रत्येक स्थानों में हो गया है । खिलते कमलों में सानन्द निकालते हुए भंवरे ऐसे जान पड़ते हैं जैसे भगवान कृष्ण के मुख कमल से मूर्तिधारी वेदों के अक्षर निकल रहे हों। बालकों को प्रत्येक घरों में मातायें गोद में उठा रही हैं । प्रातःकाल की समुपस्थिति में पिन्हाव से थनों वाली गौएं भी उठकर खड़ी हो गई हैं एवं बार-बार रंभाती हुई अपने बछड़ों को दूध पिलाने के उतावलेपन को प्रदर्शित कर रही हैं । तमोगुणी व्यवहार वाले अन्धकार के अनुयायी उलूक आदि पक्षी जो अभी तक अपने को सुफल समझते थे, वे अपनी दुर्वृत्ति का दिवान्धता रूप कुफल अनुभव कर रहे हैं । रात्रि प्रातःकाल ओस के बहाने आँसू बहाती हुई चली जा रही हैं । सुन्दर शरीर में झलकने वाली रूपधारिणी चेतना सी इस

पवित्र सोने के पिंजड़े में मंजुल मूर्ति वाली सारिका वेदमार्ग में प्रशंसित श्रवण सुखद पद-पद में मनोहर मंगलमय भगवान का नाम रट रही हैं ।

इस प्रकार भगवान कृष्ण ने उषा-काल के विकास को सुन-सुनकर, शय्या को छोड़ दिया । तत्पश्चात् भगवान ने हृदय में अपने ही शुद्ध-बुद्ध स्वरूप का स्मरण किया और बैठ गए । प्रात:कालिक स्नान पूजनादि क्रिया से निवृत, काम के पिता भगवान कृष्ण ने आदेश दिया कि रैवतक पर्वत के ऊपर प्रिया (रुक्मिणी) की व्रत क्रिया के उद्यापन की सारी तैयारियां की जायं । इस प्रकार यदुनाथ की आज्ञा या अभिप्राय को समझने वाले परिचारक वृन्द, पर्वत यात्रा के योग्य सब सामिग्रियां एवं सवारी तथा अन्य विविध उपर्युक्त वस्तुएं प्रस्तुत कर दिए ।

इस प्रकार पारिजातहरण नामक इस काव्य का बीज-नामक दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ।

तृतीय सर्ग

पारिजातहरण महाकाव्य के तीसरे सर्ग में द्वारिका से रैवतक पर्वत की यात्रा का वर्णन किया गया है यद्यपि यह कोई विशेष यात्रा न थी, किन्तु यह रीति थी कि महाराजों की सपरिवार यात्रा ससैन्य ही होती रही अत: कवि ने प्रस्तुत सर्ग में भगवान कृष्ण की इस यात्रा का सांगोपांग वर्णन किया है । इसके साथ ही समुद्र का वर्णन भी इसी सर्ग में मिलता है ।

रात बीत जाने पर सभी सामग्रियों सहित अन्तःपुर की रानियों को बिठाकर स्वजनों के साथ रैवतक पर्वत पर जाने के लिए भगवान श्रीकृष्ण रथ पर सवार हो गए । उसी समय विद्वान ब्राह्मणों का मण्डल यात्रा की सिद्धि के लिए मंगल पाठ करने लगा और मृदंग आदि मांगलिक बज उठे । तत्पश्चात् भगवान श्रीकृष्ण क्रम से दलबन्दी के साथ सजे सैनिकों से युक्त हो सारथी के साथ चल पड़े । उनकी सेना में सैनिक गति से चलने वाले पैदल घोड़े, रथ, हाथी विविध प्रकार के बाजे आदि सभी थे । भगवान कृष्ण का यह यात्रोत्सव असंख्य काबुली घोड़ों से अत्यधिक शोभित हो रहा था । पैरों में जकड़ी लौह श्रृंखला से भी जिसकी गति में सरलता नहीं आ रही है अत्यन्त भीमकाय वाले मद की वर्षा करती हुई घनघटा के समान गजों की घटा चल पड़ी । इस प्रकार सारे जगत का अभिनन्दन प्राप्त करता हुआ पुष्य नामक रथ भगवान यदुनन्दन श्रीकृष्ण को ले चल पड़ा । रथ के घोड़े ऐसे चल रहे थे मानो पृथ्वी पर पांव ही नहीं पड़ते ऊपर ही ऊपर उड़े चले जा रहे हों । पर्वत पर बैठे सिंह के समान ऊँचे सजे रथ पर बैठे भगवान कृष्ण विशेष उत्सुकता से नगर से पहाड़ तक पहुँचने की चाह में चलते कौतुक से चंचलमृग के समान चपल चेष्टा वाले लोचनों से शोभित हो रहे थे ।

भगवान कृष्ण के एक-एक उपकरणों का पृथक-पृथक वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से इसी सर्ग में किया गया है ।

"नभसि भूरिविभासित भास्वतोऽसित विभेद्भुपकार स्वे श्रयम् ।
लसित कौस्तुभकस्य तते हरेसरसि तस्य सितस्य मणेश्छवि ।।"¹

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 17

गले से लटकती वनमाला तथा कौमोदकी नामक गदा से भगवान कृष्ण अतुलनीय शोभा को प्राप्त हो रहे थे। भगवान के करकमल को शोभित करने वाला चक्र सारे शत्रुओं को कंपाता हुआ भगवान की सौगुनी शोभा बढ़ा रहा था। हंस की समानता करने वाले भगवान कृष्ण के कर कमल में शोभायमान शंख, कान्तिहीनों को अपूर्व कान्तिशील बना रहा था और भी भगवान कृष्ण के कर कमल पर शोभमान कमल को देखकर किसका हृदय अधिकाधिक मोद से भर नहीं आता। भगवान के ललाट पर स्फुरित होते हुए केशों के ऊपर मुकुट शोभित हो रहा था। दैदीप्यमान रत्न जाल से जड़ा हुआ कवच धारण किए हुए भगवान का शरीर नाना प्रकार के फूलों से लदे लताओं के जाल से आच्छादित श्याम-तमाल तरुवर सा दिखाई दे रहा था। भगवान के कानों में हिलता मकर के आकार का कुण्डल शोभित हो रहा था सोने की कड़ियों पर चढ़ा, नाना-प्रकार के रंग-बिरंगे मणियों से जड़ा भगवान कृष्ण का मेघडम्बर छत्र सर्वथा अतुलनीय था। भगवान कृष्ण का तेजस्वी तथा सर्वहित श्याम शरीर अत्यन्त विमल तथा बहुमूल्य पीताम्बर से ढका बिजलियों से युक्त मेघों से ढके आकाश की शोभा पा रहा था। अपने शरीर का प्रभा से परम शान्ति प्रदान करने वाली अमृतमयी कान्ति सबकी आंखों में बरसा रहे थे। अनुपम शोभमान सुन्दर कृतियों से युक्त तथा स्वाभाविक गौरव से शोभित उन भगवान के साथ अतुलनीय अग्नि से तेजस्वी सुकृतियों का वृन्द, सुन्दर स्वर में यशोगान कर रहा था। भगवान श्रीकृष्ण ने जयजयकार के नारे लगाती हुई दर्शक जनता को सादर लौटा दिया और सारथी को शीघ्र पहाड़ पर पहुँच जाने के लिए आज्ञा दी उस वेगशाली रथ ने भगवान को बिना रोक-टोक दुर्गम पर्वत पर शीघ्र पहुँचा दिया।

"भगवान कृष्ण अतुलनीय शोभा धारण करते हुए उस रैवतक पर्वत को देखने लगे` जो नए निकले अंकुर पल्लव व फूले फलों से लदी लताओं के जाल से

घिरा था । वह पर्वत परम पूज्य प्रभुत्वशाली उस भगवान कृष्ण को समीप से अर्ध्य देता सा दिखाई देने लगा । विटपों पर बैठे विहंगमों के नाना प्रकार के मनोहारी कल कूजनों के द्वारा वह पर्वत भगवान का स्वागत भाषण कर रहा था । लता अंकुर कलिकाओं के द्वारा पुलकित हुआ वह पर्वत भगवान के समागम से उत्पन्न हर्षातिरेक को सूचित कर रहा था । अपने शीतल, भिन्न-भिन्न गन्धवाही मनोहर वायु से भगवान के हृदय को आकर्षित कर लिया । उस पर्वत पर कहीं-कहीं स्थान-स्थान पर छल-छल करते झरने बह रहे थे, कहीं स्वच्छन्द मदमाती विंहगमण्डली चह-चहा रही थी, कहीं भाँति-भाँति के वृक्षों की श्रेणियां थीं । जिस पर्वत की उपत्यका समुद्र की ऊँची उछलती तरंगों से टक्कर लेती झलक रही थी तथा अधित्यका से झर-झर करने वाले झरने झर रहे थे । पर्वत की गुफाओं में किन्नरगण सानन्द गाना गा रहे थे । देवताओं की क्रीड़ा स्थली होने से सुमेरु पर्वत, अपना अन्यत्र असाधारण गौरव रखता था ।

भलीभाँति तोरण ध्वजा-पताका आदि से सजाये गए तने तम्बू वाले उस शोभा-सम्पन्न पर्वत शिखर पर भगवान सपरिवार आ पहुँचे । शिखर पर पहुँचने के बाद भगवान सपरिवार रथ से उतरे । भगवान ने कुछ दूर तक प्राकृतिक पहाड़ की विषम भूमि को अपने सुकोमल पाँवों से ही पार किया ।

इस प्रकार क्रम से भगवान कृष्ण बिना प्रयास रमणीय तथा विशाल गिरि शिखर पर पहुँच कर दूसरे समुद्र के समान दुर्गम, अपनी शत्रु वारणी सेना के पड़ाव में प्रवेश कर गए ।

चन्द्रवंश के भूषण भगवान को गिरि शिखर पर बैठे देख जोरों में लहराता हुआ समुद्र मानों लहरों के बहाने बढ़े आनन्दोल्लास में उछलने लगा ।

ताराओं के समान प्रस्फुट फेन भंगों को तथा उसी रूप श्रेष्ठ श्वेत शंखों एवं सूक्तियों को धारण करता हुआ समुद्र ऐसा जान पड़ता था जैसे जल के ब्याज से पृथ्वी पर पड़ा आकाश का कोई एक भाग हो। भगवान कृष्ण ने रस के आधिक्य से गर्वित हो बढ़ने वाली तथा राग के आधिक्य से गर्वित गिरती लड़खड़ाती समीप में आई उत्सुकता से भरी नदियों को भुजाओं के समान तरंगों से अपनी गोद में भरते हुए से समुद्र को देखा ।

"हे ईश। संसार में जब तक आपका प्रसाद रूप अभ्युदय है, तब तक मैं समुद्र अर्थात् मुद्रा सहित रुका हुआ हूँ अन्यथा बिना मुद्रा के {वे रोक} अपने प्रबल प्रवाह से सारे पृथ्वी को बहा देता ऐसा ही आप मुझे जानिए ।" अपनी विक्षुब्ध हो जारों से उठती लहरों के इशारे से इस प्रकार अपने महत्व को सूचित करते तथा जलते बडवानल की ज्वालाओं से जटिल अनन्त जलराशि से भासमान समुद्र को देखा। उस समुद्र में कहीं कहीं लीला से जलराशि पान करते हुए तथा उतावली उठती लहरों पर उब डूब खेलते हुए निर्भयता से मन्द-मन्द रेंगते हुए बड़े-बड़े मीन{मछलियों}अवतार भूत महामत्स्य की विडम्बना कर रहे थे। कहीं भवर राशि चक्कर खा रहे थे। तरंगरूप भुजाओं को फैलाए, दण्डवत सर्वांग से पृथ्वी पर पड़ा गम्भीर ध्वनि के बहाने स्तुति पाठ करता हुआ समुद्र भगवान कृष्ण के प्रति साष्टांग प्रणत सा दिखाई दे रहा था। घनी जलराशि से भरा भासमान यह समुद्र सौ - सौ हर्षध्वनि के साथ मानो उछल रहा था।

इस प्रकार कवि उमापति विरचित पारिजातहरणमहाकाव्य का संस्कार नाम का तीसरा सर्ग समाप्त हुआ ।

चतुर्थ सर्ग

पारिजातहरण महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में समुद्र के कुछ वर्णन के बाद रुक्मिणी के यज्ञ का विशद वर्णन मिलता है ।

प्रस्तुत सर्ग में समुद्र के बारे में कुछ इस प्रकार का वर्णन मिलता है कि जो हमारा सनातन रहने का स्थान है तथा स्वच्छन्द धीर एवं गम्भीर रूप में सारी पृथ्वी को चारों ओर से घेरकर स्थित है । अपना असीम गौरव रखता हुआ भी जो मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करता एवं परस्पर टकराती लहरों के कोलहाल से सारी दिशाओं के मुख को भर के वर्तमान है । जो तटवर्ती घनी छाया से आच्छादित दोनों प्रान्तों के बीच आस-पास दोनों ओर से छाए घने बादलों से घिरे, प्रशस्त आकाश के समान दिखाई दे रहा है । जिसका कोलाहल अनुक्षण बढ़ता जा रहा है ऐसी लहरों की परम्परा से शोभित तथा भ्रान्तिशील के समान जल में उठी भंवरों के रूप में चक्कर काट रहा है तथा रंग-बिरंगे रत्न एवं जल जन्तुओं से चित्रित आशय वाला है । इस प्रकार अपने वंश के मूल पुरुष, चन्द्रमा तथा प्रिया लक्ष्मी के पिता होने से उस पुरातन पयोनिधि को भगवान ने अधिक हर्ष से सम्मानित किया क्योंकि सारी सृष्टि का आदिभूत महान आशय वाला अधिक सम्मान के योग्य, पूर्वजों की भी पूजा प्राप्त करने वाला ये समुद्र विशेष रूप से श्लाघनीय है तथा तीनों काल में जिसका कभी नाश नहीं होता । जो प्रलय के आश्रय भूत भगवान का भी निवास स्थान है । भगवान कृष्ण ने प्रेमप्रवाह के समान उसके जल प्रवाह के भीतर से उठी तरंगों का भक्ति पूर्वक, हृदय तथा सिर से भी आलिंगन किया । भगवान कृष्ण चन्द्र इस समुद्र से निकलते चन्द्रमा के समान दिखाई दिए ।

इस प्रकार सेना तथा परिवार सहित समुद्र का अवगाहन करके भगवान ने रुक्मिणी जी के व्रतोद्यापन का विधान करना प्रारम्भ किया । यज्ञ की विधियों के पूर्ण ज्ञाता, वैदिक ब्राह्मणों को बुलाकर शास्त्र के अनुसार, कुण्ड, मण्डल वेदी आदि बनवाए । कारीगरों द्वारा अनेक सुन्दर विभिन्न रंगशाली चांदनियां सजायी गई तथा चारों ओर स्वर्ण के बने केले के खम्भे खड़े कर दिए गए । यज्ञ-मण्डप शंख, चक्र, गदा, पदम से चिह्नित था तथा मणियों की झालरों वाली यवानिकाओं से ढका था । उस मण्डप में स्थान-स्थान पर सोने के पूर्ण कलश स्थापित किए गए थे । यज्ञ देखने की इच्छा से कुछ लोग दिग्दिगन्त से बुलाए गए थे कुछ स्वयं आए थे । उस समय वह स्थल त्रिलोक के ऐश्वर्य का अतिक्रमण कर रहा था । उस ऐश्वर्यशाली स्थान में सभासदों, अतिथियों, कर्मचारियों के अतिरिक्त दर्शकों की भी अपार भीड़ थी । तब तक ही परिष्कृत मार्गों से शोभित उस पर्वत का भाग दिखाई दिया । यज्ञ विधि सम्पादनार्थ आए महापुरुषों के सत्कार में सारे यदुवंशी व्यस्थ थे तथा उत्साह से भरी सेना, दैत्यादि, विघ्नकारियों के वारण के लिए खड़ी थी । इस प्रकार इस पर्वत पर यज्ञ स्वरूप भगवान के द्वारा अधिकार प्राप्त कर रुक्मिणी जी यज्ञ करने के हेतु प्रस्तुत हुई ।

प्रस्तुत सर्ग में यज्ञ की इतिकर्तव्यता पर भी प्रकाश डाला गया है -

मर्त्यलोक वासी मानवगण पृथ्वी से उपजने वाले अन्न रसादि रूप सम्पत्ति से तृप्ति पाते हैं किन्तु स्वर्ग लोकीय अदृष्ट देवगण की तृप्ति के लिए नियम रूप यज्ञ ही हैं, जो वेदों के द्वारा शिक्षित हैं । यह यज्ञ वेदों से अनुशासित एक कर्म विशेष है । सत्पुरुषों ने सतत् इसका अनुष्ठान किया है, इसलिए इसकी सफलता सिद्ध है । अतः रुक्मिणी जी का यज्ञ प्रस्ताव सहेतु है। यज्ञरूप कर्म की सफलता को प्रमाणित करता हुआ कवि कहता है कि अनन्त कर्मों के होते हुए भी ये तीन रश्मियों में बंटे हुए हैं जैसे - द्विष्ट, इष्ट तथा उदासीन । सिद्धान्तः इनके फल भी वैसे ही होते हैं । कर्म के अनुसार द्विष्ट

आदि फल भी तीन राशियों में बंटे हुए हैं । सत्फल के विचार से जिसके करने की आज्ञा प्राप्त है वही इष्ट कर्म है तथा कुफल के अनुसन्धान से जिसके करने की मनाही की गई है उसे द्विष्ट कर्म कहते हैं तथा हित और अहित दोनों से रहित फल की भावना से जिसके करने की कोई आज्ञा या निषेध नहीं है वह उदासीन कहा जाता है । यज्ञों को ही इष्ट कहते हैं अतः यह इष्ट कर्म मनमाने ढंग से नहीं होने चाहिए अपितु उसके विधान साधन शास्त्रोक्त हैं । इच्छा विषय होने से सुख को भी इष्ट कहते हैं । उन शत्-शत् सुखों को यह यज्ञ ही फलते हैं । विधि होते हुए भी मन की प्रेरणा से ही इन कर्मों में प्रवृत्ति होती है । यह विहिता-विहित साधारण कर्म जैसे अनन्त हैं, उसी प्रकार उनके फलस्वरूप भोगों की गणना नहीं है किन्तु इन्हीं कर्मों के प्रयोजनीभूत फलस्वरूप भोगों के विषय में जिनकी बुद्धि पूरा काम नहीं देती ऐसे लोग निषिद्ध कर्मों को भी कर बैठते हैं किन्तु कर्मों के परिणाम तक ठीक पहुँचने वाली जिन विद्वानों की बुद्धि होती है वे इष्ट सुख प्राप्ति के लिए इन यज्ञों को ही अपनाते हैं क्योंकि अन्ततः कर्मों के ही द्वारा-संचार की गति नियमित है । कर्म स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार के होते हैं । स्थूल कर्म लोक धन्धे जिनका भोग्यफल यहीं प्राप्त हो जाता है । जैसे भोजन बनाया खाया क्षुधा निवृत हो गई । सूक्ष्म कर्मों का फल प्रत्यक्ष नहीं ज्ञात होता । मानस व्यापाररूप, जप, तप, उपासना आदि अनेक हैं । दृष्ट फल साधक तथा अदृष्ट फल साधक, इस प्रकार यह कर्म ऐहिक, आमुष्मिक नाम से भी दो हैं । इस शरीर के लिए ऐहिक तथा अमर आत्मा की अपर स्थिति के लिए आमुष्मिक (पारलौकिक) कर्म हैं । यह कर्मस्वभाव से ही शरीर मन, वाणी के द्वारा किसी न किसी रूप में होते ही रहते हैं । "नहिकश्चितक्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृतकार्यतेह्यवशो जन्तुः सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ।" पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश इन पाँचों तत्वों के सूक्ष्म अंशों से सम्पन्न हुआ यह यागांग हवन से उत्पन्न धूम, रस रूपजल देने वाला मेघ बन जाता है उन्हीं निजी रसों को बरसाकर भूमि रसादि रूप में परिणत हो ओषधी रूप अन्नों को उत्पन्न कर

प्राणी के दीर्घ जीवन को बढ़ाता यह यज्ञ प्रत्यक्ष ही सुखद लक्षित होता है ।

"प्रत्यक्षैकधियो" मूढा इहत्यफललिप्सवः ।
बहुव्याप्रिय माणाश्चय शॅल्लभन्ते न सर्वदा ।।"[1]

ऐसा जानकर ही शास्त्रीय विधि वाक्यों द्वारा बोधित देवताओं की तृप्ति चाहती हुई रुक्मिणी यज्ञ में तत्पर हुई क्योंकि उसी को अमृत कहा गया है {अमृतन्नामयत् सन्तोमन्त्र जिह्वेषु जुहवति} यज्ञ में प्रवृत्ति हुई रुक्मिणी जी ने सभी वेदों के ज्ञाता ऋत्विक्गणों की बतलायी विधियाँ, अंग पूजा आदि के साथ आरम्भ कर दी । देवताओं की प्रसन्नता के हेतु अग्निदेव को सबसे अधिक तृप्त किया । यज्ञान्तस्नान के पश्चात् रुक्मिणी जी ने यथेष्ट दक्षिणा दे ब्राह्मणों तथा अन्य सुहृद बान्धवों एवं अन्न चाहने वाले नंगे-भूखों को भी संतुष्ट किया ।

इस प्रकार उस रैवतक पर्वत पर दो तीन दिन तक बड़ी चहल-पहल थी । इच्छानुसार यज्ञ पूरा कर, त्रिलोक को आनन्दित करके हर्षाधिक्य से विकसितमुखी उस रुक्मिणी जी को देवताओं ने सप्रेम अभिनन्दित किया । इस प्रकार आनन्द लक्षणों से अपनी कृतार्थता व्यंजित करती हुई रुक्मिणी जी प्रसन्नता से शोभित मुख वाले अपने पतिदेव की सेवा कर रहीं थीं और भगवान कृष्ण काँख में तकिया रख मधुर मुस्कान की चाँदनी से अन्तःपुर के अवकाश को प्रकाशित करते, एकान्त में निःशंक प्रेमालाप में परायण पलंग पर पड़े, अनेक योद्धाओं को पराजित कर इच्छानुसार अपने हर लाने की गाथा सुना रहे थे तब तक आकाश मार्ग से देवर्षि नारद पहुँच आए । तब भगवान कृष्ण ने उनके चरणों पर सिर रख दिया ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थसर्ग - 50

मुनिनारद ने सिर झुकाये भगवान को उठाकर हृदय से लगाया और उनके दिए आसन पर बैठ भगवान को भी स्वयं आसन पर बैठाया । भगवान कृष्ण सुखद आसन पर आसीन मुनिवर नारद का अतिथ्य सत्कार करने लगे क्योंकि अतिथि सेवा में बढ़कर गृहस्थ का दूसरा धर्म नहीं है ।

इस प्रकार देवाराधन से प्राप्त बुद्धि से प्राप्त बुद्धि से अपने आश्रितों को आनन्द पहुँचाते हुए कवि उमापति द्वारा रचित इस पारिजातहरण महाकाव्य का शुद्धि नामक चतुर्थ-सर्ग समाप्त हुआ ।

पंचमसर्ग

पारिजातहरण महाकाव्य के पंचम सर्ग में नारद के द्वारा भगवान-कृष्ण की स्तुति की पथि प्रसंग के द्वारा प्रयाग-गंगा का तथा पारिजात पुष्प का नारद के द्वारा भगवानकृष्ण को उपहार रूप में देने का वर्णन किया गया है ।

"पुरू के अतिरिक्त इस वंश में कोई भी राजा मूर्धाभिषिक्त न होगा" इस प्रकार का जो ययाति का शाप था अपने कमण्डल से निकाले तीर्थ जलाभिषेक से मानो नारद जी ने उसका उद्धार किया - भगवान के इस आदर से सिर झुकाकर उस अभिषेक के गृहीत कर लेने पर मुनिराज बोल पड़े —हे प्रभो । निजभक्तों के प्रत्यक्ष उद्धारार्थ आपने ऐसा सर्वोत्कृष्ट दिव्य अवतार धारण किया । जाति(जन्म) आकृति क्रिया गुणों से आपका कोई वर्णन नहीं कर सकता । आपके कृपानुरोध निरोध के द्वारा संसार में यह आश्चर्यात्मक लौकिक व्यवहार रूप नाटक प्रकृति से सजा हुआ है । यह तत्वात्मिका जड़ा प्रकृति यामाया आपके अनुग्रह के बिना हटायी नहीं जा सकती । आपकी ऐहिक लीला भी प्राकृतिक नियमों से रहित सर्वथा स्वतंत्र है । अतः आपका

सर्वोत्तर प्रभुत्त्व लौकिक व्यवहारों में भी छिप नहीं सकता । आपने मछली बनकर वेदों का उद्धार किया । कछुआ होकर पृथ्वी को पीठ पर धारण किया सूकर हो पृथ्वी को फैलाया सिंह बनकर हिरण्यकशिपु जैसे अजेय दैत्य को मारा, वन, त्रिलोक को दो पग में हीनाप लिया । तपस्वी ब्राह्मण का अवतार धारण कर बहुत बढ़े हुए क्षत्रिय को मार उजाड़ डाला फिर स्वयं क्षत्रिय राम होकर अपने अवतार उस परशुराम को पराजित कर दशमुख रावण को समूल उजाड़ डाला, आप किसी प्राकृत नियम के पराधीन नहीं अपितु सर्वथा स्वाधीन हैं । यही आपके अवतारों का रहस्य है ।

हे भगवन् ! इस पृथ्वी आदि पंचभूत का आदिकारण आपकी असाधारण इच्छा ही बतलाई गई है । हे तटस्थ ! किसी भी वृत्ति में आस्था न रखने वाले आपके वह प्राकृतिक विलास हैं । हम सभी आपकी क्रीड़ा के साधन हैं । आप निर्लेप, इच्छा, द्वेषादि रहित हैं । आप संसार के जीवों को जब तक उपेक्षित किए रहते हो, तब तक ये संसार में आते जाते बन्धनों में पड़े रहते हैं । जब आपकी इच्छा से ही आपकी दृष्टि के वे लक्ष्य बन जाते हैं तब बन्धन रहित मुक्त हो जाते हैं । यही उनका मोक्ष है ।

अब प्रस्तुत निवेदनीय यह है कि सरस्वती नदी के तट पर इस संशय प्रजाओं के पिता कश्यपजी तीव्र तपस्या में लगे हुए हैं, इसी बीच इन्द्र की माता सती आदिति के कुण्डल भौमासुर हर ले गया है जिससे देवेन्द्र सम्प्रति बड़े शोक में पड़े हैं और उन्होंने आपके पास यह विशेष सन्देश भेजा है कि जिनके सहारे ही हमारे सभी मनोरथ उगते हैं ऐसे जगत् के अन्तरात्मा भगवान कृष्ण से कहना जब तक तपस्या में लगा हूँ बाहरी भार तुम्हारे ऊपर है । देवराज इन्द्र भी आपके सुदर्शन चक्र के पराक्रम को चाह रहे हैं और असुरों का विग्रह भी आपका स्वाभाविक कार्य है ।

समय के ठीक परिज्ञान की इच्छा से मुनि नारद से भगवान कृष्ण पूछ पड़े, हे ऋषि ! कहिए किस मार्ग से होते सरस्वती तीर से आप यहाँ पहुँचे । इस पर नारद ने कहा -- "सरस्वती के तटवर्ती प्रदेशों को देखने की इच्छा से इसके तीर के मार्ग से जहां यह गंगा-यमुना से भीतर ही भीतर आ मिलती है उस प्रयाग क्षेत्र तक आया । कहीं तो यह सरस्वती मनोहर, जलप्रवाह वाली मन्द गति से बह रही थी कहीं इसकी गम्भीर ध्वनि हो रही थी, कहीं उतावली सी लहरें उछाल रही थी । स्वयं लाल रंग की होते हुए भी अपनी तीर वर्तिनी जनता में विरागों को भरती जा रही थी । अपने में राग तथा संसार में विराग उत्पन्न करने वाली इस अनन्त शक्ति वाली सरस्वती की शोभा देखता हुआ मैं तीर्थराज प्रयाग में आ पहुँचा । जिस प्रयाग में यह देव नदी गंगा कलिन्द पुत्री यमुना तथा इस सरस्वती से संगत हो त्रिवेणी रूप में अनन्त महात्म्य युक्त अपूर्व शोभा धारण कर रही है । इस प्रयाग भूमि में सूर्य पुत्री यमुना की घनी नील तरंगों से आक्रान्त तथा लाल रंग में तरंगित सरस्वती को अंक में लिए स्वभाव से ही श्वेत वर्ण वाली गंगा शोभित हो रही है । यह एक ओर संसार की प्रकृतिजन्य मलिनता ही यमुना है और दूसरी ओर उस परम् पुरुष की श्वेतविभूति ही गंगा है । इनके पदारविन्द की प्रेमिका यह सरस्वती इन दोनों को संहित कर रही है । संसार के उद्भव स्थिति प्रलय को करने वाली, जो त्रिगुणात्मिका प्रकृति है, वही त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित हो रही है । अपांग से विशद श्वेत तथा एक देश से लाल, भ्रमर के समान नीलकनीमित्र वाली ईश्वर की दृष्टि रूपणि इसे नमस्कार है अथवा महावर से रंगे पैरों पर पड़ती देवांगनाओं के केशभार की कान्ति से भरे अम्बिका में श्वेत चरणकमलों की कान्ति के समान इस त्रिवेणी को नमस्कार है । नीलमणि मूँगे तथा मोतियों की यह माला प्रयाग-भूमि को सर्वतः शोभित कर रही है । ऐसी श्वेत रंगवाली भारतभूमि के अभ्युदय की उत्पत्ति भूमि यह भव्यरूप भगवती त्रिवेणी भूत गंगा है । जिसने नारायण के नील चरणों का शासन किया, जिसने पितामह ब्रह्मा के पवित्र कमण्डलु को

भरा तथा जो शिव के जटा मण्डित सिर पर सवार हुई । जिसके लिए सारे देवता स्पृहा करते हैं जिसके लिए भगवान शंकर भी पार्वती कृत अवमान का सहन करते तथा सगर की सन्तानें जिसके लिए कर्तव्य का आदेश देती हैं, वहीं गंगा यह तरणि तनुजा यमुना और सरस्वती से युक्त हो शोभित हो रही है । जिससे पृथक कोई पावन वस्तु नहीं, जिससे अतिरिक्त कोई मनोहारी नहीं वही यह ईश्वर के अनुकम्पा पात्र जगत की भाग्य विभूति है । जिसका शुभ दर्शन अखिल अनर्थों का हरने वाला तथा एक बार भी किया स्पर्श सकल पापपुंज्ज का विनाश करने वाला थोड़ा भी दिया अवगाहन संसार के जन्म मरणादि दुःखों को छुड़ा देने वाला होता है । वही यह त्रिवर्ग {धर्म, अर्थ, काम} की देने वाली विधाता की सुविधा है । कालदोष तथा सारे दुःख भार को दबाये हुए संचित पूर्ण पुण्यों द्वारा प्राप्त होने योग्य इस त्रिवेणी का अवगाहन कर आपके चरणों के दर्शनार्थ आकाश मार्ग का अवलम्बन कर यहाँ आया हूँ

देवर्षि नारद ने इस प्रकार अपने आगमन को सूचित कर भगवान के प्रेमोपहार के लिए अपनी काँख में बंधी झोली से निकाल, सौरभ से सारी दिशाओं को प्रमोदपूर्ण करते हुए अत्यन्त ही चमकीले पारिजात पुष्प को हाथ में लिया । नारद के हाथ में आया यह पुष्प उस समय मानो कहीं से ले आकर अपूर्व सौरभ उड़ेल दिया जिससे उस घर के भीतर सभी जनों के मानस प्रफुल्ल हो मोहक आनन्द में विभोर हो उठे ।

इस प्रकार कवि उमापति विरचित पारिजातहरण महाकाव्य का उप्ति नामक पंचम सर्ग समाप्त हुआ ।

षष्ठ सर्ग --

पारिजातहरण महाकाव्य के षष्ठवर्ग में पारिजात पुष्प की विशेषता के निरूपण तथा पुष्पदान का वर्णन किया गया है । साथ ही रुक्मिणी के द्वारा पुष्पलाभ तथा नारद के द्वारा रुक्मिणी की प्रशंसा और उसके उत्तर के प्रसंग से रुक्मिणी के द्वारा सती धर्म का निरूपण भी किया गया है ।

इस काव्य का मुख्य विषय पारिजात पुष्प का निरूपण ही है । प्रस्तुत सर्ग में पारिजातपुष्प का वर्णन किया है कि उस पारिजात पुष्प की चित्र को लुभाने वाली अकथनीय कान्ति ने उस विश्व दर्शनीय रुक्मिणी सहित भगवान कृष्ण की आँखों को भी सतृष्ण कर दिया । तब नारद भगवान कृष्ण से बोले -- " हे भगवन् मेरे दिए इस पुष्प रूप उपहार को आप स्वीकार करें । इतना कहकर नारद जी ने इस त्रिलोक गुरु भगवान कृष्ण को पारिजात का पुष्पसमर्पण किया । उस सुन्दर पारिजात पुष्प को भगवान को समर्पित करके उन्हें प्रसन्नता से पूर्ण हुए देख देवर्षि नारद जी ने कहा- हे भगवन्! परम् प्रभावशाली आपके सिवा पृथ्वीतल के ऐश्वर्य भोगने वाले किसी दूसरे लोगों के योग्य यह दिव्य पुष्प नहीं हैं । यह पुष्प न तो कभी कुम्हलाता है न कभी इसकी गन्ध उड़ती है । जीवों के मन की सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करता है । सौभाग्य को चमका देता है तथा पुष्पों का उदय करने वाला है। इसकी शोभा कभी नहीं घटती । दु:खी चित्र को भी पूर्ण सुखी कर देने वाला यह त्रिलोक में अनुपम है । स्वर्ग में भी इसके समान दूसरा पुष्प नहीं है ।"

मुनि के इस प्रकार कहते ही रुक्मिणी की उत्सुकता भरी आँखें एक अतिरिक्त पुष्प के समान उस पर प्रतिविम्बित हो उठीं । सम्पूर्ण अभीष्टों के देने वाले इस सन्तान पुष्प को भगवान ने प्रेमोपहार के रूप में रुक्मिणी को दे दिया । उदार स्वभाव वाली रुक्मिणी हर्षाभिषेक के समान पति का पुष्प रूप प्रसाद पाकर जल सेक को प्राप्त कर आनन्द में उल्लसित हो उठीं । भगवान कृष्ण के दिए उस रूपवान प्रेम के समान पुष्प रूप उपहार को सिर

झुका हृदय से लगाकर कमल रूप पात्र में लेती उस पुष्पराज को लेकर सिर पर चढ़ा हृदय से अभिनन्दन करके उन श्री रुक्मिणी से देवर्षि नारद ने विशेषता पूर्ण वचन कहे - इस नारायण की आठ पटरानियाँ जो सांख्यशास्त्र प्रतिपादित आठ प्रकृतियों के समान हैं उनमें प्रधान मूल प्रकृति आप ही हैं, इस निश्चय को आज भगवान ने सत्य कर दिखाया । इनसे दिया अमित मात्रा में यह सौभाग्य आज तुमने ही प्राप्त किया ।

इनके महत्त्व का वर्णन करते ऋषिराज नारद से रुक्मिणी यों बोल उठी " हे मुने मैं आपकी शिष्या, इन भगवान की सेविका हूँ इससे बढ़कर मेरे सौभाग्य की सूचना दूसरी क्या है । यदि आपके आशीर्वाद से सर्वेश्वर भगवान के चरण कमलों की सेवा का अवसर मुझे प्राप्त है तो पृथ्वी तल में जन्म लेकर भी मैं इस पुष्प की तो बात क्या सारे देवसौराज्य को भी तृण के समान तुच्छ मानती हूँ। हे नारद ! त्रिलोक में जो कुछ भी पुष्पित फलित है या स्थिर, विकासयुक्त एवं हर्षित है वह सभी क्षत्रियों के लिए पति सेवा ही प्राप्त है । अपने पति से अलग सारे जगत को भी जो कुछ नहीं समझती ऐसी सतियों के लिए यह त्रिलोक आनन्दमय हो उठता है । पति के प्रसन्न हृदय रहने पर हृदय से हर्षित रहने वाली जो अपने पति के प्रसादरूप सुखों में स्वर्ग-नरक को भी समान ही मानती हैं तथा जो नित्य अपने पति गति का ही अनुसरण करने का निश्चय रखती हैं । इस प्रकार केवल पति के एकमात्र प्रेम मात्रगुण की चाह रखने वाली वही स्त्री है । हे ऋषिवर यह मेरा कथन आत्म प्रशंसा परक नहीं है यह तो मैंने सतियों की साधारण स्थिति बतलाई है ।

इस प्रकार रुक्मिणी देवी की यही अपने अनुरागम्भ से रंजित चित्तवृत्ति को सुनकर सभी गुणियों से प्रशंसित रीति वाली उस रुक्मिणी में नारद जी ने आत्यन्तिक भक्ति दिखाई । नारद ने कहा - हे चितिद्वे! तू महान ईश्वर को भांपने वाली माया है । इस परमपुरुष को यदि तुम चेतना न दो या अपने गुणों से लिप्त न करो तो यह निर्गुण पुरुष अपनी गति से किसी को वर्णित नहीं

करा सकते । सबकी चेतना की मूलाधार तुम्हीं हो । गुणलिंग आदि उपाधियों से रहित शुद्ध ज्ञान रूप परम् ईश्वर स्वरूपिणी तुम्हीं हो । तुम्हें कोई प्रकृति कहते हैं कोई माया कहते हैं । कोई परमेश महिषी परामबा कहते हैं । भाव यह है कि सर्वशक्ति शालिनी ईश्वरी तुम्हीं हो । सृष्टि स्थिति प्रलय करने वाले आदि कारण की भूमिका परम् पुराण पुरुष परमेश्वर की इच्छा अनिवर्चनीय सूक्ष्म शक्ति भी तुम्हीं हो । इसलिए आपके विनोद के लिए यह पुष्प हो सकता है यह तो कोई वस्तु ही नहीं है ।

इस प्रकार कवि उमापति विरचित पारिजातहरण महाकाव्य का स्थाल नाम का छठा सर्ग समाप्त हुआ ।

सप्तम सर्ग

पारिजातहरण महाकाव्य के सप्तम सर्ग में भगवान कृष्ण का पारिजात पुष्प को रुक्मिणी को दान रूप में दे देने से सत्य भामा के क्रोध का वर्णन तथा नारद सत्यभामा का प्रश्नोत्तर और सत्यभामा के द्वारा नारद के सत्कार का वर्णन मिलता है ।

भगवद्दम्पत्ति के किए अतिशय सत्कार का अनुभव कर सब तापों से रहित मुनिश्रेष्ठ नारद सत्यभामा के गृह में पहुँचे और आरम्भ से ही सारे वृतान्त को प्रेमपूर्वक सत्यभामा के सन्मुख जा सुना दिया । पारिजात के पुष्पदान से वर्द्धित भगवान के किए अपने को अत्यन्त कटु रुक्मिणी के सम्मानातिशय को सखी के मुख से सुनकर सत्यभामा का मानस मान से भर गया । नाना प्रकार की भावनाओं से वर्द्धित क्रोध की गर्मी से भरी सूर्य के प्रचण्डताप से तपी दिवस की प्रभा के समान उस मनस्विनी सत्यभामा को मुनिवर नारद जी ने देखा । एकान्त नीरव कोप भवन के भीतर क्रोध से भीषण सी दीख पड़ रही थी तथा जिसकी अंग-प्रत्यंग की कान्ति सूख रही थी । क्रोध से भरी मुरारि भगवान की

प्रिया सत्यभामा जब तक मुनि को नहीं देख पाई थी तब तक नारद जी ने समीप पहुँच कर स्तुति पाठ किया । मानवश अपने आपे में न रहकर भी कर्तव्य को पालने वाली सत्यभामा नारद जी के सत्कारार्थ अपने आसन से हट अपने ही हाथ से मुनि के लिए सुन्दर आसन दिया । तब नारद उनसे बोले -- हे देवि - आप ही बताएं इस नारायण के साथ आपके सिवा दूसरा कौन है जो गरुड़ासन पर सवार हो सकी । सारे जगत् के भार ढोने वाले इस महाप्रभु की जो आपके लिए समस्त हैं वह और अन्य के लिए कहाँ तथा वह परम् पुरुष भगवान कृष्ण भी तुम्हारी सेवा तथा रक्षा हृदय से करते हैं । जिसके वश में अपने ऐश्वर्य शक्ति से सारे विश्व का जो उत्पत्ति स्थिति, संहार कर्ता परम् प्रभु वर्तमान है, ऐसी जगदीश्वरी को कौन सा शत्रु कुपित कर सकता है । आपकी शरीर सुकुमारता की रचना के लिए ही मानों विधाता ने अभ्यास करने के हेतु संसार के अनेक प्रकार के सिरिस आदि सुन्दर एवं कोमल लाखों फूलों की रचना कर डाली । आज वहीं सारी स्त्रियों में मणि सी आप इस प्रकार अतुलनीय ऐश्वर्य के रहते हुए भी यों उदास क्यों है । तब क्लेश भरे चित्त वाली मानिनी सत्यभामा मुनि नारद के ऐसा कोमल शब्दों में कह चुप हो जाने पर रोष से निकलते निःश्वास के दोष से भर्राई आवाज में अपनी रुचि की बात बोल उठी - हे मुने - तिरस्कार ही जिनके अन्त में फलित होता है ऐसे मेरी प्रशंसा के लिए प्रयुक्त अपने वचनों से अब अधिक मत दुखाइए । आपके प्रिय कृष्ण में जो मेरा आदर भाव था वह आज मेरा भ्रम सिद्ध हुआ । सारे विषयों को छोड़, इन पर ही अपने को न्योछावर करने वाली रूप, गुणशील, चतुरता आदि से सारे जगत् में जिससे बढ़कर दूसरी नहीं है ऐसी राधा को कुल कलंकिनी बनाकर भी आज तक नहीं पूछते । निर्मल, बड़े महत्व का, निरन्तर, स्वार्थ शून्य प्रेम चंचल चित्तवालों में टिक नहीं सकता । " हे नारद ! अपने प्रति उनके सद्व्यवहारों से यदि उन्हें स्नेही समझते हैं तो भला आप पर वे स्नेह क्यों न करें, जब वह दिव्य पुष्पोहार उन्हें देख रहे हैं, जिसे पाकर रुक्मिणी हर्षातिरेक से मत्त हो उठी हैं और आपपति के परम अनुराग रूप भाग को पाने

वाली रुक्मिणी की ही प्रशंसा करें जो आपके उपहार रूप दिए सकल कामना पूरक पारिजात का फूल पाकर सौभाग्य रूप तेज में फूली नहीं समाती है । जो एक स्वयंवर विशेष से अपने ही द्वारा बलात्कार से हर लाई गई है । वही उन कृष्ण को प्रिय होगी हम जैसी माता-पिता से दान स्वरूप दी गई भोग की साधन, गुण रहित स्त्रियों में इनका अनुराग क्यों करें होगा । इसलिए अब वाद विवाद की आवश्यकता ही क्या है ? वे अपना मनमाना करने वाले हैं उन्हें किसी विशेष की अनुमति भी नहीं चाहिए इसलिए हे मुने अब दूसरे ही किसी विषय पर कुछ कहिए । मुझ अभिवचन का जो आपके प्रति कर्तव्य है उसका आदेश दीजिए । आपकी कौन सी सेवा करूं । क्योंकि आपने अपने चरणों का दर्शन देकर मुझे किसी गिनती के योग्य बना दिया है । "इतना कहकर ध्यानमग्न सी सत्यभामा की आँखें बन्द हो गई और उनके आँखों से आंसुओं की धार बह चली वाणी रुंध गई । ऐसे अवसर पर नारद जी बोल पड़े - देवि ! आश्वस्त हों । विषाद न करें । सकलेश्वर नारायण के रहते ऐसी कौन सी वस्तु है जो आपके लिए सुलभ न हो । इच्छा करने मात्र से ही सारी वस्तुयें आपके लिए उपस्थित हैं । अन्ततः आपको भी यही इष्ट है । देवर्षि सत्यभामा को देख शीघ्र चलने को तैयार हो बोले- अब तो मैं जा रहा हूँ । बिना विशेषकारण के बढ़ी हुई आपकी शोभावस्था बतलाकर, भगवान कृष्ण को ही आपके पास भेज देता हूँ, वही अपना हृदय स्पष्ट करें गे । हमारा इस सम्बन्ध में कुछ कहना सुनना व्यर्थ है । ऐसा कहकर नारदजी अपना वांच्छित {परस्पर कलह} सत्यभामा के द्वारा पूरा होते देख, समवेदना के भाव को सूचित करने के लिए अपनी मुख प्रभा को शोक से आच्छादित किए हुई भीतर प्रसन्नता से भरे वहां से चल दिए । बड़ी उत्सुकता से भगवान कृष्ण के पास जा सुनने में दुखदाई सत्यभामा के क्रोध को सुनाकर फिर आपके स्मरण करने पर आ जाऊँगा । ऐसी प्रतिज्ञा कर भगवान कृष्ण के नयन कमल की कान्ति से कलित नारद, आकाश की ओर उड़ चले ।

इस प्रकार पारिजातहरण महाकाव्य का अभिरोह नामक सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

अष्टम सर्ग

पारिजातहरण महाकाव्य के अष्टम सर्ग में सत्यभामा के मान को सुनकर श्रीकृष्ण का वहाँ आगमन तथा उसके मान के स्वरूप का वर्णन किया गया है ।

विज्ञान §अखिल तत्व ज्ञान§ के आधार भगवान श्रीकृष्ण सत्यभामा को सही-सही कोपयुक्त जानकर विशेष उत्सुकता से उन्हें मनाने के लिए उनके घर की ओर चल पड़े और दरवाजे के पास छिपकर अपनी प्रियतम, की कोप स्थिति को देखने लगे । नाना प्रकार के उपचारों में व्याकुल चित्तवाली विषाद भरी अपनी सखियों की मण्डली के बीच स्थित सत्यभामा को देखा । किसी रूप रसादि विषयों पर जिसका चित्त नहीं लग रहा है । बराबर निकलते पसीनों की बूँदों को पोंछने से आँखों का अंजन, ओठों की लाली और कपोलों पर बनी चित्र रचना भी जिसकी धुल गई है, ऐसी वह सत्यभामा क्रोध युक्त टेढ़ी भौंहों से युक्त मुख को धारण किए दीखें रही थीं। वह सत्यभामा नाना प्रकार के विचारगत संकल्प विकल्प के कारण अत्यधिक मन की अस्थिरता पाकर अंग-प्रत्यंग के द्वारा सभी भावों के प्रदर्शन से व्यग्रता सूचित कर रही थी । अपने जड़ वस्त्र आभूषणों में शारीरिक संघर्ष के कारण कम्पन तथा शब्द हो जाने से उन्हें अपराधी मानकर झूँठे ही उन पर झिड़क उठती थी तथा क्रोध से भौंहें तानकर कठोर शब्दों में भगवान कृष्ण को कुछ उल्टी-सीधी सुना रही थी । स्वच्छन्दता को रोक देने से क्रुद्ध सर्पिणी की भाँति लम्बी लम्बी भयंकर साँसें ले रही थी ।

सखियों के सन्तत पंखा करने पर भी उसके पसीने का प्रवाह रुकता न था। कभी लम्बी साँसे ले रही थी, कभी चित्त की अनवधानता से नीचे मुँह किए, चरण पीठ पर हे: की अधिकता बताने वाले सांख्य शास्त्र की व्याख्या की संकेत सूचक रेखाएं चरण से खींच रही थीं। कभी ओंठों पर अंगुलि रख कुछ चिन्तित हो सोचने लगती थीं। कभी आँचल से अपना मुँह ढक लेती थीं। अपने भूषण श्रृंगारादि से रहित स्वच्छ शरीर वाली सत्यभामा परम हर्ष के समय भी ऐसी जान पड़ती थी जैसे बसन्त के आरम्भ - में पतझड़ हो जाने से डंठलमात्र से बची लता हो जाती हैं। स्नेह के निधि भगवान कृष्ण आंखों की पुतली के समान प्यारी, अत्यन्त सुकुमारी दुबली उस सत्यभामा को यों विकलता में पड़ी देख अधिक ठहर न सके।

यद्यपि गुप्त रूप से भगवान कृष्ण ने सत्यभामा की सारी परिस्थिति जानली थी फिर भी अपने को अनजान बनाते हुए बनावटी हंसी से हंसते चकित दृष्टि से चारों ओर देखते हुए वक्षस्थल पर बनमाला तथा पीताम्बर धारण करके सत्यभामा के अनुकूल करने के हेतु योग्य उपचार को चित्त से विचारते हुए, सत्यभामा के अन्तर्गृह में प्रवेश किया। बुद्धिमती सत्यभामा जिनके आने की कोई सम्भावना तत्काल नहीं थी, ऐसे अपने प्राण बल्लभ को सामने देख, क्रोध के आवेश में कर्तव्य ज्ञान स्थिर न होने से अभ्युत्थान के लिए न उठ सकीं न पड़ी रहीं। अब यह मुझसे क्या पूँछेंगे पूछने पर मैं क्या कहूँगी या कुछ बोलूँगी भी नहीं " इत्यादि अनिश्चित विचारों में वह थीं, तब तक ही भगवान उनके आसन पर बैठे। तब वह सत्यभामा आसन से उतर अलग हो झुककर नीचे बैठ गई तथा सात्त्विक श्रृंगार भाव के उदय से नवोढा के समान उनका शरीर कांपने लगा। सत्यभामा ने डबडबाई आँखों से उनके चरणों को अश्रुजल से सींच दिया। यह देखकर भगवान कृष्ण सत्यभामा के दुख से दुखी हो स्तब्ध से चुप हो रहे और सोचने लगे यह शोक से आकुल है या अत्यधिक क्रोध के कारण संताप बरसा रही है। भगवान इस प्रकार वितर्कणा

कर ही रहे थे कि विलम्ब होते देख सत्यभामा ने उनके हाथ पर से अपनी ठुड्डी हटा मुँह फेर लेना चाहा फिर कृष्ण ने किसी प्रकार अपने चित्त को स्थिर किया और कहा-हे देवि: अब इसके बाद मेरे चित्त को खिन्न न करो यदि तुम मेरी हृदयेश्वरी हो तो प्रसन्नता की जगह यह विषाद कैसा ? तुम्हीं अपने मान का रहस्य शीघ्र समझा दो क्योंकि मैं स्वप्नावस्था में भी तुम्हारे अहित का विचार नहीं करता फिर भी तुम दया दृष्टि न दिखा क्रोधकर रही हो किसके अपराध पर इस प्रकार विचित्त हो उठी हो । वही बड़े-बड़े भार ढोने वाला मैं आज निर्जीव के समान हो गया हूँ । सबकी अधिनायिका हे सत्यभामा! तुम्हें मैं शोकग्रस्त नहीं देखना चाहता तथा इस सन्तप्त दशा में तुम्हें छूने और देखने में, मैं असमर्थ हो गया हूँ । इस समय क्रुद्ध हुई तुम दुर्गम अद्रिकन्दरा में बहती हुई गंगा के समान भयंकर हो रही हो । अब अपने अपराधी का नाम बता दो उसे मैं एक क्षण भी क्षमा नहीं चाहता । मेरी इन भुजाओं को देखो ये फड़क रही हैं और यदि मुझसे कोई अपराध हो गया है तो हे हृदयेश्वरी । तुम्हारे चरणों की आज्ञा ढोने के लिए यह सिर झुका हुआ है और अंजलि बंधी हुई है ।

सरस हृदय वाले, श्रृंगार समुद्र के पारंगत भगवान कृष्ण के मृगाक्षी सत्यभामा को इस प्रकार नई रीति से मनाते हुए पारिजातहरण महाकाव्य का अंकुर नाम का आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

नवम सर्ग

पारिजातहरण महाकाव्य के नवम सर्ग में सत्यभामा के मान का विधान किया गया है तथा पारिजात वृक्ष का एक वर्ष तक सत्यभामा के आँगन में लगाए जाने का वर्णन किया गया है ।

धीर बुद्धिवाली सत्यभामा इस,प्रकार अपने अनुकूल भगवान को झुकते देख, मन में अंकुरित होती प्रसन्नता को तब तक छिपाकर उदासीन सी ही बनी यों बोल उठीं कि हे नाथ । जिस पर आपके प्रेम का रंग चढ़ चुका है एवं देवर्षि नारद के लाए पारिजात पुष्प को आपसे प्राप्त कर जिसका महत्त्व आज बढ़ गया है ऐसी रुक्मिणी के रहते और किसी बिचारी को आपके प्रीति प्रणाम सहन करने का सौभाग्य कहा है । हे । ईश्वर सभी अर्थ को सिद्ध करने वाले तथा दिव्य कुसुम रूप प्रत्यक्ष वर को देने वाले अपने कर कमल को आनन्द के लिए इस रुक्मिणी को देकर इस समय भारी भार स्वरूप खेद के लिए यह मस्तक अयोग्य स्वरूप में मेरे सम्मुख क्यों झुका रहे हैं तथा पारिजातपुष्प के पाने से बढ़े प्रभाव वाली रुक्मिणी को छोड़कर मुझे क्यों आदर दे रहे हैं ।

पुरुष में सामर्थ्य रहे, गुरुत्व भी रहे समझदारी भी पूरी रहे अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति भी हो, सारी सम्पत्ति रहे, अच्छा विवेक भी हो, यह सभी रह सकता है किन्तु उसमें अनेक प्रिय वस्तुओं में एक रसता,समान स्नेह कदापि नहीं रह सकता इसलिए आप जाएं दूसरे के आदर न सहने के कारण उत्पन्न क्रोध वाली रुक्मिणी को भी मेरे समान दुःखिनी न बनाएं । आपनित्य उसी एक के अधीन होकर रहें इसमें निन्दा ही क्या है । कौन भला सबके हित का साधन कर सकता है । जन्म से ही बिना मर्यादा के बिहरने वाले आपको दूसरों से निन्दा का भय ही कहां है, क्योंकि अतुलनीय सुनी जाती राधा विषम विरह का मानसिक कष्ट आज तक सह रही हैं । मेरा कोई पूर्व जन्म का कमाया पुण्य था, जिससे इस संसार में जन्म लेकर आपकी भार्या बनी किन्तु अनेकों बुरे परिणाम वाले कुछ अदृष्ट ऐसे थे जिनसे आज अपमान का स्थान भी बन गई । यह आपकी अच्छी प्रीति वाली जो मनाने की रीति है मैं तो समझती हूँ किसी छिपे गुण प्रपंच को लक्ष्य कर यह आपकी धूर्त्तता ही है । मैं जो कहती हूँ, यही ठीक है इस कथा से क्या प्रयोजन

जैसी आपकी इच्छा से वैसा ही विचार कीजिए इसमें तनिक भी दोषारोप नहीं है । मनोव्यथा से चित्त की असावधानता के कारण समय या आचार के विरूद्ध जो कुछ भी कह गई हूँ उसको क्षमा दें । इस प्रकार व्यंग्य वचनों की रचना से चिन्त पर चढ़ी एकाग्रता से विलास रस को भुलाकर करुण रस का प्रदर्शन करती सत्यभामा ने दोनों आँखें आँसुओं से भरलीं ।

उन आंसुओं को अपने रुमाल के छोर से पोंछते हुए भगवान सत्यभामा से बोल उठे - बड़े दु:ख की बात है, जिस वस्तु के लिए किसी विशेष विधान की आवश्यकता नहीं ऐसी छोटी सी बात पर इस प्रकार विरक्त होकर वृथा विषाद क्यों कर रही हो । तुम अत्यधिक गुणों के द्वारा मेरी प्रिय हो तुम्हारा नाम ही मेरे आनन्द के बढ़ाने वाला है तो फिर पति के हित की सिद्धि चाहने वाली रुक्मिणी हमारी प्रिय वस्तुभूत तुम्हारे प्रति निष्ठुर व्यवहार वाली कैसे हो सकती है । रुक्मिणी वहां उपस्थित थी इसलिए वह पुष्प उसी को मिल गया इस छोटी सी बात पर इतना क्रुद्ध होना आप जैसी बुद्धिमती के लिए उचित नहीं । यदि यह ज्ञात होता कि तुम्हारा मनोभिलाष इस देव पुष्प के प्रति इतना जागरूक है तो न मैं उसे फूल देता और न वह ग्रहण ही करती । यदि इस फूल के लिए ही आपकी स्पृहा बढ़ गई है तो उसे दूसरे की वस्तु समझ कर दु:ख न करें । सब आप ही का है ऐसा समझें, कहने पर रुक्मिणी बिना विचारे ही उसे आपके आधीन कर देगी ।

इस प्रकार भगवान कृष्ण के कहने पर सत्यभामा का उतरता हुआ क्रोध फिर से बढ़ गया और कटाक्ष के साथ उन्हें देखकर फिर कुछ रुखे शब्दों में कहने लगी - देव भूमि से उत्पन्न पुष्प मेरी सौत को देकर मुझे शिक्षा देकर भिक्षा मांगने को कह रहे हैं, याचना से बढ़कर और कष्ट की क्या बात हो सकती है। याचना [illegible] करने वाले का शील नहीं रहता सारे गुण दुर्गुण बन जाते हैं । कुल कलुषित हो जाता है एवं आकृति भी बिगड़ जाती है। कीर्ति विनष्ट हो

जाती है और जब मान ही प्रधानतया नष्ट हो गया तब बच ही क्या जाता है । वनवास में रहते भी भगवान राम ने अपराध से हरी गई अपनी प्रियतमा सीता को भी रावण से नहीं मांगा और रावण ने भी राम को पूर्ण रूप से जानते हुए अपने अभीष्ट जीवन को नहीं मांगा तो मैं अपनी सौत से फूल की याचना क्यों करने जाऊँ। इस प्रकार फिर चढ़े रोषवाली उस सत्यभामा की अपने नये पराभव के समान पवित्र भी वाणी सुनकर भगवान आवेश में भरे अपने उद्विग्न मन के अनुरूप ही इस सत्यभामा के लिए जो उचित था वही बोल उठे कि पारिजात वृक्ष अभीष्ट पुष्पों को बरसाता हुए एक वर्ष तक सत्यभामा के आंगन में रहे ।

"सत्यं प्रिये प्रतिश्रृणोमि श्रृणुत्वमद्य
श्रृण्वन्त्वमी अपि सुराः स हि पारिजातः ।
वर्षं तवाजिरगतोऽस्तु मयाऽऽहृतो द्रु.
वर्षन्नभीष्टकुसुमानि भजाशु हर्षम्"

भगवान कृष्ण के इतना कहते ही सत्यभामा का मान और देवताओं की ध्वजा तुरन्त टूट कर गिर पड़ी । सत्यभामा के आनन्द के साथ देवताओं के मन में क्षोभ भी अकस्मात् ही जाग उठा । सत्यभामा खुशी से लहलहा उठीं तथा सिद्धान्तभूत भगवान की उस प्रतिज्ञा वाणी ने सत्यभामा के हृदय में जागते संदेह को निश्चित रूप में दूर कर दिया । विकट प्रतीत होकर भी सानन्द दृष्टि के हर्षश्रुरूप जलवृष्टि दिखाकर उस सत्यभामा का मान भी उल्लसित मन के लहरों के हिलौरों से निकाल बाहर कर दिया गया । भगवान ने फिर से प्रतिज्ञा की कि जब तक उस काम वर्षा करने वाले पारिजात को तुम्हारे आंगन में खड़ा नहीं कर दूंगा तब तक तुम्हारे साथ रतिरञ्जन से जायमान कोई भी विनोद मैं नहीं करूंगा ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य नवम सर्ग - 41

इस प्रकार भगवान कृष्ण उस सत्यभामा के साथ ही पर्वत शिखर पर चढ़ चले । पर्वत शिखर पर चढ़ने के समय ही इन्होंने यज्ञ रुक्मिणी आदि स्त्रियों तथा मित्र परिवार सम्बन्धी भृत्यों को भी अपने नगर (द्वारिका) में लौट जाने की आज्ञा दे दी ।

इस प्रकार पारिजातहरण महाकाव्य में भगवान कृष्ण के दाम्पत्य प्रेम से सजा शाखोद्गम नामक नवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

दशम सर्ग

पारिजातहरण महाकाव्य के दशमसर्ग में शरद ऋतु का सुन्दर वर्णन किया गया है साथ ही देवद्रुम की याचना के लिए मुनि नारद के स्वर्ग प्रेषण प्रसंग का वर्णन और भगवान कृष्ण से मुनि नारद के परस्पर नैतिक सम्वाद का वर्णन किया गया है ।

स्फटिक की पक्की फर्श के समान पूर्ण अवकाश वाले शीशे के मध्य जैसे चमकते गिरि शिखर पर चढ़ नारद ऋषि की अभिलाषा भरी स्मृति का अभिनय करते हुए भगवान कृष्ण ने आकाश की ओर देखा । तब तक ही अनेकों प्रकार की कतारें बाँधकर मनोहर शब्दों में शरद ऋतु का स्वागत गान करते,आकाश में बिहरते गंगा जल में तैरते बुल्लों के समान आकृति वाले हंसों को देखा और अपनी प्रियतमा सत्यभामा से बोले -यह धवल हंसों की श्रेणी बरसात बीत जाने पर भी आकाश में इन्द्रधनुष की शोभा ला रही है । शरद ऋतु में क्यारियों से सजी, कहीं पके धानों से पीली, कहीं कास कुसुमों से उज्ज्वल, कहीं हरी घास से हरी भरी इस भूमि को देखा । और भी श्वेत अम्बरवाली, हंसों की गति संचार से प्रसन्न, श्रृंगार हार के पुष्प समूह से मनोहर छटा वाली हमारे आनन्दार्थ शरद ऋतु उदित हो रही है ।

केसर के रंग का फूलों से गिरा पराग पटल जिस पर छाया हुआ है तथा हरे कमल के पत्तों से एवं लाल पीले नीले श्वेत रंग बिरंगे कमल पुष्पों से सजा, कहीं रंग बिरंगे जल विहंगम पत्तों पर झूल रहे हैं, इस शरद ऋतु की विशेषताएं लिए सरोवर शोभित हो रहा है। मेघमण्डल को हटाकर सुलभ स्वच्छता से युक्त, प्रचुर फल फूल शालिधान्य को उत्पन्न करने वाली जल को विमल विधायक क्रियाओं से शुद्धकर यह शरद ऋतु मेरे (कृष्ण के) पाप पुंजों को गिराकर प्रसन्नता को सुलभ बना अधिकाधिक फूल दान से शोभित ऐश्वर्य शाली विमूल बना देने वाली क्रियाओं से जीवन को सुधार कर वरदायिनी ईश्वर की दया के समान आ गई।

इस प्रकार अपनी प्रिया सत्यभामा के विनोद के व्याज से शरद ऋतु की विशेषताएं हर्ष के समान दिखाते हुए जब तक कुछ और ही सोच रहे थे तब तक ही नारायण ने मुनि नारद को सामने आ गया देखा। भगवान कृष्ण ने पूजनीय उस महामुनि नारद का भक्ति पूर्वक आदर करके कहा - हे नारद आप का दर्शन बहुत ही वांछनीय रहा। भली-भाँति विचार कर आपको ही इन्द्र के उपदेश में समर्थ तथा हमारे हित को चाहने वाले जानकर फिर से स्मरण द्वारा आपको हमने बुलाया है। तब नारद ने कहा - वह समय बहुत ही सौभाग्यपूर्ण है तथा मनोहर होगा जिसमें आपने अनुशासन का वहन करें। तब प्रतिवचन देते नारद से भगवान बोले कि आपके द्वारा रुक्मिणी का देव कुसुम प्राप्त करना सुनकर यह आपकी पुत्रवधू सत्यभामा अपना अपमान मानती हुई कि एक बार रुष्ट हो गई थी किसी प्रकार इस समय इसे प्रसन्न पाया हूँ। मैंने इसके लिए प्रतिज्ञा कर दी है इसके महल के अन्दर पारिजात रूप कल्पवृक्ष को रोप दूँगा इसलिए जाइए इन्द्र को समझाइए इस बहू को प्रसन्न करने की कामना से एक वर्ष के लिए उसे यहां भेज दें। इस प्रकार भगवान कृष्ण की कही कठिन उपपत्ति वाली बात सुनकर थोड़ी देर ध्यान कर महर्षि आदर के साथ बोले-

आपको जो वांछित है वह तो अवश्य होने वाला है किन्तु निदर्शन से मैं कहता हूँ कि देवराज पारिजात को किसी प्रकार देना नहीं चाहते क्योंकि इस देवद्रुम के अद्भुत पुष्प को देखकर कभी भगवती गिरिजा ने भगवान शंकर से स्नेहपूर्वक इसकी याचना की। उन्होंने भी देवी को सन्तुष्ट करने के लिए महेन्द्र से याचना की थी किन्तु इन्द्र ने उन्हें भी फूल नहीं दिया। फिर उनसे यदि स्वर्ग के भूषण स्वरूप वृक्ष को मांग रहे हैं तो इन्द्र कैसे देंगे। हे नाथ! सारे जगत के गुरू होते हुए भी आपने छोटे कारण पर इतनी बड़ी प्रतिज्ञा कैसे कर दी अब न तो हम आपको ही अागृहीत कर सकते हैं और न देवराज इन्द्र को अनुकूल बना सकते हैं। दोनों ही कठिन हैं। अपनी माता के भूषण के हर लेने वाले नरकासुर के विनाश के लिए यह इन्द्र जब तक अभी आपकी सहायता चाह रहे हैं तब तक ही इनके परम धन स्वरूप वृक्ष पारिजात के लिए पहले ही आपको मांग पहुँच जाय यह उचित नहीं। ईश्वर होते हुए भी यदि आप प्राकृतिक उपाधि से भूषित होकर इस प्रकार मानवों के व्यवहार के योग्य वेशवाला शरीर धारण करते हैं तो अनुचर होकर भी आपके स्वामित्व का हम यदि किसी विशेष प्रकार से अनुरोध करते हैं तो वह आपके विरूद्ध नहीं होना चाहिए। इस प्रकार कहते हुए नारद बोले यह हमारा मत यदि हितकर हो तो आप स्वीकार करें।

इस अपनी अनुमत नीति के खण्डन में स्थित निराशा भरी नारद की वाणी सुनकर भगवान कृष्ण ने उन्हें समझाते हुए अपनी कार्य सिद्धि के लिए उपपत्ति पूर्ण वचन कहे कि आप बुद्धि में किसी की तुलना नहीं रखते सकल शास्त्र में पारंगत है और यह हमारी बुद्धि आपका आश्रय लिए हुई है। सबके उत्पादन तथा रक्षा में दक्ष होने के कारण आपने ही जगत् का पितृत्व प्राप्त कर लिया है। नित्य ईश्वर के प्रति ज्ञानस्वरूप प्राकृतिक वचन विशेष रूप वेदों को आप जानते हैं। भक्ति के द्वारा आपने ईश्वर को भी जीत लिया है। यह आपकी वाणी सर्वथा प्रसन्न करने वाली सरस भावों के

विकास से रमणीय, दीप्ति से मनोहर, सन्दर्भ शुद्धि पद-विन्यास की स्वच्छता पक्ष में सम्यक ग्रंथन की सुरीति तथा माधुर्यादिगुण से युक्त, प्रसादवाली, भली-भाँति अलंकृत है। इस आपकी वाणी ने औचित्य का त्याग कभी नहीं किया। किन्तु हे मुने। यह एक मत है कि कोई नीति सर्वदा के लिए समान नहीं होती समय से रमणीय वस्तु भी त्याग योग्य हो जाती है। जिन्होंने उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए यदि प्रकृति सम्भव शरीर धारण किया है तो प्रकृति के गुणों का अनुरोध भी बलात् उनको करना ही पड़ता है और एक ही वस्तु सबके लिए समान प्रियता या अप्रियता नहीं रखती सब अपने - अपने चित्त विकास के अनुरूप होती है। इसलिए आपने जो कहा कि छोटे कारण से बड़ी प्रतिज्ञा क्यों हुई तो उपर्युक्त कारणों से किसी भी कार्य को कारणों की लघुता या गुरुता जीव के चित्तगत बोध का अनुसरण करती हैं अतः सबकी गति समान नहीं होती है। अपने से इतर के अभिमत कार्य को यदि करना चाहते हों तो पहले उसके हृदय के झुकाव को अच्छी प्रकार से निश्चित कर लेना चाहिए। इन्द्रियों का राजा (मन) जहां दृढ हो जाता है। उसमें तत्पर होने में अन्य किसी की अपेक्षा नहीं होती। जिसकी प्रतिज्ञा न की गई हो जिसके विशेष निर्णय में कहीं से रुकावट आ गई हो जो विषय अनेक विरुद्ध कोटि की कल्पनाओं के साथ उठता हो वहां किसी दूसरे यथार्थवादी की सम्मति से किसी एक पक्ष का शरण लिया जाता है किन्तु उसके निश्चय हो जाने पर तो उसको करना ही प्रति कर्तव्य है। इसलिए मेरे हित की भावना से यह कार्य निःसन्देह ही आपके लिए कर्तव्य है और हम इन्द्र के बन्धु हैं और भाई होने के नाते उनके हानि-लाभ सबमें समान भागी हैं अतः वह हमको वृक्ष देंगे ही। अच्छे लोग साम, दान, दण्ड, भेद रूप चार उपायों से ही सारे पारस्परिक जगद व्यवहारों का पालन करते हैं। अतः आप साम के द्वारा ही इन्द्र से देव वृक्ष की याचना कीजिए क्योंकि छोटे भाई पर स्वाभाविक

वात्सल्य पूर्ण प्रेम होता है और इन्द्र हमारे बड़े भाई हैं । यह सब रहते हुए आप मेरा सन्देश इन्द्र के पास पहुँचाइये कि निजी प्यार से सत्यभामा को आनन्दित करने के लिए प्रेमोपहार का सारा रूप पारिजात वृक्ष हमको दें । यदि ऐसा न हुआ तो मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए परिकर बांधकर तैयार हूँ उस वृक्ष को पृथ्वी पर लाने के लिए गदा हाथ में ले आपके नन्दन वन पर आक्रमण करूँगा । इस प्रकार भगवान को कहते देख इनका मत अभिनिवेश पूर्ण जानकर नारद ने उनके अभीष्ट सिद्धि विशेष के लिए देवनगर (स्वर्ग) के प्रति प्रस्थान कर दिया ।

इस प्रकार पारिजातहरण महाकाव्य में यह पल्लवन नाम का दसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

एकादश सर्ग

पारिजातहरण महाकाव्य के ग्यारहवें सर्ग में स्वर्ग का संक्षिप्त वर्णन किया गया है । तत्पश्चात् नारद इन्द्र सम्वाद का वर्णन मिलता है ।

श्रीपति भगवान् कृष्ण के प्रिय कहने वाले वह देवर्षि नारद आकाश में ऊपर स्वर्गलोक तक के बीच के लोकों को लांघते हुए पाकशासन (इन्द्र) के नगर में पहुँच गए । कनक पर्वत के शिखर के बीच इन्द्र नीलमणि के बने प्राकार के भवन में प्रवेश किया । इस भवन के बीच मणिमय भित्ति पर रत्नों की पच्चीकारी द्वारा कढ़ी लता पुष्पादि से अंकित नाना प्रकार के प्रतिबिम्बमय सुन्दर चित्रकारी से चित्रित कल्पनातीत सजावटों से सजी देवसभा सुधर्मा को देखा जिसके चारों ओर सुन्दर फाटक लगे थे जो अनेकों कक्षाओं से शोभित थीं तथा रत्नों से जड़े जिसमें खम्भे तथा तोरण थे ।

देवराज का सिंहासन जिसमें सजा हुआ था तथा जिसके चारों ओर कुर्सियाँ सजी थीं और दाहिनी ओर दूवगुरु का तदनन्तर देवर्षियों के और बायीं ओर देवताओं के आसन सजे हुए थे। अत्यन्त सर्वोत्तर मधुर बोलने वाले सुवर्ण सार से बने पिंजरों में टंगे शुक सारिका आदि पक्षियों से जो गूँज रही थी जिसमें कहीं क्रीड़ा, शैल के शिखर पर बने महलों की चोटियों से झरने गिर कर बह रहे थे। सर्वदा सभी ऋतुओं के विनोद के उपर्युक्त साधनों से सज्जित शोभा वाली सुधर्मासभा में नारद जी ने प्रवेश किया। इसके अनन्तर रमण भूमि को महर्षि नारद ने पार किया जो भूमि मनोहर मरकत मणियों की चित्रित सब्ज भूमि में जो सजी तथा छोटे-छोटे जलाशय तथा चबूतरों से विशेष रूप से शोभमान थी जो तथा जो सैंकड़ों फव्वारों से जो मन को मुग्ध कर रही थी। जिसमें कहीं केलि - पर्वत जमे थे, कहीं चन्द्रशालायें शोभित हो रही थीं कहीं सजे लता मण्डप में झूले लगे हुए थे। मोतियों की झालरों वाली जवनिकाओं से जिसका मध्य भाग ढका हुआ था तथा जिसमें सुन्दर फर्श थे, खेलने का मैदान था तथा शिकार के उपयोगी वन बना हुआ था। कहीं उपासना के मन्दिर थे। झीलों में जल जन्तुओं तथा सारस आदि पक्षियों एवं दिव्य कमल आदि पुष्पों से जो मन को लुभा रही थी। सोने की लरों के रचना विशेष से जो शोभित थी तथा देवललनायें जिसके सुन्दर स्थानों में विहर रही थी जिसके शिखर पर ऐरावत के चिह्न से चिन्हित महाध्वज फहरा रहे थे ऐसे सभा के फाटक पर पहुँच कर द्वारपाल के द्वारा सूचना देकर सभा के भीतरी भाग में नारद जी ने प्रवेश किया।

तब इन्द्र ने उनका अभिवादन किया और सब प्रकार से नारद जी की पूजा करके अपने पास बैठाकर कुशल प्रश्न किया कि अपने पिता ब्रह्मा जी के लोक से ही यदि आपका आगमन हुआ है तो उनकी कुशलता बताइए। श्री नारायण या शिव का यदि कोई सन्देश लाए हो तो उसे सुनाइये अखिल भुवन

नायक मेरे छोटे भाई भगवान रमानाथ इस समय वसुन्धरा पर शासन कर रहे हैं उनका कुशल सुनाकर मेरी उत्कण्ठा शान्त कीजिए । यदि केवल मेरे पर अनुग्रह करते यों भी आप आ गए तो मैं दर्शन से कृतार्थ हुआ फिर भी कल्याण की वर्षा करने वाली निजी वाणी के द्वारा अधिकाधिक कुशल की वृद्धि कीजिए।

इस प्रकार कहते हुए इन्द्र ने ही जिसका प्रकरण उपस्थित कर दिया ऐसे अवसर को पाकर नारद जी ने अपने अभिलखित कार्य की सिद्धि के लिए भूमिका के समान वचन प्रबन्ध आरम्भ किया कि इस समय यह हमारा भ्रमण केवल आपके ही अभीष्ट कार्य सिद्धि के लिए है । आपके पिता श्री कश्यप जी से केवल आपको कुशल निवेदन क फिर उनका सन्देश भगवान कृष्ण को सुना द्वारिका पुरी से मेरा यहां आना हुआ है । आपके अनुज भगवान कृष्ण भी दैत्य-दानवों को दबाते हुए मानवों का शासन भली-भाँति कर रहे है । सब प्रकार से आपके हित कर कार्यों के साधब में लगे हुए यह चक्रधारी कृष्ण भौमासुर की पराजय चाहने वाले आपका साथ देना भी अपनी ओर से चाह रहे हैं परन्तु इस बीच आ पड़े एक आकस्मिक वृतान्त को सुनिए जिससे नारायण ने सम्प्रति आपके पास मुझे शीघ्र भेज दें । आपके सुरवृक्ष पारिजात का एक फूल पाकर मैंने उनको भेंट किया उन्होंने उसे रुक्मिणी को दे दिया यह सुनकर उनके बाहरी प्राण के समान प्रिय दूसरी स्त्री सत्यभामा ईर्ष्या से कुपित हो उठी थीं, उन्होंने भी इनके मान भंग करने के उतावली में प्रति विधान के रूप में वर्षभर के लिए पारिजात वृक्ष को इनके घर में लगा देने की प्रतिज्ञा कर दी है । अतः इस कार्य की सिद्धि आपने अधीन है यदि सस्त्रीक अपने अनुज भगवान कृष्ण के ऊपर आपका अनुग्रह हो तो वर्ष भर के लिए देववृक्ष रत्नभूत पारिजात को दे दीजिए । यदुनाथ ने अपने इष्ट पारिजात को अवश्य प्राप्त कर लेने के विचार से ही हमारे मृदुल मुख से आपसे याचना किया है ।

नारद जी के इतना कहने पर ही अमरनाथ इन्द्र चमक उठे और बोल पड़े "अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है उस छली कृष्ण के हृदय को मैं जानता हूँ देवता से लेकर असुर मनुष्यों तक अपनी प्रभुता रखना चाहते हुए अपनी माया फैलाकर हम सबको जो दबा रहे हैं। पहले ही पृथ्वी पर अवतार लेते समय सब देवताओं को मनुष्य योनि में भेज दिया अब जो स्वर्ग की उत्तम वस्तु है उसे भी हर लेना चाहते हैं। प्रतिवर्ष गोपों के द्वारा किया जाने वाला जो मेरा इन्द्रयाग था उसको उन्होंने रोका। इन्होंने इस प्रकार एक बहाना पैदा कर हमें जीतने की इच्छा रखते हुए आपसे यह मौखिक सन्देश भेजा है। इसलिए हे नारद! जाइए श्रीकृष्ण से कहिए कि बिना युद्ध के एक पत्ता भी उस वृक्ष का नहीं हिल सकता। इस प्रकार इन्द्र के कहे जाते हुए पारिजातहरण महाकाव्य का "सेक" नाम का ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

द्वादश सर्ग

पारिजातहरणमहाकाव्य के द्वादश सर्ग में नारद के मुख से पारिजात वृक्ष को देने के विषय में निषेधोक्ति को सुनकर भगवान-कृष्ण का इन्द्र के प्रति क्रोध का वर्णन, भगवान कृष्ण के द्वारा अपने वाहन गरूड़ को बुलाना तथा गरूड़ के द्वारा कृष्ण की स्तुति का वर्णन मिलता है।

तब देवलोक (इन्द्रलोक) से लौटकर नारद ने इन्द्र के मुख से कही गई बात को भगवान श्री कृष्ण से कहा - इन्द्र के निषेध को सुनकर अहंकार से भगवान की दृष्टि कुटिल हो गई। नवनीत के समान कोमल मन वाले होते हुए भी श्रीकृष्ण अत्यधिक परिस्फुटित कोप से कर्कश हो गए। श्यामल शरीर वाले होतें हुए भी क्रोध से लाल शरीर वाले हो गए जैसे गोधूलि के समय कुछ

काला तथा कुछ लाल हो जाता है भगवान ने नारद से कहा कि इन्द्र किस वैभव से गर्वित होकर आदेश तिरस्कृत कर रहा है । सम्पूर्ण क्रोध समुदाय को नाश करने के कारण भूमि इस संसार में मेरा जन्म हुआ है क्या यह वह इन्द्र नहीं जानता ।

देवलोक में भी मेरे ﴾कृष्ण के﴿ स्थान में रहने वाली विभूति से शोभित मन की समाधि को आप ﴾नारद﴿ जैसे तीव्र तप से प्राप्त करते हैं । विमूढ़ मन वाले वे इन्द्र अपनी समृद्धि का पालन अविवेक पूर्वक कर रहे हैं । मदिरा की सखी तथा कामदेव को जन्म देने वाली रमा ﴾लक्ष्मी﴿ मुझ कृष्ण के बिना कुछ भी नहीं है इसलिए सम्पत्ति की उपेक्षा करके तथा समुद्र से उत्पन्न होने वाली लक्ष्मी की उपेक्षा करके शंकर विष को पी गए । इस लक्ष्मी के द्वारा ही वश में किया गया मैं विविध अवतारों को धारण करता हूँ । मैं कृष्ण याचक इन्द्र से पारिजात को माँग रहा हूँ ।

प्रसन्नता के कारण आँसुओं से भरी हुई श्रीकृष्ण की बाँयी आँख फड़कने लगी और शुभदर्शी उनकी दाहिनी भुजा, जिसमें सुदर्शन शोभित हो रहा था, फड़कने के बहाने विजय का अनुमोदन करने लगी । बलपूर्वक इन्द्र के गौरव को निरस्त करके उन श्रीकृष्ण ने पारिजात के हरण में उद्यम किया, हरि की रक्षा करने वाले अद्भुत पराक्रमशाली गरूड़ को भगवान अपनी स्मति में श्रीकृष्ण के याद करते ही मन का अनुगमन कने करने वाले मार्ग से पंखों के फड़फड़ाने की ध्वनि से निवेदित आकाश में उड़ता हुआ गरूण अनुकरण करते हुए मेघखण्ड के समान दिखाई दिया । गति की भंगिमा से विविध विभ्रम करता हुआ क्षितिज के एक ओर गति विशेष के गर्जन से मन में चकित होने वाले लोगों में घबराहट पैदा करता हुआ पंख सहित चेतन गिरि के समान वह गरूड़ दौड़ा । भारी पंखों के हिलने से आकाश में प्रचण्ड कूजन से वह गरूड़ सूर्य या चन्द्रमा को छिपाता हुआ अत्यधिक प्रसन्न होते हुए सुरों को डराता हुआ हरि की

ओर दौड़ा क्या यह भगवान का रथ है अथवा तूफान से उठा हुआ यह विन्ध्य पर्वत अपनी स्थिति से हट गया है अथवा अलका के अधिपति का विमान पुष्पक उतर रहा है, ऐसा दूर से लोगों के द्वारा देखा गया । चरणों की अगुँलियों को पुञ्यिका के भीतर किए हुए बहुत बड़ी शाखा को पकड़े हुए चंचल चोंच में साँप के महान शरीर को लटकाए हुए महान् शरीर वाला वह गरूड हरि के आगे उतरा और पहले बलराम को फिर तीर्थों के भी तीर्थ भगवान श्रीकृष्ण के चरण कमलों में प्रणाम किया और मनुष्यों की वाणी में बोला —

हे परमपूज्य । वह मेरा शरीर और मन तुम्हारे चरण कमलों से क्षणभर के लिए भी अलग नहीं है । हे निकृष्ट । तुम्हारी मानव के रूप में स जो चेष्टनाएं हैं वह हम लोगों को प्रसन्नता देने वाली हैं ।

हे अनन्त, नूतनता के व्यापार से नवीनता ही रमणीयता का आश्रय है । तुम्हारी प्रकृति के प चीकरण से आकाशादि पृथक उत्पन्न हुए । अलग-अलग करके लाखों अदभुत जगत् अभिन्न होता हुआ देखने वाले में भेद पैदा करता है । दूर से गिरी हुई जल की बूंदे मिट्टी में अनिल में या पृथ्वी में कहीं लीन हो जाएं । किन्तु परमार्थतः वह पृथक नहीं है । उसी प्रकार तुम एक ही जगत् के रचयिता हो । ,पकृष्ट ज्ञान (चैतन्य) द्वारा जड़ को परिमार्जित करते हुए इस जड़ जगत् को विभिन्न जन्मों में प्रकाशित करते हो । मेरा (गरूड़ का) यह शरीर रूपीयन्त्र तुम्हारे अवश है ।

हे परमेश । तुम्हारा आज पृथ्वी पर मर्त्य रूप में विभ्रम अदभुत विनोद कौतुक है । जैसे दीप स्वयं प्रकाशित होकर वस्तु को दिखाता है । उसी प्रकार तुम स्वयं प्रकाशित होते हो । तुम्हारा परिचय अलग ही सज्जनों को प्रसन्न करता है । हे ईश्वर । हम लोगों का आपसे अलग कोई अस्तित्व नहीं है । जिस भुवन में तुम भ्रमण करना चाहते हो मुझे वहीं की आज्ञा दो । ऐसा गरूड़

के कहने पर माधव बोले - हे विहगेन्द्र तुम्हारा मुझसे अलग ऐश्वर्य नहीं है, मैं इन्द्र के नन्दनवन में विहार करने की इच्छा रखता हूँ और तुम्हारे उड़ने के लिए सूर्योदय तुम्हारा महोदय होगा । इस प्रकार अपने वाहन खग का निर्देश देकर भगवान ने अपने पुत्र कामदेव को बुलाया और कहा कि सात्यकि के साथ इन्द्रपुरी के उपवन चलो और हवहां बल से पारिजात को ग्रहण करके मेरी पत्नी सत्यभामा की प्रसन्नता के लिए समर्पित कर दो । माधव के ऐसा कहने पर काम कामदेव बोले - जैसी आपकी इच्छा । माता - पिता के अनुसार आचरण करता हुआ अपनी मातृभूमि का जो उत्कर्ष न करे संसार में पुत्रपद का अधिकारी वह अपने से या दूसरों से क्या तिरूस्कृत नहीं है । ,पसंग में ऐसा कहने पर पुत्र से सन्तुष्ट होकर वह बोले - हे पुत्र तुम्हारी विजय हो । इन्द्रपुरी में विजेता के रूप में शुक दृष्टि से तुम्हें देखने की इच्छा रखता हुआ तुम्हारे साथा जाऊँगा ।

इस प्रकार यात्रा का समुद्योग सम्पन्न करके भगवान कृष्ण ने सांयकाल साधु विधिको सम्पन्न कर दिया । इस ,पकार पारिजातहरण नामक महाकाव्य का पुष्टि नाम का बारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

त्रयोदश सर्ग
========

कवि उमापति द्विवेदी विरचित परिजातहरण महाकाव्य के तेरहवें सर्ग में सन्ध्या का वर्णन मिलता है । कवि ने सन्ध्या का बहुत ही मनोहारी वर्णन अपने इस काव्य में किया है तथा साथ ही सन्ध्या का उपमा के माध्यम से भी बहुत ही मनोरम चित्रण किया है ।

सन्ध्या हो जाने पर प्राक् दिशा में चन्द्रमा उदित होते हुए तथा पश्चिम दिशा में सूर्य के अस्त होते हुए एक साथ दोनों रक्त वर्ण के आकाश में दिखाई पड़े और वह दोनों आकाश में ऐसे लग रहे हैं जैसे मणि के बने हुए

पुटभाण्ड के दो खण्ड हो गए हों । और उसके फूट आने पर कामदेव की स्त्री रति के आभूषण का सिन्दूर का प्रवाह फैल गया हो । दिन के ढल जाने पर आकाश के बहुत अधिक अन्धकार से ग्रसित होने पर सम्पूर्ण लोक के द्वारा अस्पृश्य किन्तु आलोक्य रूप अपनी शेष सहित पीड़ा के कारण उत्पन्न रक्त वर्ण का दिखाई दे रहा है । सूर्य के चले जाने पर दूसरी सन्ध्या प्रदोष के आने पर मानो बहुत अधिक अनुराग के अनुसरण से अपने अर्ध्यदान के अभिनय द्वारा कुसुम के गन्ध से रक्त वर्ण के एकत्र हो जाने पर इस विमल आकाश में बिम्बायमान फैल रहा है मानों ये लाल रंग का बिम्ब बहुत अधिक अनुराग ही हो । रात्रि में चन्द्रमा के उठने पर मानो तारों का हार पहने हुए बहुत अधिक रक्त वर्ण के वस्त्र से अंग को ढके हुए तथा ढके हुए मुख की कान्ति वाली सन्ध्या मानो सूर्य का अनुसरण कर रही हो अथवा रवि के द्वारा त्यागी भानु को आदर देती हुई मन में पाप के भाव लिए हुए रोष के कारण रक्त वर्ण के हुए वस्त्र वाली साध्वी गुरू वरुण की दिशा अभिसार कर रही है । विधि के अधिकार को पूरा करके सूर्य प्रसन्न होकर दिशा की गोद में उतर रहा है इसी कारण मानों अनुरागवती पश्चिम दिशा बहुत अधिक लाल हो गई हो । आकाश के एक भाग में अन्धकार के फैलने पर राग के जागृत होने पर और दूसरी दिशा में जो राग है वह यह सूर्य बिम्ब है, वह ऐसा लग रहा है, मानो भगवान शंकर की ष शक्ति अम्बिका के केश में रहने वाले चन्द्रमा के चारों ओर बिन्दुओं वाल सिन्दूर का सिन्धु फैल रहा है तथा आकाश के एक भाग में अन्धकार तथा एक भाग में, पकाश ऐसा लग रहा है जैसे पृथ्वी पर बाल सन्ध्या अनुराग से निहार रही है । सन्ध्या कालीन अंगना का स्मित मुख चन्द चन्द्रमा के निकल आने से ढक गया है । समुद्र में सूर्य अस्त हो गया है और ऐसा लग रहा है सूर्य के अस्त होने पर जैसे कमल समूह अत्यन्त विरह के कारण अवसाद को प्राप्त हो गए हैं अर्थात सूर्य के अस्त होने पर कमल समूह का मुख मुकुल बन्धन को प्राप्त हो गया है अर्थात् बन्द हो गया है और घबराहट से निकलते हुए चंचल भ्रमर कपट काया को धारण

करने वाले काजल से युक्त आँसुओं को छोड़ रही है । सन्ध्या के समय का एक बहुत ही मनोहारी चित्रण उपस्थित है --

"प्रियतम ! यमसोष्ट प्रीतये ते प्रदोषः
स हि युवतिमनोभी राग राशिर्निपीतः
मम हृदि तु भवत्युदघोषितोच्चैः प्रतिज्ञे ।
नटति निशि सुधाशोरंकगोऽयं कलंकः ।।"[1]

इसी प्रकार सन्ध्या का वर्णन करते हुए कवि उमापति का पारिजातहरण महाकाव्य का प्रतिरोप नाम का त्रयोदश सर्ग समाप्त हुआ ।

चतुर्दश सर्ग

पारिजातहरण महाकाव्य के चतुर्दश-सर्ग में पुत्रसात्यकि, प्रद्युम्न तथा पत्नी सत्यभामा के साथ भगवान कृष्ण का स्वर्ग जाना तथा मध्यम लोक का वर्णन मिलता है ।

सूर्य की किरणों से आकाश का रक्त-वर्ण का हो जाने से पृथ्वी पर चन्द्रवंश का विस्तार करने वाल सत्यलोक के अधिपति वह कृष्ण जाग गए । जागकर अपने वाहन गरूड़ को बुलाया तथा साथ ही सात्यकि और पुत्रों को भी स्मरण किया । वे तीनों युद्ध करने वाली सेना सहित उपस्थित हो गए ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - त्रयोदश सर्ग - 35

कवि उमापति द्विवेदी ने इस सर्ग में गरूड़ की सजावट का वर्णन भी किया है । गरूड की पीठ पोष पर रत्न की लड़ियां हैं, उनसे युक्त सितारों से जड़ा पदमासन गर्भ है । अष्टापद से दीप्त श्रृंगला से बंधा पलंग है और पंलग से युक्त कुध से परिवेष्टित ऐसी वह गरूड़ की पीठ है । उस पर झुका हुआ दण्ड का छाता लगा हुआ है दोनों तरफ पंखा झला जा रहा है । दो धनुष चलाने वाले को बिठा दिया है । वह गरूड़ासन पूँछ तक नाना प्रकार के तारों सदृश रस्सी से अलंकृत है और पूँछ तक कुछ हिस्सों में मणियां लटक रही हैं और कमल सदृशं वक्षस्थल रत्नों की माला से युक्त है । गरूड़ की ग्रीवा में माला की तरह सजे हुए जितने रत्न हैं उसकी प्रभा से चारों दिग्दिगन्त प्रकाशित हो रहे हैं । पांव नूपुर से कान्त हो रहे हैं । इस प्रकार के गरूड़ पर बैठे हुए पत्नी सत्यभामा, गुरू-वृहस्पति और पुत्रों सहित भगवान् कृष्ण को कुछ लोगों ने देखा । कांपते हुए पंखों से नष्ट कर दिया है मार्ग की बाधा जिसने ऐसा गरूड़ चन्द्रमा, सूर्य आदि अपूर्व ग्रहों के सदृश अपने को प्रकाशित करता हुआ उड़ गया ।

वायु की सप्त लहरों को पार करके, पिशाचि आदि चार पुरों को पार करके यम की आश्रय-भूत नगरी को देखा जो विशाल शालाओं का आवरण हैं तथा जो गोपुरों से अलंकृत है । भगवान् श्रीकृष्ण उस पुरी को पत्नी सत्यभामा को दिखाते हुए बोले हे देवि ! लोक यात्रा में लोगों का संयमन-नियंत्रण करने वाले इस पुरी के राजा यम हैं । पृथ्वी से इस पांचवी भूमि पर आश्रय लेने वाले जो यम हैं वह समस्त मर्त्य लोक के मनुष्य की अर्न्तवासना से युक्त क्रियाओं का निर्णय करके उपर्युक्त मन्त्रणा लेकर अपने अधिकार द्वारा उन-उन क्रियाओं के फल को देता है । इस नगरी में पांच शरीर धारी हैं जो ब्राह्मणों की हत्या करने वाले हैं अथवा वे लोग जो व्यवहार सत्व से गिर जाते हैं उन्हें यम दण्ड देता है । ये पंचपातकि यहां रहने वाले उनके द्वारा

अधिक काम करने वाला लेकिन विश्वास से पाप भावना के द्वारा आचरण करने वाले यम की आज्ञा पाकर परलोक में होने वाले जो क्लेश हैं उन फल के भाजन बन जाते हैं । मानव-लोक के समान इस लोक में शासन होता है । अधिपति यम न्यायाधीश का भी शासन होता है । अधिपति यम न्यायाधीश का भी शासन करता है । यम नियम से स्थित इस लोक में निवास करता है । समान पक्ष वाली नीति से राजा से रंक तक की रक्षा करता है । यह यमपुरी परेत आदि को आत्मगति प्रदान करने वाली है । सज्जनों के लिए यह पुरी अच्छी है, पापी के लिए भयंकर है और ब्रह्मर्षि, राजर्षि, सुरर्षि से अलंकृत तथा समान रूप से भाजित है । वही यह यम नगरी है, जहां देव लोग पिता लोगों का स्वधा से भरण करते हैं । कर्म के द्वारा प्राप्त उन-उन विशेष जन्मों के योग्य अर्थात् जैसे-जैसे कर्म किए हैं योग-क्षेम की उन पितरों की प्रतिभावना करते हैं । तत्पश्चात गन्धर्व लोक में स्थित अप्सराओं को भगवान कृष्ण ने अपनी पत्नी सत्यभामा को दिखाया और बताया कि यह लोक विविध प्रकार के वाद्यों तथा संगीत कला विशेष से अलंकृत है । तब वे लोग इन्द्रपुरी पहुँच गए । वहाँ पर पहुँचकर देवसभा सुधर्मा को देखा, जिस सभा में अपने-अपने लोकों से मन्त्रियों और पुरोहितों के साथ देवता और राजा लोग आए थे ।

इस प्रकार इन्द्रपुरी के सौन्दर्य का अतिरमणीक वर्णन इस श्लोक में प्रस्तुत है —

> इयं सुरसरित्प्रिये प्रतिदिशम्पुरो वर्तिनी ।
> प्रसेतुपरिखायिता मणिमयावतारांचिता ।
> वस्त्र तटरोहिभिस्सुरलता द्रुमत्काननै-
> र्वृता सुरसुरर्षिभिस्सततसेविता स्तेपुरः ।।[1]

---

[1] पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्दश सर्ग - 78

इस प्रकार कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाव्य का प्रतिष्ठा-नामक चतुर्दश सर्ग समाप्त हुआ ।

पंचदश सर्ग
=======

पारिजातहरण महाकाव्य के पन्द्रहवें सर्ग में अमरावती के इन्द्रभवन का तथा नन्दनवन का वर्णन किया गया है -- पारिजातवृक्ष के आहरण की कथा भी इसी वर्ग में मिलती है जो इस काव्य को लिखने का मुख्य उद्देश्य है -

इन्द्र ने नारद से पारिजात-वृक्ष को देने में असम्मति प्रकट की तथा साथ मेंयह भी कहा कि बिना युद्ध के वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता इस पर भगवान कृष्ण बहुत ही क्रोधित हुए और युद्ध के लिए कृष्ण ने इन्द्र के महल में जाने के विचार से गरूड़ का आह्वान किया ।

इसके बाद देवताओं के उपपुर {इन्द्रलोक} पहुँचकर माधव गरूड़ से बोले - हे । विहंगमेश । इस देवताओं की नगरी का विगाहन करो ।

यह नगरी विश्वकर्मा ने देवताओं के तपोबल से बनाया है । यह नगरी एक क्षण के लिए मुझे भी विस्मय युक्त कर देती है । देवता यहाँ अत्यन्त अद्भुत ऐश्वर्य के भागी हैं ।

देवेश्वर इन्द्र की सेवा से अभय पद को प्राप्त करते हैं । सैकड़ों महर्षि शुभ भावना से इन्द्र की उपासना करते हैं । देवता दिव्य बल से बढ़ते हुए लोगों के मन की भावनाओं को जान लेते हैं । अतः जबसे हम कल्पवृक्ष की अधिलम्बनावधि पा न जाएं अपने शरीर को चेष्टाओं को छिपाकर घूमों यहाँ पर दिन में महलों में चाँद की चाँदनी रहती है रात में पृथ्वी प्रकट हो जाती है । चन्द्रमा अमावस्या की रात को इस इन्द्रलोक में अपने कान्ति मण्डल को छिपाकर स्थित रहता है ।

हे।कान्ते तुम्हारे द्वारा यह सामने बहती देवगंगा देखी जाय यह अत्यन्त श्रेष्ठ है । इस इन्द्रपुरी को चारों तरफ से घेर कर यह परिखा बनी हुई है और इस प्रकार इन्द्रपुरी को चारों तरफ से घेरकर यह हार वाली बना रही है । भगवान सत्यभामा से कहते हैं — खगाधिप पर अधिष्ठित तुम्हारे द्वारा पार की जाती हुई स्पर्श सी करती हुई इसको इन्द्रपुरी को प्रणाम करो । इसकी छटा बड़ी मनोज्ञ हैं दिव्यलोक की मानों यह दिव्य माला है इस नदी के पार इस शाल को देखो जो चारों ओर से इससे घिरा हुआ है । यह शाल बड़ी मूल्यवान मणियों से सजा हुआ है । इसमें बाहर तो सुविधा से निकला जा सकता है लेकिन भीतर सुविधा से नहीं जाया जा सकता ।

इस प्रकार नगरी का वर्णन करते हुए भगवान कृष्ण तथा सत्यभामा नगरी के द्वार तक पहुँच जाते हैं । तब भगवान सत्यभामा से कहते हैं इसकी सजावट देखकर भला कौन होगा जो यहाँ आने के लिए स्पृहा न रखता हो । सुन्दर युक्तियों से छिपने वाले तथा यन्त्रों से तन्त्रित बहुत ऊँची अट्टालिकाओं वाले महान बादल का विभ्रम करने वाले का यह अत्यन्त सदुष्य प्रवेश है उनको पार करके उनके बीच तुम उपस्थित हो और इस अमृत बहाने वाली आकाश गंगा की शोभा को देखो जो अतुलनीय है ।

इस प्रकार विभिन्न प्रकार से इन्द्रपुरी का वर्णन करते हुए भगवान ने सत्यधामा को पारिजात वृक्ष को दिखाया और अपनी प्रिया से बोले —

"क्षीराब्धि सम्मन्थनेषु रत्नेष्वलं ।
प्रसिद्धो विटपाधिराज ।।
साम्राज्य सारोऽयमिहा मरणामभीष्ट
सूत्येकनिदानभूतिः ।।[1]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य- पंचदश सर्ग-69

इस इन्द्रलोक में कहीं भी सुनार और जुलाहे नहीं बसते । देवताओं के उपभोग के लिए वस्त्र, भूषण और अन्य पदार्थ यहाँ के कल्पवृक्ष उत्पन्न करते हैं । यहाँ ज्योतिषी लोग काल शुद्धि का गणन नहीं करते । रसोई बनाने वाले नहीं होते । कामधेनु अमृत का दूध देती है । समस्त रत्न भण्डार के द्वारा यह नगरी विधाता के निर्माण की सीमा है । इन्द्र की नगरी अलभ्य है । जिन्होंने पुण्य संचय न किया हो उनके द्वारा यह नगरी प्राप्य नहीं है । अन्य जो पवित्र नगरी है अपनी प्रशंसा के लिए अलंकृत होकर इससे तुलना करती है । इस प्रकार इन्द्रलोक की श्रीकृष्ण प्रशंसा करते हुए भगवान गरूड़ से कहते हैं जगत्रय में आगे रहने वाली, गौरव की शोभा वाली नगरी जो किसी के समान नहीं है उसको किस साधन से प्राप्त करूँ । यहां कैलाश पर्वत के बराबर शरीर वाला इन्द्र का ऐरावत नाम का हाथी रहता है । उच्चश्रवा नाम का घोड़ों का सम्राट यहाँ रहता है जो मन के समान गति वाला है । यहीं पर स्त्रियों में रत्न स्वरूप अत्यन्त प्यारी इन्द्र की अप्सराओं में श्रेष्ठ उर्वषि भी स्थित हैं । गौओं में रत्न के समान कामधेनु भी स्थित हैं । देवताओं की वाणी का जल सबसे श्रेष्ठ भी यहीं है । वनों में श्रेष्ठ नन्दन वन भी यहीं है । नन्दन वन का रहन वह पारिजात वृक्ष भी यहीं है । इस प्रकार इन्द्रपुरी की प्रशंसा करते हुए भगवान क गरूड़ से कहते हैं -- हे ! विहंगमेश यत्नवान् हो । सुरद्रुम के आहरण की सिद्धि के लिए प्रयत्न करो । तुम तो इस वृक्ष के वैशिष्टय को जानते हो क्योंकि इस वृक्ष से तुम्हारे द्वारा अमृत का अपहरण किया गया था । लेकिन फिर भी इस वृक्ष के बारे में अपनी प्रिया सत्यभामा को खुश करते हुए वर्णन करता हूँ ।

तब भगवान कृष्ण ने पुत्र सहित द्रुमेन्द्र की परिक्रमा करके हृदय से अभिनन्दन किया तथा मन्त्र विधियों का आह्वान करके नन्दन वन से उखाड़ लिया ।

आकस्मिक अद्‌भुत उस गरूड़ के उतरने पर विचित्र अनुचिन्तन लोगों में हुआ । प्रिय हरि का दर्शन भी हुआ तथा जितने भी अधिकारी थे सब स्तब्ध रह गए ।

उस कामरूप दिव्य तरु को अपने वाहन गरूड़ के पृष्ठ पर चढ़ाकर भगवान-कृष्ण ने कृतकृत्य होते हुए इन्द्र के दर्प के अपहार को जताने वाले तेज से युक्त शंख की ध्वनि किया ।

इस प्रकार श्री मदुमापतिशर्मा विरचित पारिजातहरणमहाकाव्य का प्रौढ़िनाम का पन्द्रहवां सर्ग समाप्त हुआ ।

षोडश सर्ग
=======

पारिजातहरण महाकाव्य के सोलहवें सर्ग में इन्द्र का गुरु बृहस्पति से सलाह तथा इन्द्र का युद्ध के लिए उद्योग तथा सन्धि के लिए बृहस्पति का ऋषि कश्यप के पास जाना आदि का वर्णन मिलता है ।

भगवान कृष्ण ने गरूड़ की सहायता से पारिजात वृक्ष को ही नन्दन वन से उखाड़ लिया रक्षकों के द्वारा ऐसी सूचना पाकर तथा विज्ञान से गरूड़ ध्वज वाले वृतान्त को जानकर और पा चजन्य से उत्पन्न ध्वनि को सुनकर इन्द्र बहुत अधिक क्रोधित हो गए । तब इन्द्र ने गुरु बृहस्पति को बुलाकर पारिजात वृक्ष के चले जाने के सम्बन्ध में इष्ट सलाह को पूछा । सम्पूर्ण बृहस्पति एक क्षण के लिए ज्ञान विमूढ़ हो गए और तब अत्यन्त लाचार भाव से बोले कि मुनि नारद ने स्वयं कुछ सलाह दी थी क्या उस सलाह को आपने नहीं किया । ज्ञानी व्यक्ति भी इस संसार में सज्जनों की उपेक्षा करता है । हे इन्द्र ! बोलो उसकी रक्षा भला कौन कर सकता है । फिर भी इस वृक्ष को देकर अपने अनुकूल बनाओ और नमन करो । जिस कृष्ण ने

किए गए कर्मों के विपाक भोग के लिए संसार में स्वर्ग और नरकादि भेद बनाए। स्वेच्छा से विहार करने वाले जगत् के आत्मस्वरूप कृष्ण के साथ स्पर्धा क्या अत्यन्त तिरस्कार योग्य नहीं है। तुम इन्द्र ने राजनीति तो किया उससे तुम्हें लज्जा ही मिलेगी। वह राजनीति तीन साधनों से सिद्धि वाली होती है। सिद्धि के पाँच अंग को भला कौन नहीं जानता उन पाँच अंगों के प्रयोग का कौन सा समय होता है क्या तुमने विचार नहीं किया क्योंकि विपक्ष बल {कृष्ण} अक्षय हैं उस कृष्ण के प्रति अपमान धारण करते हैं दुख है तुम अपने विनिपात को पास से नहीं देख पाए। अपने ऐश्वर्य की तथा मुझ मंत्री तीनों की उपेक्षा नहीं की जबकि अवसर था क्योंकि तुम्हारे भीतर अहंकार आ गया था जिसकी महिमा अगाध्य है उससे बैर करके हम सभी को प्रवाद का विषय बना दिया है। गुरु बृहस्पति, काव्यशुक्र कलाधर चन्द्रमा आदि तुम्हारे पास कर्मों की सिद्धि की सफलता को देने में अच्छे अच्छे ज्ञानी है किन्तु सभी का मन संग्रह करने का आज अवसर नहीं है क्योंकि भगवान का शंख बजने का अब अवसर नहीं है। तुमने बहुत से लोगों का त्याग करके बहुत सारा व्यय करके तथा बहुत प्रेम करके अलभ्य राज {इन्द्र पद} को प्राप्त किया। इस द्युलोक की रक्षा में भी एक ईश्वर तुम्हारी सहायता करने वाला था उस ईश के साथ विरोध करके एक विटप के लिए तुमने अच्छा नहीं किया। इसलिए जो बीत गया उसमें अब विचार करने से क्या ? खेद से मेरे द्वारा जो दुर्वचन निकले मेरे उन वचनों को क्षमा करना क्योंकि सोने के मृग में राम को मोह हो गया था इसलिए विधि का विधान सुविधा से पार करने योग्य नहीं है। अब मानसिक विषाद त्याग दो। उत्साह धारण करो यही सुख देने वाला मार्ग है। अब गुरु बृहस्पति इन्द्र को उत्साह दिलाते हुए कहते हैं कि माना तुमने अपनी लक्ष्मी पारिजात वृक्ष देकर कृपणता नहीं की अपने-अपने देश के ऐश्वर्य के लिए प्राणों को देकर भी कोई स्वामी दूसरों पर आक्रमण रूपी सागर को पार करने के योग्य बनाता है। इसलिए अब युद्ध में उद्यम करिए।

गुरु-बृहस्पति इन्द्र से सलाह करके युद्ध सन्धि के लिए ऋषि कश्यप के पास गए । इन्द्र ने भी युद्ध के लिए अपना शंख बजा दिया । इन्द्र अपने हाथी ऐरावत पर सवार होकर युद्ध के लिए चल पड़े और वहाँ पहुँच कर माधव नेइन्द्र कोइन्द्र ने माधव को देखा और बोले "अपि भुवि सत्राद्युत्सवे दिव्य पुष्पो", "पहरणमिदमीयं प्रीतये तेऽभिविष्यत् ।"

इस प्रकार पारिजातहरण महाकाव्य का विस्तार नाम का सोलहवां सर्ग समाप्त हुआ ।

सप्तदश - सर्ग

पारिजातहरण महाकाव्य के सत्रहवें सर्ग में नारायण और इन्द्र के युद्ध का वर्णन मिलता है । इन्द्र भगवान् से छल के वचन बोले कि इन्द्रलोक से बलपूर्वक बहुमूल्य इस वृक्ष को ले जाने में समर्थ नहीं हो । तुम्हारा अधिकार इसमें पत्ते पर भी नहीं है हे कुजात् । पारिजात वृक्ष के प्रति इच्छा त्याग दो और इन्द्रलोक के स्वामी के डरपोक मत समझो । उस पेड़ को उखाड़ने में तुम्हारा जो साहस है वह अनुचित है । तुम हमारे अनुज हो यह मेरा बाण ले लो, यह तुम्हें मैं पारितोषिक दे रहा हूँ । ऐसा कहने वाले महान् ओजस्वी इन्द्र ने अचानक अपने विशाल धनुष को हाथ से खींच कर कान तक पहुँच कर कृष्ण पर छोड़ दिया । क्रोध से भगवान ने भी उसके बाण को निराकृत करते हुए मेघ गर्जना के समान गम्भीर वाणी में बोले कि सम्पूर्ण सिद्धियां पराक्रम में होती हैं इसलिए अपनी सफलता के लिए निश्चय मत करो । ऐसा कहकर भगवान ने अपने धनुष को तैयार कर लिया जो टेढ़ा होकर भयंकर लग रहा था । उतनी ही देर में भगवान श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न जो स्वयं कामदेव हैं तथा इन्द्र के पुत्र पुरन्दर दोनों ही परस्पर स्पर्धा से बढ़े हुए बादल के समान एक दूसरे को मारने के लिए उद्यत हो गए । दोनों हरि के

पुत्र कालातिपात के न सह सकने वाले शेषसे पूर्ण थे । धनुष से फैंके गए बाणों के समूह से कभी जीर्ण न होने वाले पिंजरे के अन्दर दोनों की काया प्रच्छन्न हो गई । उनको देखकर उन दोनों के पिता को युद्ध से अलग करने की इच्छा हो गई । उन दोनों ईश्वरों का रोष देखकर स्वर्ग में देवगण दिशाओं से भाग खड़ेहुए । पृथ्वी फट गई । इससे पृथ्वी में चीत्कार पैदा हो गया । इन्द्र का हाथी तथा गरूड़ दोनों ही स्तब्ध रह गए दोनों ही चीत्कार से दिशाओं को फाड़तेहुए से युद्ध की तैयारी करने लगे ।

महर्षि देवता आदि सभी भय से युक्त हो गए और सभी ने अभिशंका से स्वस्त्ययन पाठ प्रारम्भ कर दिया ।

इन्द्र के हस्तिवाहक ने उतनी देर में मुँह फेर देने में उद्यत सात्यकि के वक्षस्थल पर भारी गदा मार दी । जन्म से जो सात्यकि कभी किसी से पराजित नहीं हुआ जो भगवान की दाहिनी भुजा के समान था उसका आज अपमान अमित हुआ था । अतुलनीय उस सात्यकि ने अपने कुन्त को द्युलोक में प्रकाशित किया उस कुन्त के प्रकाश ने सबको चकाचौंध कर दिया । सात्यकि ने उस भाले से इन्द्रलोक के छत्र को आकाश की ओर उड़ा दिया । उस आतपत्र में जो विचित्र रत्न जड़े थे वो चारों दिशाओं में उड़ने से तारों से युक्त चन्द्रमा के गिरने से उत्पन्न होने वाला भ्रम जैसा प्रतीत होता था सात्यकि ने इस अद्भुत कर्म से लोकमण्डल के चित्त को आकृष्ट कर लिया । भगवान कृष्ण सात्यकि के प्रति प्रसन्न हो गए । सत्यभामा ने हर्ष के मोती बरसाए तथा इन्द्र क्रोध से युक्त होकर हार मानने लगे । क्रोध से भरकरइन्द्र ने हाथ में बाण उठाया तभी सात्यकि ने ऐरावत के हाँकने वाले के मस्तक प्रदेश को बाणों से अंकित कर डाला । साथ ही इन्द्र के ध्वज के धूनन में विचार किया । इन्द्र के पक्ष की ओर का शरप जर प्रद्युम्न ने तोड़ डाला । वारिद को विदीर्ण करने वाले सूर्य के समान शिवि पुत्र सात्यकि ने बाण को छोड़ दिया । देवताओं ने बाण से दूर हटने के लिए शीघ्रता की ।

इस प्रकार श्रीमदुमापति शर्मा विरचित पारिजातहरण महाकाव्य का दोहदनाम का सत्रहवाँसर्ग समाप्त हुआ ।

अष्टादश सर्ग

पारिजातहरणमहाकाव्य के अट्ठारहवें सर्ग में युद्ध के वैषम्य की शान्ति के लिए भगवान् कृष्ण तथा इन्द्र द्वारा स्वयं भगवान शिव की स्तुति की गई है तथा महर्षि कश्यप के द्वारा भी युद्ध सन्धि के लिए भगवान शिव की स्तुति की गई है ।

नर और अनर दोनों हरि ने सांयकालीन पूजा समाप्त करके अलग-अलग प्रसन्नता से युद्ध के परिणाम की शुद्धि के लिए भगवान् शंकर का क्रम से स्मरण किया । नर रूपी कृष्ण ने स्थिति में सदा शिव को बहुत देर तक ध्यान किया और शत्रु इन्द्र के प्राणों का सौदा करने वाली महायुद्ध की प्रतिज्ञा को सोचते हुए अपने अजेय होने के कारण पारिजात वाले निर्णय को ध्यान किया । बाण से बलपूर्वक पृथ्वी तल को भेदकर पाताल गंगा के जल को निकाल कर मालूर फल में भगवान शंकर को स्थापित करके उनकी अर्चना की । कृष्ण ने उमा के साथ भगवान शंकर को हृदय से ध्यान करके प्राणायाम पूर्वक मानों दूसरे विधाता की सृष्टि उत्पन्न करतेहुए से हृदय पर हाथों के कमल को स्थित किया और भक्ति पूर्वक गद्गदाक्षर कण्ठ से स्तुति किया - हे भगवन् ! इसविषम परिस्थिति में हमारी सिद्धि के लिए प्रसन्न हो । मेरे (कृष्ण) के हृदय में दूसरे बनकर यदि नहीं आते हो तो मेरा अहंकार निराश्रय जो जायगा - जैसे आकाश में अद्वय रहता है वैसे हमारे तुम्हारे में कोई भेद नहीं है । जलराशि से चितकबरी बनी हुई दूसरी संज्ञा को धारण करने वाली वही हम दोनों (भगवान शंकर और भगवान कृष्ण) में भेद पैदा करता है । संसार के भीतर दिव्यता का पोषण करने वाले अपने स्थानपर आपकी आत्मा से युक्त हूँ । और जन्म और मृत्यु के ब्याज से इस शरीर को मैं धारण कर रहा हूँ । तत्वत: मैं तुमसे अलग क्षण भर के लिए भी नहीं हूँ । हे अज: !

मेरी अजता तुम्हारे द्वारा अधिश्रित अन्तरता से सिद्ध होती है । मेरे पास कुछ भी ऐसा नहीं है जो तुम्हारा नहीं है तुम्हीं मेरे प्रभु हो इसलिए अपने की तरह मेरी रक्षा करो । मेरे भीतर तुम हो, तुम्हारे भीतर यह संसार है । जगत् का दूसरा कोई मूल नहीं दिखाई देता है । हे अनन्त ! मेरी प्रसिद्ध समृद्धियां जो हैं वह तुम्हारे अनुग्रह से ही होने वाली है । हे भगवान् ! तुम्हारा शिवलिंग रूपी पिण्ड वह पहला पिण्ड है, उसके बाद विविध अंगों वाले हम इस संसार में विस्तृत हुए । जन्म और स्थिति के ऊपर एक तीसरा पद है, जो किसी का आश्रय नहीं होता निराश्रय का पद प्रलयकाल में तुम्ही हो । जगत में जो रोग दारिद्र्य का अभाव है वह तुम्हारी कृपा से है । तुमसे उपेक्षित संसार की गति विषम बन जाती है । हे ईश मुझ पर अनुग्रह करो । हे ! ईश्वर मुझमें सामंजस्य पैदा करो । अब हमारी विचार पद्धति में मेरा मनकिसी आश्रय को जो तुमसे भिन्न है, उसका अवलम्ब नहीं कर रहा है अर्थात मेरा मन तुम्हीं को आश्रय बना रहा है । हे देव ! अपनी विगुणता को त्यागो ! सत्व, रजस्, तमस् को धारण करो ।गुणवान बनो । अभेद से भेद को स्वीकार करो । मेरी और इन्द्र की प्रिय स्थिति के लिए अपनी प्रभुता से अनुकूल बनाने वाले भेद को धारण करो ।

तत्पश्चात् गुरु बृहस्पति ने सम्पूर्ण युद्ध का समाचार महर्षि कश्यप बताया । तब महर्षि कश्यप ने युद्ध की सन्धि के लिए भगवान् शिव का स्मरण किया —

"अयि ! देव ! देव ! तव सेवने इच्छा ।
स्तवने गुणाऽस्ति सफलोद्यमोहिक: ।।
जडमेव च त्वदुदितस्फुरं जगत् ।
परिचेष्टते कृतकयन्त्रवद् यत: ।।

इस प्रकार पारिजातहरण महाकाव्य का कुड्मल नाम का अठारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

। पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टादश सर्ग - 27

एकोनविंश - सर्ग

पारिजातहरणमहाकाव्य के एकोनविंश सर्ग में ऋषि कश्यम के आगमन का तथा उनका, इन्द्र तथा भगवान श्रीकृष्ण से परस्पर सम्वाद का वर्णन मिलता है।

सन्ध्याकालीन पूजा को समाप्त करके भगवान कृष्ण और इन्द्र शस्त्रसहित वेष को धारण करके युद्ध भूमि में गए। इन्द्र ने अपने हाथ में वज्र को धारण किया आर भगवान श्रीकृष्ण ने चक्र को धारण किया। इससे पृथ्वी कांपने लगी, पर्वत हिलने लगे तथा पृथ्वी को धारण करने वाला नाग चीत्कार करने लगा। दिशाएं नाचने लगीं तथा दिन में भी उल्काएं गिरने लगीं। बिना समय ही लोक के क्षय की शंका से दूसरे देवता आतंक से कांपने लगे। सभी देवता कहने लगे हे देवेन्द्र ! प्रसन्न हो। हे कृष्ण ! दया करो।

सभी महात्माओं तथा प्रजापति के गुरू तथा तीनों लोकों के स्वामी बृहस्पति ने वहां ऋषि कश्यम के पास पहुँचकर उन्हें युद्ध के लिए सूचित किया और उन्हें प्रणाम करके युद्ध को स्थगित करने की प्रार्थना की। उस क्षण प्रसन्नता से ऋषि कश्यप चलते हुए दिखाई दिए, उस समय ऐसा लग रहा था जैसे स्वयं आनन्द ने शरीर धारण कर लिया हो। चन्द्रमा की शीतल किरणों को फैलाते हुए सम्पूर्ण पृथ्वी तल को प्रसन्नता प्रदान करते हुए अपूर्व विस्फूर्ति को प्राप्त करते हुए वह ऋषि चल रहे थे, उस समय ऐसा लग रहा था जैसे सोई हुई चेतना को जगा रहे हों। अत्यधिक हर्ष की वर्षा करते हुए जड़ से जीवन की उन्नति करते हुए ये अपने शरीर की निर्मल कान्ति से प्राणियों में शोक की स्थिति को दूर करते हुए वह ऋषि दिखाई दिए। अपनी बेटी पृथ्वी को भगवान् ने पग-पग पदों से अंकित कर दिया। इससे पृथ्वी भी अपने को धन्य समझने लगी।

ऋषि के आगमन से ऐसा लग रहा था जैसे तपस्या का फल सशरीर उपस्थित हो गया हो, मनोरथों का वृक्ष फलयुक्त हो गया हो तथा समस्त सिद्धि प्र-वाह हो रहा हो और सम्पूर्ण पापों का विनिग्रह हो गया हो । ऋषि का आगमन साक्षात् कृपा के समान था और ब्रह्मा की अध्यात्म शक्ति के संग्रह जसा था । ऋषि के आगमन से सभी इच्छाएं पूर्ण हो गई थीं । इस प्रकार तीनों लोकों के पिता सम्पूर्ण जगत् के गुरू के भी गुरू पदस्थित हुए । जगत् के प्रपंच के प्रलय को जानकर उनको किसीमें आस्था नहीं थी, फिर भी वे सभी वैभव में स्थित थे । अपनी प्रजाओं में प्रमुख आदित्य की अर्चना करके, मार्ग में शान्ति की धारणा बहाते हुए ऋषि कश्यप ने अपने दोनों पुत्रों इन्द्र और कृष्ण के कल्याण की कामना करते हुए इन्द्र और कृष्ण को युद्ध में पाया उन महात्माओं के उपस्थित होने पर दोनों क्षण भर के लिए स्तब्ध हो गए उन कश्यप की शान्त दृष्टि ने रणस्थल को शान्ति का स्थल बना दिया । उनको देखकर लोक निर्माण के वैभव से सम्पन्न अत्यधिक तेज के मध्य दिखाई पड़ते हुए स्वभाव से स्नेह की रस्सी से खींचे जाते हुए नर {कृष्ण} और देवता {इन्द्र} उनके चरण में गिर गए । चरण में गिरने से दोनों अपने को भूल गए । प्रसन्नता की सागार तरंगों में प्रवाहित होने वाले उन दोनों को भुजाओं में लेकर उनके पिता ने चिपका कर उनका हृदय से अभिनन्दन किया । उन दोनों के उठे हुए शिर को चूम कर यादव और इन्द्र को देखने की स्पर्धा को पीकर उस क्षण अंक में आए हुए सुधाकान्त की वर्षा करते हुए सन्तुष्ट हुए । उन दोनों को अपने पार्श्व भाग में बिठाकर स्वंय मध्य में बैठ गए । तब श्रीपति कृष्ण ने उनके चरणों को धोया और इन्द्र उनके शिर पर पंखा झलने लगे । तब क्रम से सात्यकि और मीनकेतु आए और पांचों अवयवों को भुलाकर उनको प्रणाम करके ऋषि के चरणों में बहुत देर तक सेवा की । सत्यभामा ने भी पहुँचकर प्रभु को प्रणाम करके उनके दोनों चरणों की सेवा की । तब ऋषि ने प्रसन्न होकर उनको आशीर्वाद दिया कि पृथ्वी पर तुम्हारी कीर्ति फैले ।

तब ऋषि कश्यप का इन्द्र और कृष्ण से युद्ध के विषय में परस्पर सम्वाद हुआ और ऋषि ने उन लोगों को युद्ध रोकने की प्रेरणा दी और कहा --

"वदेन्द्राते क्व प्रभुतागता दिवो ।
यदर्थितोऽप्यर्थ्य पदाब्जरेणुना ।।
स जातु लक्ष्मीपतिनाअमुना मुदा त्वया स्वयं ।
नोपहृतः सुरद्रुमः ।।

इस प्रकार श्री उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरणमहाकाव्य का पुष्पित नामक उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

विंश - सर्ग

पारिजातहरणमहाकाव्य के विंश सर्ग में ऋषि कश्यप के द्वारा माता अदिति की महिमा का वर्णन किया गया है । भगवान कृष्ण के द्वारा भौमासुर राक्षस के वध की तैयारी तथा उसके वध का वर्णन किया गया है । ऋषि कश्यप के द्वारा भगवान नारायण की स्तुति की गई है । भगवान का पाताललोक में गमन है । भगवान कृष्ण के द्वारा राजकन्याओं का उद्धार का वर्णन किया गया है । कृष्ण के द्वारा माता अदिति के कुन्डलों को लाने का वर्णन किया गया है । ऋषि कश्यप आदि के साथ स्वर्ग आगमन का वर्णन किया गया है, उपहार रूप में पारिजात को पाकर भगवान कृष्ण का द्वारिका को प्रस्थान है इसका वर्णन किया गया है ।

माता अदिति की महिमा के विषय मे निम्न श्लोक –

"श्लोकस्त्वयाअपि जननीं स्तुवतेन्द्र गीतो
देवैःसमं महिषमर्दनदक्षशान्तिम् ।
व्यासोक्तिसम्प्रथितसप्तशतीस्तवे तं
सत्यं पुनश्च युवयोः स्मृतिमानयामि ।"[2]

---

1. पारिजातहरणमहाकाव्य - एकोनविंश सर्ग-34
2. पारिजातहरणमहाकाव्य - विंश सर्ग - 20

इस प्रकार प्रवचन करने वाले महर्षि कश्यप के कहने पर आवेश सहित भगवान के शरीर में लोम पंक्तियाँ प्रकट हो गई थी । भगवान कृष्ण का शरीर रक्त वर्ण की कान्ति से युक्त हो गया तथा आर्द्र से अभिभूत हो गया । बढ़े हुए क्रोध से आँख कसैली और रक्तवर्ण की हो गई । शान्ति को न प्राप्त हुई तो उनकी भुजायें फड़फड़ाने लगीं । इन्द्र के शत्रु भौमासुर राक्षस जो माता अदिति के कुण्डल चुरा ले गया था, उसको मारने के लिये उनका चक्र नाचने लगा । भगवान ने महर्षि कश्यप से कहा हे जनक! क्षणभर ठहरो दुःख न करो ऐसा कहकर अपने वाहन गरुण को बुलाया और कहा अगर यह असुर मेरे द्वारा नहीं मारा गया तो आपके मौन रहते हुए भी आज से हे तात! तुम्हारे भीतर विषाद के होते हुए भी काश्यपी का पुत्र कृष्ण कहाँ ठहरेगा, इस प्रकार कहते हुए ही उठ खड़े हुए और अपने वाहन गरुड पर चढ़ गये और सत्यभामा ने अपने पुत्र को पिता के चरणों की सेवा के लिये तथा पारिजात वृक्ष की रक्षा के लिये सम्बोधित किया । श्री कश्यप भगवान कृष्ण के बढ़े हुये क्रोध को देखकर मन ही मन प्रसन्न हुए और प्रसन्न मन से नारायण की स्तुति की – हे अनन्त! तुमको नमस्कार है । तुम हम जैसे लोगों के प्रजा का पालन करने वालों के भी रक्षक हो । संसार का आश्रय हो । गदा, पदम्, शंख, चक्र से मीनादि अनेक अवतारों में क्रीडा करने वाले हो । शेषनाग के फन पर तुम्हारा शयन है । कूर्मावतार धारण करने वाले माया के तुम आश्रय हो।

प्रलयकाल में अपनी कोख से सम्पूर्ण विश्व को एकत्र करने वाले ईश्वर तुमको नमस्कार है, मुनि के मुख से इस गीत स्त्रोत को सुनकर अभय की मुद्रा को धारण करने वाले कृष्ण बोले – हे मुनि मेरी स्तुति पढ़ने वालों का अभय निश्चित हो जाता है । ऐसा कहकर उड़ते हुए अपने पक्षी गरुड़ की गति से, प्रसन्न होकर शीघ्र रसातल में घुस गए । ईश के हृदय में क्या है, ऐसा सोचकर मुनि पहले शत्रु की नगरी में पहुँच गए । वहाँ पर मुनि ने चारों दिशाओं से आई हुई हजारों कन्याओं को देखा । मुनि उन कन्याओं के पास पहुँचकर दया से युक्त बोले – तुम लोग दुःखी मत हो, शीघ्र ही तुम लोग श्रेष्ठ और दुर्लभ फल को प्राप्त करोगी । मुनि के वचन को सुनकर चरणों में झुकी कन्याएं प्रसन्न हो गई । उन मुनि की बात सुनकर नरकासुर के हृदय में संदेह के साथ पैदा हो गया । आतंक से शंकित मन वाले

उस राक्षस ने नारद से पूछा इन कन्याओं को कल कौन सा फल प्राप्त होगा । मुनि बोले मधुसूदन आ रहे हैं, उनके सुदर्शन चक्र से मुक्ति को प्राप्त होंगे । मेरा यह परामर्श है कि जिस सम्पत्ति को प्राप्त करके तुम योग्य बने हो वह आसुरी सम्पत्ति इस लक्ष्मी का एक अंश भी बराबर नहीं है । वह सम्पत्ति महेश पद की ऐश्वर्य के कण से भी निकृष्ट है । तुम भूमि के पुत्र हो इसलिए भूमि सम्बन्धी सुख के योग्यहो परन्तु तुमने उसके विरुद्ध जो अलौकिक आभरण इन्द्र की माँ का हर लिया है वह एक अपराध तो भगवान कृष्ण के द्वारा तो क्षम्य है पर उसके लिए तुमने जो चेष्टा की है वह क्षमा योग्यनहीं है । वह कृष्ण तुम पर आक्रमण करेंगे अत: मैं सलाह देता हूँ यदि तुम उनकी शरण में जाओगे तो तुम्हारा कल्याण होगा अन्यथा विपत्ति तुम्हारी ओर आ रही है । इस प्रकार ऋषि के द्वारा नारायण की स्तुति किए जाते हुए ही भगवान कृष्ण का पाताल लोक में गमन हुआ कृष्ण के द्वारा आदि दुर्ग बाणों से नष्ट कर दिया गया और गदा से उसके भवन पर प्रहार किया गया । गरूड़ ने अपनी चोंच से द्वार को तोड़ दिया और शत्रु के सैनिकों पर करो चरण से प्रहार किया । इस प्रकार युद्ध करते हुए भगवान कृष्ण ने भौमासुर का वध करदिया फिर उसके द्वारा बन्दी बनाई गई सोलह हजार राज कन्याओं का उद्धार किया। तत्पश्चात् भगवान कृष्ण कश्यपऋषि आदि के साथ स्वर्ग आ गए वहाँ पर माता अदिति के कुण्डलों करा को लाकर सुरराज इन्द्र के अधीन कर दिया। इससे इन्द्र ने प्रसन्न होकर उपहार रूप में पारिजातवृक्ष को भगवान कृष्ण को दे दिया । तब वहाँ से भगवान ने द्वारिका को प्रस्थान किया ।

इस प्रकार पारिजातहरणमहाकाव्य का फलोद्गम नामक बीसवां सर्ग समाप्त हुआ ।

एकविंश सर्ग

पारिजातहरणमहाकाव्य के एकविंश सर्ग में सत्यभामा के घर में पारिजात वृक्ष का आरोपण तथा बसन्तऋतु का वर्णन, भगवान कृष्ण की रासलीला का वर्णन और अन्त में कवि की प्रार्थना का वर्णन किया गया है ।

सम्पूर्ण द्वारिकापुरी भगवान् कृष्ण का स्वागत करने के लिए बहुत उत्कंठित थी । तब पुत्र और पत्नी सहित भगवान् कृष्ण की सब प्रकार से द्वारिका पुरी के लोगों के द्वारा पूजा की गई । द्वारिकापुरी के प्रत्येक सदन अतुलनीय सुगन्धों से युक्त थे तथा पानी से सिक्त मार्ग थे । सदन के गवाक्ष लावा और पुष्पों से युक्त थे । पुरवासी अत्यन्त प्रसन्न थे । इस प्रकार भगवान् कृष्ण प्रसन्न होते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ गए और पग-पग पर चलने वाले गरुड़ के साथ अपने आलय में गए ।

इन्द्रलोक में यह पृथ्वी सारे बीजों की एक मात्र प्रसव स्थान है । सारी पृथ्वी का नायक वह आप विष्णु हैं । पृथ्वी को अधिकार में करके पारिजात वृक्ष का ले आना और उसका आरोपण, अपने लोगों की सुखवृद्धि तो केवल एक बहाना है । द्वारिका के रहने वाले लोग प्रतिदिन दूर से आकर पारिजात को देखते और पूजा इत्यादि करते थे, इस तरह सत्यभामा का घर अतुलनीय तीर्थ बन गया। इस प्रकार भगवान् कृष्ण ने शीत तथा शिशिर ऋतु को सत्यभामा की प्रशंसा करते हुए अच्छी तरह बिताया । देवताओं के योग्यपुष्प के वृक्ष उस पारिजात को देखकर बसन्त भी पृ+थ्वी में रमण करने के लिए भगवान कृष्ण के साथ हो गया अर्थात् बसन्त ऋतु का आगमन पृथ्वी पर हो गया है । वृक्ष के पत्ते झड़ने लगे, कलियाँ प्रादुर्भूत हो गई । वन नए-नए किसलयों से युक्त हो गए हैं । यह ऋतुराज बसन्त पृथ्वी पर धीरे-धीरे आ गया है । इस ऋतुराज का जन्म भौरों की मधुरवाणी के द्वारा स्तूयमान हो रहा है और प्रिय कोयल की वचनाली द्वारा गाया जा रहा है । अपने मित्र के पास आने से प्रसन्न कामदेव मित्र के स्वागत के लिए जितने चर और अचर हैं सबमें व्याप्त हो गया है । खिलती हुई वृक्षों की लताओं से सजी हुई सारी पृथ्वी आनन्द युक्त होगई है। अपने धनुष को धारण करते हुए कामदेव ने सकल लोगों के मन को प्रेमपूर्ण कर दिया है । विकसित मदन पुष्प के अंगों में मल्लिका नाम की लता पुष्पों से युक्त होकर उसके अंक मे समा गई । विकसित होती हुई आम्रलता में माधवी नाम की लता मदमत्त हो रही है । खिले हुए मौलसिरी के वृक्ष में मालती प्रसन्न हो रही है । इस प्रकार मधुमास ने जड़ और चेतन में रति को धारण किया। बसन्त की परिचर्या की पूर्ति

के लिए सभी में सहचरण के लिए जो कामदेव व्याप्त हो रहा है, उसके विरुद्ध विरही लोगों में क्रुद्ध होकर विरहियों को भेद कर खिले हुए पलाशों का हृदय की पंखुडियों का मानों भेद रहा है अर्थात् बसन्त ऋतु में पलाश वृक्ष नहीं खिलते हैं इसी का वर्णन किया गयाहै ।

अपने-अपने स्वभाव के अनुसार बूढ़े, युवक, कुमार सभी कामदेव की आराधना कर रहे हैं । कल्पवृक्ष भी अपनी दिव्यता से उल्लसित हो गया है । उस विकसित एवं अदृष्ट से अपने रूप वैभव से तथा अपनी सुगन्ध से उस पूरी नगरी को अपूर्व कान्ति से भर दिया है जिस नगरी ने वैभव के द्वारा देवपुर को पहले ही जीत लिया था । वह कल्पवृक्ष दूसरे नर-नारी को भी रमण सुख प्राप्त कराता हुआ मानों कोमल पंचमस्वर में गीत गारहा है ।

इस प्रकार मधुमास का मारुत विहरण करता हुआ लोगों के घर के भीतर बाहर नर्म सचिव का काम करनेलगा । स्वयं जो श्रृंगार का देवता मथुरा का स्वामी कृष्ण, जिसने शरीर रहित को अपने शरीर से उत्पन्न करके शरीर वाला बना दिया, उस प्रद्युम्न से भी जो अनिरूद्ध उत्पन्न हुआ है उसकी स्त्री रति को देखकर प्रेम से अत्यन्त विनोद के मोदन से रत क्यों न होगा । अर्थात् कृष्ण ने अपनी रासलीला प्रारम्भ करने की तैयारी कर ली । स्त्री-पुरूष के भाव को प्राप्त करके सारी ऋतुएं, परस्पर मधुमयरति का अनुभव करने लगीं । भगवान के गृहिणी-गण ने भी इकट्ठे होकर कृष्ण के बाल्यकाल में जो इस गोष्ठी आचरित थी और जो शरदऋतु में हुई थी, मधुमास में आज फिर रचाने के लिए कहने लगे । पीताम्बर-कृष्ण प्रियजनों के द्वारा अनुरोध किए जाने पर रास से युक्त हो गए और दाहिने रहने वाली रूक्मिणी के साथ रमण करने लगे । रास शुरू करने पर मधुमास सभी स्थितियाँ अनुकूल फैला दी । भौरों ने मधुर गुंजन शुरू किया । अपनी-अपनी ऊँची-धीमी मीठी-मीठी ध्वनियों से उसी क्रम में तूर्यनाद को विहंगों ने धारण किया । ऊपर उछलते हुए फेन रूपी हास वाला वह जलाशय मानों प्रसन्न होकर नाचने लगा । भगवान ने वंशी को अधर में धारण किया । उस बांसुरी ने मंगलाचरण का नान्दीगीत गाना शुरू कर दिया और और वह बांसुरी भगवान के नाखून, दाँत और अधर की कान्ति से इन्द्र-धनुष

की आभा वाली होगई है । उन भगवान ने काम को प्रसन्न करने वाली जितनी चेष्टायें हैं उनको प्रारम्भ कर दिया और पांव तक लटकती फूलों से घिरी माला को धारण करके अपनी त्रिभंगी स्थिति में खड़े हो गये । चन्द्रमा कामदेव की रंगशाला को उद्दीप्त कर रहा था । भगवान सूर्य का रथ भी स्थिर हो गया था । बसन्त के आनन्द को प्राप्त करके दिन की शोभा को बिना समाप्त किये निशाकर और दिवाकर के होते हुये वह समय न तो दिन था न रात थी यह बड़ा ही विचित्र समय था । कृष्ण के नख के प्रकाश से जिसका अंग रंग गया है ऐसी बांसुरी गाने लगी । सम्पूर्ण जगत स्तब्ध हो गया । सब एक रस हो गए भगवान की बांसुरी में डूब गए । सारा भुवन जैसे वृन्दावन ही हो गया । कृष्ण की रासलीला का उत्सव द्युलोक और पृथ्वी सर्वत्र व्याप्त हो गया । तीनों गुणों के स्वामी और सोलह कलाओं के निधान कृष्ण ने अपने पास सत्यभामा को देखकर उनका आलिंगन किया । कन्हैया के मुख से चुम्बित बांसुरी पुनः गाने लगी । रस की अनुभूति में अद्वयता का आनन्द प्राप्त होने लगा । कृष्ण एक साथ द्वितीय बनकर रमण करने लगे ।

विलास को आश्रय देने वाले भगवान में इस प्रकार रसोद्रेक के कारण प्रत्येक प्राणी की प्रकृति जो स्वभाव से एक दूसरे से भिन्न थी वह प्रकृति भगवान में लीन होकर समग्र हो गयी है । कवि की यह वाग्देवी उन भगवान कृष्ण के मल रहित चरण कमल की स्मृति से युक्त होकर मन ही मन मगन हो रही है और कल्याणमयी हो रही है । हे भगवन भगवान विष्णु से अलग होने का जो मेरा भ्रम है वह हर लो । स्वभाव से निर्मित यह तुम्हारी कृति तुम्हारे चरण कमलों में अर्पित है । काशी में प्रकाशित हुई काशिनाथ भगवान शंकर को यह मेरी कृति प्रिय लगे । मेरे एक मात्र आश्रय भूत जो मेरे माता पिता के चरण है उसको बार-बार नमस्कार है । कान्ताराम पद से कहे जाने वाले पिता और मर्यादिका नाम की माता का मैं पुत्र हूँ । रस से युक्त नया काव्य जो उमापति ने रचा वह पारिजात से सम्बन्ध रखता है । श्री हरि जिसके नाम के पहले है वह काव्य है,उसका आखिरी सर्ग बीत गया ।

इस प्रकार उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाव्य का इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

"अधिकारिक तथा प्रासंगिक वृत्त "

उपादेयता की दृष्टि से कथावस्तु दो तरह से विभक्त होती है - मुख्य कथावस्तु और उसकी अंगभूत कथावस्तु, जिससे मुख्य कथा के विकास में सहायता मिलती है । दोनों को क्रमशः अधिकारिक और प्रासंगिक कथावस्तु कहते हैं अर्थात मुख्य वस्तु अधिकारिक कथावस्तु कहलाती है तथा अंगरूप प्रासंगिक कथावस्तु कहलाती है[1]। उदाहरण राक्षसवध, सीताप्राप्ति, रामराज्य की स्थापना रामायण कथा का फल है इसके स्वामी राम है । अतः आरम्भ से रावणवध , सीता प्राप्ति तथा राज्याभिषेक तक की कथा अधिकारिक कथावस्तु है ।

जो कथा या वृत्त दूसरे (अधिकारिक के) प्रयोजन के लिए होती है किन्तु प्रसंग से जिसका स्वयं का फल भी सिद्ध हो जाता है, वह प्रासंगिक वृत्त है[2]।

प्रासंगिक इतिवृत्त का प्रमुख ध्येय अधिकारिक वृत्त की फल निर्वहणता में सहायता प्रतिपादित करना है किन्तु प्रसंगतः उसका स्वयं का भी फल होता है जैसे सुग्रीव कथा का प्रयोजन बालिवध तथा राज्य लाभ तथा

---

1 अधिकारः फले स्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः ।
तथ्येति वृत्तं कविभिराधिकारिमुच्यते ।। साहित्यदर्पण -6

2 प्रासंगिक परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसंगतः । साहित्यदर्पण

विभीषण वृत्त का प्रयोजन लंकाराज्य प्राप्ति ।

यह प्रासंगिक इतिवृत्त भी पताका तथा प्रकरी दो तरह का होता है -

"सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक् "[1]

जो प्रासंगिक कथा अनुबन्ध सहित होती है तथा रूपकों में दूर तक चलती रहती है वह पताका कहलाती है तथा जो केवल एक ही प्रदेश तक सीमित रहती है वह प्रकरी कहलाती है । उदाहरण - रामायण की कथा में सुग्रीव तथा विभीषण का वृतान्त पताका है वह दूर तक चलती है वह मुख्य नायक के पताका चिह्न की तरह आधिकारिक कथा तथा मुख्य नायक की पोषक होती है । पताका का नायक भिन्न होता है वह पताका नायक कहलाता है । रामायण में छोटे-छोटे वृत्त प्रकरी है जैसे - शबरी आदि का प्रसंग ।

विभिन्न रसों के योग्य विभाव इत्यादि का फलप्राप्ति पर्यन्त ठीक स्वरूप ज्ञान व्युत्पत्ति कहा जाता है और फल अदृष्टवश देवता प्रसाद से अथवा अन्य कारण से उत्पन्न होता है वह उपदेश देने योग्य नहीं होता उससे उपायक्रम से प्रवृत्त की सिद्धि और अनुपाय द्वारा प्रवृत्त का नाश इस प्रकार नायक और प्रतिनायक गत अर्थ और अनर्थ की व्युत्पत्ति करा दी जानी चाहिए । कर्त्ता के द्वारा आश्रय लिए जाने पर उपाय पांच अवस्थाओं को प्राप्त कर लेता है ।

वह इस प्रकार है - स्वरूप, स्वरूप का कुछ परिपोष कार्य सम्पादन की योग्यता, प्रतिबन्ध के आ पड़ने की आशंका, प्रतिपक्ष के निवृत हो जाने पर बाधक के बाधन द्वारा सुदृढ़ फल पर्यन्तता कष्ट को सहन करने वाले लोगों का इस प्रकार कारण का उपादान होता है ।

---

1 "संसाध्ये फलयोगे तु व्यापार: कारणस्य य:
तस्यानुपूर्व्या विज्ञेया: पंचावस्था: प्रयोक्तृभि: ।
प्रारम्भश्च प्रयत्नश्च तथा प्राप्तेश्च सम्भव:
नियताप्तिश्च फलप्राप्ति: फल योगश्च पंचम : ।।

"भरतमुनि का नाट्यशास्त्र"

ये कारणगत पाँच अवस्थाएं भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र से में कही है - फल योग के सिद्ध किए जाने में कारण का जो व्यापार उसकी अनुपूर्वी से प्रयोजताओं के द्वारा पांच अवस्थाएं ज्ञात की जानी चाहिए - §1§ प्रारम्भ, §2§ अ प्रयत्न, §3§ प्राप्ति के हेतु की सम्भावना, §4§ फल प्राप्ति का नियत होना, §5§ फलयोग ।

इस प्रकार जो कार्य की अवस्थाएं हैं उनका सम्पादन करने वाला जो कर्ता का इतिवृत्त पांच भागों में विभक्त किया गया है वही मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निर्वहण नामक अन्वर्थ संज्ञावाली पांच सन्धियां होती हैं ।

इस प्रकार जो ये पांच कारण की अवस्थाएं हैं उनका सम्पादन करने वाला कर्ता का इतिवृत्त होता है वह इतिवृत पांच भागों में विभक्त किया गया है इन भागों को पांच सन्धियां के नाम से अभिहित किया जाता है । सन्धि शब्द सम उपसर्ग - धा धातु से कर्म में "कि" प्रत्यय होकर बनता है । इस व्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ होगा जिसका अनुसन्धान किया जाए उसे सन्धि कहते हैं सन्धान इति वृत्त का किया जाता है अतः इतिवृत्त खण्डों को सन्धिकहते हैं ।

"मुख" का अर्थ है - प्रारम्भ अतः प्रारम्भ में बीज की उत्पत्ति को मुख सन्धि कहते है प्रतिमुख शब्द का अर्थ है जिसमें प्रतिष्ठित किया जाय या आगे बढ़ाया जाए अथवा मुख के प्रतिकूल बढ़ाया जाए प्रतिमुख सन्धि में एक तो मुख सन्धि के निर्दिष्ट बीज को आगे बढ़ाया जाता है दूसरे प्रयत्न के प्रारम्भ हो जाने से कर्म बीज प्रकट रहता है कभी अप्रकट यह स्थिति मुख के प्रतिकूल होती है क्योंकि मुखसन्धि में बीज प्रकट ही रहता है । गर्भ शब्द गृधातु से भन् प्रत्यय लगकर बना है जिसका अर्थ है निगरण कर लेना गुप्त कर लेना इस सन्धि में बीज गर्भित हो जाता है अतः इसे गर्भ सन्धि कहते हैं । "विमर्श" शब्द में "वि" उपसर्ग का अर्थ है छानबीन अतः जहाँ

छानबीन से बीज का परिज्ञान हो और छानबीन से ही सफलता भी प्रतीत हो वहाँ विमर्श सन्धि होती है निर्वहण का अर्थ है निर्वाह उसमें बीज का अर्थ है निर्वाह कर दिया जाता है अतः इसे निर्वहण सन्धि कहते हैं इन सन्धियों के द्वारा फल का निर्वाह किया जाता है ।

बीज से सभी व्यापार बिन्दु से अनुसन्धान तथा कार्य से निर्वाह किया जाता है ।

संक्षेपतः इस प्रकार कहा जा सकता है - कथावस्तु प्रायः मानव जीवन के किसी तथ्य की अभिव्यक्ति लेकर पल्लवित होती है इस तथ्य का विकास कथावस्तु की अर्थ प्रकृति बन जाता है अर्थात इस तथ्य को अर्थ (मुख्य प्रयोजन) कहते हैं । इस अर्थ के विकास में कार्यक्रम या व्यापार की श्रृंखला होती है उसे अवस्था और इस अवस्था के संयोग से अर्थ प्रकृति के रूप में विस्तृत कथानक को जो पाँच अंशों में विभक्त रहता है आपस में परस्पर सम्बन्ध करने को सन्धि कहते हैं । इस प्रकार अर्थ प्रकृति अवस्था और संधि के पाँच - पाँच भेद होते हैं जो इस प्रकार की अर्थ प्रकृतियाँ :-

<u>अर्थ प्रकृतियाँ</u>

(1) बीज, (2) बिन्दु, (3) पताका, (4) प्रकरी
(5) कार्य

<u>अवस्थायें</u>

(1) आरम्भ, (2) प्रयत्न, (3) प्राप्त्याशा,
(4) नियताप्ति, (5) फलागम

सन्धियाँ

§1§ मुखसन्धि, §2§ प्रतिमुख सन्धि, §3§ गर्भसन्धि,
§4§ विमर्श §अवमर्श§ सन्धि, §5§ निर्वहणसन्धि ।

कवि उमापति विरचित पारिजातहरण महाकाव्य में अधिकारिक तथा प्रासंगिक वृत्त मिलता है तथा अर्थप्रकृतिया अवस्थाएं और सन्धियां भी मिलती हैं । इनका वर्णन निम्न प्रकार से प्रस्तुत है :

मुख्य वस्तु आधिकारिक कथावस्तु कहलाती है । पारिजातहरण महाकाव्य से पारिजात वृक्ष का हरण मुख्य अथवा आधिकारिक कथावस्तु है तथा इसके अंगरूप में और कथावस्तु प्रासंगिक कथा वस्तु है ।

मुख्य फल का कारण भूत कथा भाग जिसका पहले बहुत संक्षेप में कथन किया जाता है और आगे वह क्रमशः विस्तृत होता जाता है । पारिजातहरण महाकाव्य के प्रथम सर्ग में रुक्मिणी के द्वारा दूती कमुख से व्रत के उद्यापन के लिए भगवान् कृष्ण से अनुमति की याचना[1] और उसकी प्राप्ति[2] बीज अर्थ प्रकृति है ।

कारण बनकर आने वाली यह बात बिन्दु कहलाती है । जिससे समाप्त होने वाली अवान्तर कथा आगे बढ़ती है और प्रधान कथा अविच्छिन्न बनी रहती है । पारिजातहरण महाकाव्य में भगवान कृष्ण ने अपनी प्रिया सत्यभामा के[3] मनोविनोद के ब्याज से शरदऋतु की विशेषताएं हर्ष के साथ दिखाया ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 61

2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 63

3 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 26

शरदऋतु के वर्णन के समय क्षण भर के लिए वह अपने मुख्य उद्देश्य पारिजातवृक्ष को भूल ही गए थे तब तक ही नारायण ने नारद को आ गया देखा ।

समाप्त होने वाली अवान्तर कथा इस बात से आगे बढ़ती है अतः यह बिन्दु अर्थप्रकृति है ।

वह प्रासंगिक कथावस्तु जो दूर तक चलती रहे इसका फल भी प्रायः वही होता है जो प्रधान कथा का होता है इस काव्य में इन्द्र का पारिजात वृक्ष को न देना ।[1] और उसके लिए युद्ध करना[2] एक दूर व्यापी कथानक हो जाता है । अतः यह पताका अर्थ प्रकृति है ।

प्रासंगिक कथावस्तु के छोटे-छोटे वृत्तों को प्रकरी कहते हैं । पारिजात हरण महाकाव्य में नारद इन्द्र संवाद[3] प्रकरी अर्थ प्रकृति है ।

कार्य का अर्थ फल है जिस फल की प्राप्ति के लिए यत्न किया जाता है और जो साध्य होता है वह कार्य है इसी को अन्तिम लक्ष्य या मुख्य प्रयोजन कहते हैं पारिजातहरण महाकाव्य में युद्ध में कृष्ण का जीतना तथा पारिजातवृक्ष का उपहार रूप में पाना और सत्यभामा के घर में पारिजातवृक्ष का आरोपण[4] आदि का प्रसंग कार्य अर्थ प्रकृति है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 100

2 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग -

3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 22-101

4 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 19

जहां कार्य के आरम्भ की सूचना मिले कार्य सिद्धि के लिए नायक में जो उत्सुकता होती है उसे आरम्भ कहते हैं पारिजातहरण महाकाव्य में कृष्ण के पारिजात वृक्ष को पाने की उत्सुकता आरम्भ अवस्था है। कार्य को सिद्ध होते न देखकर उसके लिए भी शीघ्रता के साथ उपाय करना प्रयत्न है पारिजातहरण महाकाव्य में पारिजातवृक्ष न मिलने पर उसके लिए कृष्ण का इन्द्र से युद्ध[1] यत्न अवस्था है।

उपाय और विघ्न दोनों के बीच की अवस्था, जब दोनों की खींचातानी में फल-प्राप्ति का निश्चय न किया जा सके, प्राप्त्याशा है। पारिजातहरण महाकाव्य में पारिजातवृक्ष को लाने के लिए नारद को इन्द्र के पास भेजने[2] तथा इन्द्र का कृष्ण से युद्ध प्राप्त्याशा अवस्था है।

विघ्न के नष्ट हो जाने से जहां फल प्राप्ति का पूर्ण निश्चय हो जाए वहां नियताप्ति है। इस महाकाव्य में कृष्ण का युद्ध में जीतना[3] नियताप्ति अवस्था है।

पूर्ण रूप से उद्देश्य की प्राप्ति फलागम है। पारिजातवृक्ष का उपहार रूप में पाना[4] और सत्यभामा के घर में वृक्ष का आरोपण फलागम अवस्था है।

आरम्भ नामक अवस्था और बीज अर्थ प्रकृति का जहां संयोग होता है उसे मुख सन्धि कहते हैं। पारिजातहरण महाकाव्य में प्रारम्भ में दूती का भगवान कृष्ण के पास जाना व्रत के उद्यापन के लिए भगवान से अनुमति की याचना और उसकी प्राप्ति तथा नारद का इन्द्र के पास जाना तथा कृष्ण के पारिजातवृक्ष को पाने की उत्सुकता मुख-सन्धि है।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य -सप्तदश सर्ग - 1-72

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 22

3 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग - 31

प्रतिमुख सन्धि प्रयत्न अवस्था और बिन्दु अर्थ प्रकृति की कार्य श्रृंखला को आगे बढ़ाती है पारिजातहरण महाकाव्य में नारद से इन्द्र का युद्ध के लिए संदेश भेजना प्रतिमुख-सन्धि है ।

गर्भसन्धि में प्रतिमुख सन्धि का किंचित् आविर्भूत बीज बार-बार प्रकट, गुप्त और अन्वेषित होता रहता है । यह सन्धि प्राप्याशा अवस्था और पताका अर्थ प्रकृति के बीच की स्थिति होती है । पारिजातहरण महाकाव्य में भगवान कृष्ण का नारद को इन्द्र के पास नन्दन वन भेजना और नारद का वहाँ से वापिस आना इस प्रकार उपाय का ह्रास तथा अन्वेषण होता है अतः यहाँ गर्भसन्धि है ।

विमर्श सन्धि वहाँ होती है जहाँ बीज के अधिक विस्तृत होने पर उसके फलोन्मुख होने में विघ्न उपस्थित होते है इसमें नियताप्ति अवस्था और प्रकरी अर्थ प्रकृति होती है पारिजातहरण महाकाव्य में पारिजात वृक्ष का कृष्ण को मिलना अत्यन्त सम्भव है किन्तु इन्द्र का युद्ध करना बड़ा भारी विघ्न है अतः यहाँ विमर्श सन्धि है ।

निर्वहण सन्धि में फलागम अवस्था और कार्य अर्थप्रकृति होती है । पारिजातहरण महाकाव्य में भगवान कृष्ण का युद्ध में जीतना तथा पारिजात वृक्ष का उपहार रूप में पाना और अन्त में पारिजात वृक्ष का सत्यभामा के घर में आरोपण[1] निर्वहण सन्धि है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 17

"इक्कीस सर्गात्मक पारिजातहरण एक पूर्णकाव्य है"

साहित्य शास्त्र ग्रन्थों में महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार दी गई है । विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्य दर्पण के षष्ठ परिच्छेद में महाकाव्य के लक्षण के सम्बन्ध में कहा है :-

जिसमें सर्गों का निबन्धन है वह महाकाव्य कहलाता है । इसमें एक देवता या सदवंश क्षत्रिय जिसमें धीरोदात्तवादि गुण हो नायक होता है कहीं एक वंश के सत्कुलीन अनेक भूप भी नायक होते हैं । श्रृंगार, वीर और शान्त रस में से कोई एक रस अंगी होता है । अन्य रस गौण होते हैं । सब नाटक सन्धियां रहती है । कथा ऐतिहासिक या लोक प्रसिद्ध सज्जन संबधिनी होती है । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्वर्ग में से एक उसका फल होता है । आरम्भ में आशीर्वाद नमस्कार का गुण वर्णन होता है । इसमें न तो बहुत छोटे न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं । उनमें प्रत्येक में एक ही छन्द होता किन्तु सर्ग का अन्तिम पद्यभिन्न छन्द का होता है । कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं । सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना होनी चाहिए । इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, {छहों} वन, समुद्र, संभोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए । इसका नाम कवि के नाम से {जैसे माघ} या चरित्र के नाम से {जैसे कुमार सम्भव} अथवा चरित्र नायक, के नाम से {जैसे रघुवंश} होना चाहिए । कहीं इनके अतिरिक्त भी नाम होता है {जैसे भट्टिटी} । सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम

रखा जाता है ।[1]

पारिजातहरण में महाकाव्य के ये लक्षण प्राय: पूर्णतया घटित होते हैं । इसका कथनाक हरिवंश पुराण से लिया गया है तथा इक्कीस सर्गों में कथा का निबन्धन हुआ है । भिन्न-भिन्न पुराणों में पारिजातहरण कथा मिलती है किन्तु हरिवंश पुराण में पारिजातहरण की बिलकुल वैसी ही कथा मिलती है जैसी की पारिजातहरण महाकाव्य में बताई गई है अत: पारिजातहरण महाकाव्य के कथानक का आधार हरिवंश पुराण ही है । इक्कीस सर्गों में पारिजातहरण महाकाव्य की कथा का निबन्धन हुआ है । जिसमें किसी सर्ग में वस्तु वर्णन है, किसी में प्रकृति वर्णन है, किसी में संवाद सूक्त हैं तथा किसी में भगवान की स्तुति की गई है ।

पारिजातहरण महाकाव्य में भगवान कृष्ण नायक है । काव्य के प्रथम सर्ग में कृष्ण के नायकत्व का वर्णन मिलता है ।

सर्वथा स्वाधीन और समस्त जगत के नियन्ता सर्वेश्वर भगवान कृष्ण ने मनु सम्बन्धिनी समस्त सम्पत्ति को उपाधि रूप में धारण कर अर्थात कपट मानुष होकर भूतल को कंस आदि दानवों के द्वारा स्वस्थ कर अपनी बसायी कुशस्थली को सभी सुखों से पूर्ण कर दिया । वे भगवान श्रीकृष्ण द्वारिकापुरी का शासन करते थे । भगवान कृष्ण के आदेश से विश्वकर्मा ने समुद्र के बीच समस्त

---

1 (क) "सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायक: सुर:
नामास्य सर्गोपादेय कथया सर्गनामतु ।"
—साहित्यदर्पण, षष्ठपरिच्छेद

(ख) "सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्
काव्यं कल्पोत्तरस्यापि जायेत तदलंकृति:"
—आचार्यदण्डी का काव्यादर्श

(ग) "सर्गबन्धो महाकाव्यमहतां च महच्चयत्
युक्तंलोकस्वभावन रसैश्च सकलै: पृथक्श्च ।"
—आचार्य भामह का काव्यालंकार

(घ) साहित्य दर्पण की शालग्राम शास्त्रीकृत विमला नाम की हिन्दी टीका पृ० 308.

2 हरिवंश पुराण अध्याय 124-135

रत्नराशियों में इस द्वारिकापुरी का निर्माण किया ।[1] दासी ने आकर भगवान से कहा आपकी ज्येष्ठापत्नी रुक्मिणी अपने किए पुण्यव्रत की पूर्णता के लिए कल आपके साथ ही रैवताचल पर पूजनीय देव ब्राह्मणों की पूजा करना चाहती है । भगवान कृष्ण ने अनुराग सहित कहा उसे सूचित करो कि वह अपनी कामना पूर्ण ही समझे ।[2]

भगवान कृष्ण की कथा चिरकाल से लोक विश्रुत रही है रामकृष्ण युधिष्ठिर आदि महापुरुषों के जीवन चरित भारतीय समाज के सनातन से मार्ग दर्शक रहे हैं बाल्यकाल से ये कहानियां हिन्दू घरों में सुनने को मिलती हैं । सुख के समय इसमें मनोविनोद होता है दुःख के समय आश्वासन । भगवान कृष्ण की कथा को आधार मानकर बहुत से ग्रन्थ महाकाव्य आदि लिखें गए है, जिसमें उनके बाल्यकाल से लेकर पूरे जीवन का वर्णन किया गया है । भगवान कृष्ण की बाल लीलाओं का तो बड़ा ही मनोरंजक वर्णन कवियों ने किया है । इसके बाद के जीवन का भी बड़ा ही रोचक वर्णन काव्यों तथा ग्रन्थों में मिलता है कृष्ण से सम्बन्धित सभी काव्यों तथा ग्रन्थों में सबसे प्रमुख ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता है । इसके अतिरिक्त कई पुराणों में भी कृष्ण चरित का उल्लेख हुआ है इन सबको पढ़कर एक ओर तो सुख के समय जनमानस कामनोविनोद होता है तो दूसरी तरफ दुःख के समय आश्वासन ।

पारिजातहरण महाकाव्य महाभारत की तरह शान्तरस प्रधान काव्य है । श्रृंगार वीर, करुण, रौद्र, वात्सल्य आदि रस गौण है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग 1-4

2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग 60-61

महाभारत का पर्यवसान सभी के विनाश में होता है । वृष्णि वंश वाले इतने महान तथा संख्या में इतने अधिक हैं किन्तु अन्त में शाप से वे सब लड़कर ही समाप्त हो जाते हैं । पाण्डवों की कथा मुख्य है । पाण्डव सभी शत्रुओं का संहार कर देते हैं किन्तु अन्त में सभी को हिमालय पथ की ओर जाना पड़ता है और अनेक विपत्तियों को सहते हुए हिमराशि में अपनी कथा समाप्त कर देनी पड़ती है । उन युगपुरुष भगवान कृष्ण का अन्त एक बहेलिये द्वारा होता है । इससे सिद्ध होता है कि विश्व की सभी वस्तुयें क्षणभंगुर ही होती हैं । इसमें परम पुरुषार्थ मोक्ष माना गया है पुरुषार्थ निरूपण के विषय में महाभारत में यह श्लोक प्रसिद्ध है --

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ।।[1]

पारिजातहरण महाकाव्य में स्थान-स्थान पर शान्तरस अथवा भक्तिरस का चित्रण मिलता है । हरि के यश का गान करना ही कवि का काव्य लिखने का मुख्य उद्देश्य था अतः उनके इस महाकाव्य में रस का उतना अच्छा चित्रण नहीं हो पाया है, फिर भी जगह-जगह पर ईश्वर की भक्ति और जीवों के इस संसार में बार-बार जन्म लेने और मरण के उदाहरण से ऐसा ज्ञात होता है कि यह काव्य शान्तरस प्रधान काव्य है । इनकी व्यंजना में विभाव अनुभाव तथा संचारियों की पूर्ण योजना करने का प्रयत्न नहीं किया गया है । मोक्षरूप परम पुरुषार्थ की प्राप्ति शान्त रस से होती है । शान्त रस का उद्दीपन विभाव संसार की असारता है । महाकाव्य के पंचम सर्ग के नारद के द्वारा भगवान कृष्ण की स्तुति शान्तरस का उदाहरण है - हे मुक्ति नाथ अपने शरीर

---

1 महाभारत - आदिपर्व - 62-53

पर रेंगते क्षुद्राति क्षुद्र कीटों के समान संसार सारे जीवों को विशेष आस्था न होने के कारण जब तक आप उपेक्षित किए रहते हो अर्थात उनकी ओर ध्यान नहीं देते तब तक ये संसार में आते जाते बन्धन में पड़े रहते हैं । जब कभी उनकी क्रियाओं या अपनी इच्छा से ही आपकी दृष्टि के वे लक्ष्य बन जाते हैं, यही उनका मोक्ष है । इसका स्थायी भाव निर्वेद है तथा उद्दीपन विभाव जीवों का मुक्त हो जाना है ।[1]

पारिजातहरण महाकाव्य में गौण-रस श्रृंगार, बीर करुण तथा रौद्र रस है । सोलहवें सर्ग में सत्यभामा का क्रोध रौद्र रस का उदाहरण है द्वितीय सर्ग में विप्रलम्भ श्रृंगार का उदाहरण मिलता है । नवें सर्ग में सत्यभामा के दुःख की दशाओं के वर्णन में करुण रस है । वीर रस का उदहारण तो महाकाव्य के कई सर्गों में मिलता है । सोलहवें सर्ग में इन्द्र तथा कृष्ण के युद्ध का वर्णन वीर रस का उदहारण है । बीसवें सर्ग में भगवान के द्वारा भौमासुर राक्षस का वध वीर रस का उदाहरण है ।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्वर्ग में से एक उसका फल होता है । मोक्ष रूप परम पुरुषार्थ की प्राप्ति शान्त रस से होती है । चूँकि पारिजातहरण महाकाव्य शान्त रस प्रधान काव्य है अतः मोक्ष ही इस काव्य का फल है । पारिजातहरण महाकाव्य के प्रथम सर्ग में द्वारिका पुरी को कहा गया है - मोक्ष देने वाली सप्तपुरियों में मोक्षोत्पादन में यह मुख्य द्वार है ।[2] इस पुरी में निवास करने मात्र से ही लौकिक सुखों का उपभोग कर मानव अलौकिक सुख मोक्ष की प्राप्ति कर लेते हैं ।[3]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 21

2 पुरीषु सप्तस्वीप मोक्षदायिनीष्वियम्परा द्वारा यवर्ग-सखनि ।
-पारिजातहरण महाकाव्य-प्रथम सर्ग-38

3 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 39

आरम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्य - वस्तु का निर्देश होता है ।

परोक्षसत्ता की अनुभूति और अन्तस्तत्व की सम्पन्न एकता भारतीय विचार साधना के मेरूदण्ड है । दृश्यमानजगत के पीछे ऐसी शक्ति अन्तर्निहित है जो चेतन विश्व की समस्तगतिविधियों पर नियन्त्रण रखती है और उसी की प्रेरणामयी सदिच्छा मानवजीवन को संचालित किया करती है । ज्ञान तो उस सत्ता का प्रत्यक्ष रूप है । "सत्य ज्ञानसन्तं ब्रह्म यही कारण है कि ऋषियों की कृति वेदमन्त्र उस महातत्व का निश्श्वसित माने गये । {केवल इतना ही नहीं शतपथ ब्राह्मण में तो साधारण श्लोक को भी ईश्वरीय **निश्श्वसित** ही माना गया है { अस्यमहतो भूतस्यं निश्श्वसितमेतद् यद्दृग्वेदो **यजुर्वेद:** सामवेदो ऽयर्वोऽगिरस इतिहास: पुराण विद्या उपनिषद्श्लोका: सूत्राण्यनुण्याख्यानानि अस्यै वेतानि सर्वाणि निश्श्वसितानि"[1]

इसी उद्देश्य से ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण करने की परिपाटी प्रतिष्ठित है । मंगलाचरण के अनेक रूप हैं :-

1. उस महाशक्ति को प्रणतिपूर्वक सहायता के लिये प्रेरित करना इसे इष्ट देवता नमस्कारात्मक मंगल कहते हैं ।
2. परिशीलकों की मंगलाप्रशंसा करते हुये उनसे अपनी एकता स्थापित करना इसे आशीर्वादात्मक मंगल कहते हैं ।
3. पराशक्ति सम्पन्न किसी वस्तु का निर्देश कर परमात्मा की व्यापकता की ओर ध्यान दिलाना यह वस्तु निर्देशात्मक मंगल है ।
4. प्राचीन आचार्यवृद्धि सिद्ध इत्यादि मांगलिक शब्दों के प्रयोग मात्र को ही मंगलाचरण कहते हैं ।

---

1 शतपथ ब्राह्मण श्लोक

5. कहीं-कहीं केवल अथ शब्द का प्रयोग मंगलाचरण माना गया है ।[1]

पारिजातहरण महाकाव्य का प्रारम्भ कवि उमापति द्विवेदी ने किसी अन्य प्रकार के (देव नमस्कारादि रूप) मंगलाचरण से नहीं किया है किन्तु जब पुण्य श्लोक कृष्ण का नामोच्चारण ही मंगल है तो जिसमें उन भगवान कृष्ण का चरित गान किया गया है वह पूरा महाकाव्य ही मंगल रूप है । काव्य के प्रथम श्लोक में वस्तु निदेश के रूप में अर्थात द्वारिका के वर्णन में कृष्ण देवता की स्तुति करते हैं । पारिजातहरण महाकाव्य का प्रारम्भ द्वारिका के वर्णन से किया गया है । द्वारिका के वर्णन के प्रसंग में उस पुरी के राजमहल तथा उस पुरी की सभा का भी वर्णन कई श्लोकों में कुलक रीति से किया गया है । भगवान कृष्णी की यह द्वारिका पुरी अकेली ही अपने समस्त ऐश्वर्यों से सुसज्जित हो त्रिलोकी से भी बढ़चली । इसकी शुभ्र एवं दैदीप्यमान गगनचुम्बी अट्टालिकाओं की तुलना में सुमेरु भी अपने को तुच्छ मान बैठा ।[2] इस द्वारिका पुरी के राजमहल विशाल परिधि से युक्त खूब चमकते हुये मणिगण से जटित एवं प्रभा से प्रज्जवलित, विशेष शालाओं से सुशोभित है । शस्त्रास्त्रों से सज्जित प्रहरीगण स्थान-स्थान पर जिसकी रक्षा के लिए खड़े हैं ।[3]

पारिजातहरण महाकाव्य में भौमासुर राक्षस की निन्दा तथा भगवान्कृष्ण की स्तुति की गई है । बीसवें सर्ग में नरकासुर के भयभीत होने के उदाहरणों से उस असुर की निन्दा की गई है -

आकर्ण्य कर्णकटु शंख एवं स पार्श्वे, भूमि भवोऽभवद्वाप्तविवर्ण भावः[4]

---

1 ध्वन्यालोक - प्रथम उद्योत ।
2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 3
3 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 44
4 पारिजातहरण महाकाव्य - विंशसर्ग - 54

महाकाव्य के पंचम सर्ग में नारदमुनि के द्वारा भगवानकृष्ण की स्तुति की गई है ।

"मीनेन वेदान् वहता मुकुन्च कूर्मेण कोलेन व विभ्रता ताम् ।
दैत्यं घ्नता केशरिणा त्रिलोकी प्रमाण्विता लोपधिया मनेन ।।[1]

पारिजातहरण महाकाव्य में न तो बहुत बड़े न ही बहुत छोटे इक्कीस सर्ग है । किसी किसी सर्ग में 100 से अधिक श्लोक हो गए हैं । छन्द योजना का बहुत अच्छा चित्रण कवि ने अपने इस काव्य में किया है । काव्य के पन्द्रहवें सर्ग में सवैया, कवित्त दोहा आदि हिन्दी छन्दों का प्रयोग किया गया है । इसके अतिरिक्त वंशस्थ, उद्गाथा,द्रुतबिलम्बित, उपजाति मालिनी आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है । एक सर्ग एक छन्द से निबद्ध है । वंशस्थ छन्द का प्रयोग कई सर्गों में किया गया है । काव्य के सत्रहवें सर्ग का एक उदाहरण जो वंशस्थ छन्द से निबद्ध है ।

बवावमूर्तो पि खरस्पृशाधरो महावल: प्राणन एवं जीविनाम्
जनार्दननानीकपतेस्तु सात्यके:स्वपक्षरक्षैणिणि पाकशासने ।।[2]

वंशस्थ के प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण तथा रगण होते है "जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ" यह वंशस्थ छन्द का लक्षण है । अत: प्रस्तुत श्लोक में भी वंशस्थ छन्द है ।

---

1 पारिजातहरणमहाकाव्य - पंचम सर्ग - ।।
2 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदशसर्ग - 35

पारिजातहरण महाकाव्य में सन्ध्या वर्णन, प्रभात वर्णन, रात्रिवर्णन, चन्द्रमावर्णन, पर्वतों का बहुत ही मनोहारी वर्णन किया गया है । समुद्र तथा त्रिवेणी का बड़ा ही सजीव चित्रण इस काव्य में किया गया है । स्वर्ग-वर्णन, नन्दन-वन का वर्णन किया गया है युद्ध का तथा यात्रा का जीता जागता चित्र कवि ने अपने इस काव्य में प्रस्तुत किया है । काव्य के द्वितीय सर्ग में प्रभात का बड़ा ही सजीव वर्णन मिलता है ।

> "यह रात्रि एक ऐसे ज्योतिर्मय शिशु को जन्म देना चाहती है जो आनन्द का धाम है, कबूतरों के कलरव के बहाने मानो यही प्रसव की पीड़ा से कराह रही है ।[2]

भगवान भास्कर से भयभीत सी होकर मानो आकाश से भूमि पर छिपने के लिये आई हुई ताराओं जैसी कितनी अभिसारिकायें यहाँ भी सूर्य के पुनः[3] आगमन की आशंका से मानो अन्यत्र छिपने के लिये भागी जा रही है ।

काव्य के तेरहवें सर्ग में सन्ध्या का बड़ा ही सजीव वर्णन मिलता है :-

> दिन के ढल जाने पर सूर्य की किरणों के चले जाने पर आकाश के बहुत अधिक अन्धकार से ग्रसित होने पर सम्पूर्ण लोक के द्वारा अस्पृश्य किन्तु आलोक्य रूप अपनी रोष सहित पीड़ा के कारण उत्पन्न रक्त वर्णका दिखाई दे रहा है ।[4]

---

1 वृत्त रत्नाकर - 3/46
2 पारिजातहरण महाकाव्य -द्वितीय सर्ग - 7
3 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 19
4 पारिजातहरण महाकाव्य - त्रयोदश सर्ग - 3

महाकाव्य के तीसरे सर्ग में रैवतक पर्वत का अत्यन्त मनोहारी चित्रण किया गया है ।

स्वभावत: लतावृक्षों से झरते फूलों को ले बहने वाले झरनों के जल तथा उत्तमोत्तम फल दल अकुरों के लिये वह §रैवतक§ पर्वत पूज्य प्रभुत्वशाली उन भगवानकृष्ण को समीप से अर्घ्य देतासा दिखाई देने लगा ।[1]

काव्य के चतुर्थ सर्ग में कवि ने समुद्र का बहुत ही स्वाभाविक वर्णन किया है -

> अपने भीतर डूबते जल जन्तुओं के द्वारा अपनी स्थिति से मानो विधाता के उत्पत्ति प्रलय का अभिनय कर रहा हो जो §समुद्र§ ऐसा प्रतीत होता था ।[2] कवि ने अपने काव्य के पंचम सर्ग में त्रिवेणी का अत्यन्त ही मनोरम वर्णन किया है ।

यह सकल कल्योणों को देने वाली सत्त्व, रज, तम रूप त्रिगुणमय त्रिदेवों §ब्रह्मा, विष्णु, महेश§ की एकतामय शक्ति की तादात्म्य भागिनी है । सकल शोभाओं की उत्तर पूर्ति §अन्तिम सीमा§ की मूर्ति इस त्रिवेणी की प्रभा के समान कोई मिश्रित प्रभा जगत में नहीं है ।[3]

पारिजातहरण महाकाव्य में ऋतुओं का भी बहुत ही सजीव चित्रण हुआ है । केसर के रंग का फूलों से गिरा पराग पटल जिस पर छाया हुआ है तथा हरे कमल के पत्तों से एवं लाल पीले नीले श्वेत रंग बिरंगे कमल पुष्पों

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य तृतीय सर्ग - 37

2 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थसर्ग - 6

3 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 43

से सजा कहीं जिसमें चमकती मछलियां उछल रही हैं कहीं रंग बिरंगे जल विहंगम पत्तों पर झूल रहे हैं इस प्रकार इस शरद ऋतु की विशेषताएं लिए सरोवर शोभित हो रहा है ।[1]

काव्य के इक्कीसवें सर्ग में पारिजातहरण के आरोपण के बाद बसन्त ऋतु का वर्णन है "अथ मलयसमीरं प्रेरिरत् प्राक् स वीरं ऋतुपतिरयमद्याभ्येति भूमि बसन्तः[2]

कवि ने महाकाव्य के एकादशसर्ग में इन्द्र के नगर अर्थात स्वर्ग का चित्र साअंकित कर दिया है - कनक पर्वत (सुमेरु) के शिखर के बीच इन्द्र नीलमणि के बने प्राकार के भीतर विशाल प्रांगण वाले, जिसमें सभी दिग्पाल घूम रहे थे ऐसे इन्द्र के भवन में प्रवेश किया ।[3]

काव्य के चतुर्थ सर्ग में यज्ञ की इतिकर्तव्यता पर प्रकाश डाला गया है- यह यज्ञ वेदों में अनुशासित एक कर्म विशेष है । सत्पुरुषों ने सतत् इसका अनुष्ठान किया है । इसलिए इसकी सफलता सिद्ध है तो फिर कौन इसको न करे (अतः रुक्मिणी जी का यज्ञ प्रस्तवा सहेतु है) कैसे भी कर्म बिना परिणाम के शान्त नहीं होता । यह अनुभूत और सर्वसम्मत है । फिर यज्ञरूपकर्म की सफलता भी स्वतः सिद्ध है ।[4]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 14

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 21

3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 3

4 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 32

पारिजातहरण महाकाव्य के तीसरे सर्ग में द्वारिका से रैवतक पर्वत की यात्रा का वर्णन किया गया है । तथापि यह कोई विशेष यात्रा न थी किन्तु यह रीति थी कि महाराजाओं की सपरिवार यात्रा ससैन्य ही होती रही । अतः कवि ने प्रस्तुत सर्ग में भगवान कृष्ण की यात्रा का सांगोपांग वर्णन किया है । नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों को फेरते फरकाते तथागति की विशृंखलता को बचाते चलते अपने सामने तीनों लोकों को भी तृण के समान मानते हुए सबका अतिक्रमण करने वाले वीर सैनिकों का दल श्रृंखलाबद्ध गति से सबसे आगे चल रहा था ।[2] काव्य के सत्रहवें सर्ग में नारायण तथा इन्द्र के युद्ध का वर्णन किया गया है । क्रोध से भगवान श्रीकृष्ण इन्द्र के बाण को निराकृत करते हुये मेघ गर्जना के समान गम्भीर वाणी से बोले - सम्पूर्ण सिद्धियां पराक्रम में ही होती है।

पारिजातहरण महाकाव्य में सभी नाटकीय सन्धियाँ मिलती है । प्रथम सर्ग में रुक्मिणी के द्वारा दूती के मुख से व्रत के उद्यापन के लिये भगवान श्रीकृष्ण से अनुमति की याचना और उसकी प्राप्ति बीज अर्थ प्रकृति है इन्द्र का पारिजात वृक्ष को न देना और उसके लिए युद्ध करना यह पताका है । नारद इन्द्र संवाद प्रकरी है । युद्ध में कृष्ण का जीतना तथा सत्यभामा के घर में पारिजातवृक्ष का आरोपण आदि का प्रसंग कार्य है । कृष्ण के पारिजात वृक्ष को पाने की उत्सुकता आरम्भ अवस्था है । पारिजात वृक्ष के न मिलने पर उसके लिए कृष्ण का इन्द्र से युद्ध यत्न अवस्था है । इन्द्र का कृष्ण से युद्ध प्राप्त्याशा है कृष्ण का युद्ध में जीतना नियताप्ति है । पारिजात वृक्ष का उपहार रूप में पाना और सत्यभामा के घर में वृक्ष का आरोपण फलागम है । प्रारम्भ में नारद का इन्द्र के पास जाना तथा

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 4

2 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदंश सर्ग - 5

दूती का कृष्ण के पास जाना मुखसन्धि है नारद सेइन्द्र का युद्ध के लिये संदेश भेजना प्रतिमुख सन्धि है। पारिजात वृक्ष मिलने में विघ्न विमर्श सन्धि है। सत्यभामा के घर में आरोपण निर्वहण सन्धि है। कृष्ण का नारद को इन्द्र के पास भेजना और नारद का वहां से वापिस आना इस प्रकार उपाय के द्वारा तथा अन्वेषण होता है अतः यहां गर्भसन्धि है।

इस महाकाव्य का नाम सर्ग की वर्णनीय कथा (पारिजातवृक्ष के हरण की कथा) से पारिजातहरण रखा गया है नारद के द्वारा दिए गए पुष्प को भगवान श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को दे दिया इससे सत्यभामा बहुत क्रोधित हुई। भगवान कृष्ण ने पारिजात वृक्ष को स्वर्ग[1] से उखाड़ लाने की प्रतिज्ञा की इससे इन्द्र का कृष्ण से भयंकर युद्ध हुआ।

काव्य के पन्द्रहवें सर्ग में भगवान कृष्ण के द्वारा पारिजात के हरण का वर्णन किया गया है। उस काम रूप दिव्य तरू पारिजात वृक्ष को अपने वाहन गरूड़ पर चढ़ाकर कृतकृत्य होते हुये कृष्ण ने[2] इन्द्र के दर्प के अपहार को जताने वाले तेज से युक्त शंख की ध्वनि किया।

इस प्रकार पारिजातहरण की कथा के आधार पर इस काव्य का नाम पारिजातहरण महाकाव्य ही रखा गया।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट है कि पारिजातहरण एक सर्वांगपूर्ण काव्य है।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - कवि उमापति द्विवेदी

2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचदश सर्ग - 77

तृतीय अध्याय

कथानक का मूल स्रोत

पारिजातहरण महाकाव्य की कथावस्तु कृष्ण की कथा से सम्बन्धित है । राम तथा कृष्ण की कथा तो लोकप्रसिद्ध है । पारिजातहरण की कथा-वस्तु पुराण प्रसिद्ध है । इस विषय में हरिवंशपुराण में दो प्रकार की कथा प्रसिद्ध है । इसमें पहली कथा तो विष्णु पुराण में स्वीकार की गई है दूसरी कथा दृश्य श्रव्य काव्य में स्वीकार की गई है । वह कथा इस प्रकार है :- श्रीकृष्ण के सन्दर्शनार्थ आए हुए नारद के द्वारा दिए गए पारिजातपुष्प को श्रीकृष्ण को देना तथा कृष्ण का उसे रुक्मिणी को सौंपना उससे सत्यभामा का क्रोध, कृष्ण का सत्यभामा के अनुनयार्थ स्वर्ग से पारिजात वृक्ष ही उखाड़ लाने की प्रतिज्ञा, नारद द्वारा कृष्ण तथा इन्द्र के बीच सन्देश वार्ता, इन्द्र की पारिजात देने में असम्मति, इन्द्र कृष्ण युद्ध, स्वर्ग से पारिजात का लाया जाना तथा एक संवत्सर बीतने पर पुण्यक व्रतोत्सव के समय पुनः स्वर्ग में वापस पहुँचाया जाना आदि का वर्णन हुआ है ।[1]

इसी कथा को आधार मानकर पारिजातहरण महाकाव्य की रचना हुई है । इसके अतिरिक्त ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण, देवी भागवत में पारिजातहरण का वृतान्त मिलता है । पद्म पुराण में भिन्न वृतान्त मिलता है । पारिजातहरण का वृतान्त हरिवंश में विशिष्ट स्थान रखता है । यह वृतान्त हरिवंश में विशिष्ट स्थान रखता है । यह वृतान्त हरिवंश में दो बार वर्णित है । कृष्ण पारिजात का हरण करते हैं, इन्द्र कृष्ण के पराक्रम को देखकर पारिजात वृक्ष को ले जाने की अनुमति दे देते हैं ।[2]

---

1 दृश्यश्रव्यकाव्य में पारिजात-वर्णन
2 हरिवंश पुराण - 2-67-68-70

पारिजातहरण का द्वितीय वृतान्त हरिवंश पुराण के बारह अध्यायों में वर्णित है । वह कथा इस प्रकार है — रैवतक पर्वत में नारद के द्वारा दिए गए पारिजात कुसुम को कृष्ण रुक्मिणी को दे देते हैं । इस पुष्प के प्रदान से सत्यभामा रूट हो जाती है । उनके आग्रह से कृष्ण स्वर्ग से पारिजातहरण करते है । कृष्ण और इन्द्र के युद्ध की शान्ति के लिये कश्यप ऋषि शिव की तपस्या करते है ।[1] कृष्ण स्वयं पारिजात की सफलता के निमित्त महादेव की स्तुति करते हैं ।[2] पारिजातहरण के इस वृतान्त में युद्ध का विस्तृत वर्णन मिलता है ।

लगभग सभी वैष्णव पुराणों में पारिजात निबन्धन हरिवंश के इस प्रसंग से नितान्त भिन्न रूप में मिलाता है । इन पुराणों में कृष्ण सत्यभामा के इन्द्रलोक पहुँचने पर सत्यभामा की शची के प्रति ईर्ष्या पारिजातहरण के लिये कृष्ण की प्रतिज्ञा, कृष्ण इन्द्र युद्ध और अन्त में इन्द्र की पराजय का उल्लेख है ।[3]

पद्मपुराण में पारिजातहरण की कथा इस प्रकार है — पृथ्वी से उत्पन्न नरकासुर नामक दैत्य इन्द्रादि देवों को पराजित कर देवमाता अदिति के दो कुण्डल, ऐरावत हाथी उच्चैःश्रवा घोड़ा तथा स्वर्ग की अन्य सम्पत्तियाँ लूट ले गया था । देवगण ने कृष्ण की शरण जाकर उनसे नरकासुर के वध की प्रार्थना की । कृष्ण ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर

---

1 हरिवंश पुराण - 2-72, 79-66
2 हरिवंश पुराण - 2-74, 22-34
3 हरिवंश पुराण - 2-73-75
4 विष्णु पुराण - 5-30-31
ब्रह्म्म पुराण - 203
पदम्मपुराण उत्तर खण्ड - 90 देवी भागवत-4, 25, 25-27
भागवत पुराण 10. 59, 38, 40

अपनी सत्यभामा सहित गरुड़ पर सवार होकर असुर को मारने के लिए प्रस्थान किया और उस का वध कर देवों की लूटी हुई सम्पत्ति उन्हें पुनः वापस दिलवाई । अनेक नरेशों की सोलह हजार कन्याओं को जो असुरों के यहाँ बन्दी थी मुक्त किया तथा उनकी ही प्रार्थना पर उनसे विवाह किया फिर देवमाता का दर्शन करने तथा उनके कुण्डल देने स्वर्ग लोक गए । देवमाता को प्रणाम कर उनके कुण्डल उन्हें समर्पित किए । उस समय सत्यभामा शची के महल में गईं । इन्द्राणी ने उनका उचित स्वागत किया । उसी समय सेवकों ने इन्द्र का भेजा सुन्दर पारिजात का पुष्प शची को दे दिया । शची ने उसे मर्त्योचित न समझ सत्यभामा से पूछा भी नहीं और वह पुष्प अपने ही केशों में गूँथ लिया । सत्यभामा इस अपमान से बड़ी क्रुद्ध हुई । उन्होंने कृष्ण के पास जाकर उनको शची के पारिजात विषयक गर्व का वृतान्त बताया वासुदेव ने प्रिया की बात सुनकर पारिजात का वृक्ष ही उखाड़ लिया और उसे गरुड़ पर लादकर प्रिया के साथ द्वारका को चल दिए इस पर इन्द्र को बड़ा क्रोध आया । देवों को साथ लेकर उन्होंने कृष्ण से युद्ध किया, पर अन्त में पारिजात का स्वर्ग से जाना सह लिया । कृष्ण ने उसे सत्यभामा के महल में लगाया ।[1]

यह कथा हरिवंश में बड़े विस्तार के साथ तथा पद्मपुराण की कथा से कुछ भिन्न कही गई है । वहाँ नारद का स्वर्ग से एक पारिजात पुष्प लाना, कृष्ण को देना तथा कृष्ण का उसे रुक्मिणी को सौंपना, उससे सत्यभामा का क्रोध कृष्ण का सत्यभामा के अनययार्थ स्वर्ग से पारिजातवृक्ष ही उखाड़ लाने की प्रतिज्ञा, नारद द्वारा कृष्ण तथा इन्द्र के बीच सन्देश वार्ता, इन्द्र की पारिजात देने में असम्मति, इन्द्र कृष्ण युद्ध, स्वर्ग से पारिजात

---

1 पद्मपुराण - उत्तर खण्ड, अध्याय 276 श्लोक 42/110

का लाया जाना तथा एक संवत्सर बीतने पर पुण्यक व्रतोत्सव के समय पुनः स्वर्ग में पहुँचाया जाना आदि का वर्णन है ।[1]

इसके अतिरिक्त एक स्थान पर हरिवंश में ही पद्मपुराण जैसा कथानक भी है ।[2] भिन्न भिन्न पुराणों में वर्णित कथानकों से ऐसा ज्ञात होता है कि पारिजातहरण महाकाव्य की कथावस्तु हरिवंश पुराण की कथा-वस्तु से समानता रखती है ।

अतः पारिजातहरण महाकाव्य (कविपति श्री उमापति द्विवेदी) का मूल स्रोत हरिवंश पुराण ही है । पारिजातहरण महाकाव्य में नारद स्वर्ग से एक पारिजातपुष्प लाते हैं तथा उसको कृष्ण को देते हैं । कृष्ण उस पुष्प को रुक्मिणी को देते हैं । यही कथा हरिवंश पुराण में भी बताई गई है । कृष्ण का पुष्प को रुक्मिणी को सौंपना, उससे सत्यभामा का क्रोधित होना पारिजातहरण महाकाव्य में तथा हरिवंश पुराण दोनों में बताया गया है । कृष्ण का स्वर्ग से पारिजातवृक्ष ही उखाड़ लाने की प्रतिज्ञा तथा नारद द्वारा कृष्ण तथा इन्द्र के बीच सन्देश वार्ता, इन्द्र की पारिजात देने में असम्मति, इन्द्र कृष्ण युद्ध, स्वर्ग से पारिजात का लाया जाता, इस प्रकार हरिवंश की यह पूरी कथा पारिजातहरण महाकाव्य की सम्पूर्ण कथा से समानता रखती है ।

अन्त में कथा थोड़ी भिन्न हो जाती है । हरिवंश पुराण में अन्त में एक संवत्सर बीतने पर पुण्यक व्रतोत्सव के समय पुनः स्वर्ग में पहुँचाया जाना आदि का वर्णन है ।[3] पारिजातहरण महाकाव्य के अन्त में सत्यभामा

---

1 हरिवंश पुराण - अध्याय - 65-76
2 हरिवंश पुराण अध्याय - 2/64
3 हरिवंश पुराण - 2. 75-81

के घर में पारिजातवृक्ष का आरोपण बताया गया है ।[1]

कवि उमापति द्विवेदी ने थोड़ी कथा भिन्न कर दी है अन्यथा पूरी कथा वैसी ही है, जैसी हरिवंश पुराण में उद्धृत है । हरिवंश पुराण की इस कथावस्तु को लेकर कई महाकाव्य अनेक कवियों के द्वारा लिखे गए है :-

1. पारिजातहरण महाकाव्य - भोज
2. पारिजातहरण महाकाव्य - कविराज
3. Parijataharana a yamaka poem by Narayana (Printed poona)
4. parijataharana by Raghunatha the Nayaka King of Tanjore (17th centuray A.D.)
5. parijataharana adcama by (Gopaldasa)
6. पारिजातहरण महाकाव्य - (कवि उमापति द्विवेदी 19 वीं शताब्दी)

चौदहवीं शताब्दी में श्री उमापति के द्वारा पारिजातहरण नाटक लिखा गया है । उसमें मैथिली गीतों की संख्या 20 है । उसमें कथा इस प्रकार है - देवी महिषासुर मर्दिनी की वन्दना नदी द्वारा मंगलगान रूप में शिव पार्वती प्रणय वर्णन, कृष्ण चरित्र की प्रशंसा, कृष्ण रुक्मिणी का रैवतक पर्वत पर वन विहार, आकाश से उतरे हुये नारद का वर्णन, हरिदर्शन के लिये नारद की आकांक्षा नारद का भक्तिपूर्वक कृष्ण को

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग

पारिजात पुष्प समर्पण सत्यभामा का प्रवेश और उसका वर्णन, सत्यभामा का प्रेम और उसके द्वारा कृष्ण वर्णन, कृष्ण द्वारा रुक्मिणी को पारिजात पुष्प देने पर रुक्मिणी को गर्वोक्ति, सुमुखी नामक सखी द्वारा कृष्ण के सामने सत्यभामा की कोपावस्था का वर्णन, सत्यभामा का कृष्ण प्रेम में पश्चाताप, सत्यभामा का मान, कृष्ण द्वारा सत्यभामा का मान मोचन, सत्यभामा का अभिनिवेश, सत्यभामा की सम्पूर्ण पारिजातवृक्ष लाने की माँग, सत्यभामा की सम्पूर्ण पारिजातवृक्ष लाने की माँग, सत्यभामा का पारिजात के विरह में संलाप, कृष्ण-इन्द्र युद्ध, पारिजातवृक्ष की प्राप्ति के बाद सत्यभामा द्वारा उसकी वेदना, कवि द्वारा आशीर्वाद इत्यादि ।[1] पारिजातहरण नाटक का कथानक हरिवंश पुराण के (124-135) अध्याय के आधार पर लिया गया है ।

इस प्रकार हरिवंश पुराण का आधार लेकर कई ग्रन्थ लिखे गए है । परन्तु प्रस्तुत पारिजातहरण महाकाव्य की कथावस्तु हरिवंश पुराण की कथा से बहुत समानता रखती है । अन्त की कथा थोड़ी भिन्न है । इस प्रकार पारिजातहरण महाकाव्य का मूल स्रोत पुराण ही है ।

---

1 पारिजातहरण नाटक - श्री उमापति (14 वीं शताब्दी)

कथानक का मूल उद्देश्य

संसार में कोई भी कार्य सम्पादित करने का अवश्य ही कोई न कोई उद्देश्य रहता है । अतः कवि भी कुछ प्रयोजन वश ही काव्य की रचना करता है ।

काव्य के द्वारा सरसजनों-रसिकों का धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष रूप चतुवर्ग में ज्ञान कराया जाता है । इससे शीघ्र और सरलतापूर्वक ज्ञान हो जाता है । रसिक लोग नीरस शास्त्रों से डरते हैं ।[1]

सालंकारता के कारण दैदीप्यमान तथा दोषाभाव के कारण निर्मल रचना करने वाला महाकवि सरस काव्य की रचना करता हुआ अपने विशद यश को तो युगान्त पर्यन्त प्रत्यक्ष रूप से फैलाता ही है साथ ही काव्य के नायक के यश को भी फैलाता है ।[2] भरत के अनुसार नाट्य (काव्य) धर्म, यश और आयु का साधक, हितकारक बुद्धि का वर्धक तथा लोकोपदेशक होता है ।[3]

---

1 ननु काव्येन क्रियते सरसानामवगमश्चतुर्वर्गे ।
लघु मृदु च नीरसेभ्यस्ते हि त्रस्यन्ति शास्त्रेभ्यः ।।
-काव्यालंकार रुद्रट, द्वादश अध्याय - 1

2 ज्वलदुज्ज्वलवाक्प्रसरः सरसं कुर्वन्महाकविः काव्यम् ।
स्फुटमाकल्पमनल्पं प्रतनोति यशः परस्यापि ।।
-काव्यालंकार, रुद्रट, द्वादश-अध्याय-4

3 भरत का नाट्यशास्त्र - 1/112/113

भामह के कथनानुसार उत्तम काव्य की रचना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों तथा समस्त कलाओं में निपुणता को और प्रीति [आनन्द] तथा कीर्ति को उत्पन्न करती है ।[1]

वामन के अनुसार काव्य का प्रयोजन है - "प्रीति तथा कीर्ति की प्राप्ति ।"[2] आचार्य मम्मट ने काव्य के निम्नलिखित प्रयोजन माने हैं --

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः पर निर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेश युजे ।।"[3]

काव्य प्रयोजनों का निष्कर्ष यह है कि काव्य निर्माण द्वारा [1] कवि अपने यश को फैलाता है [2] वह चरित नायक के यश को फैलाता है [3] वह धन, असाधारण सुख तथा समस्त अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त करता है [4] देवताओं के स्तुति परक काव्य द्वारा उसे रोगों से मुक्ति मिल जाती है [5] उसे अभीष्ट वर की प्राप्ति हो जाती है [6] इसके द्वारा उसे सहज रूप से चतुर्वर्ग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है । इन प्रयोजनों में से अन्तिम प्रयोजन का सम्बन्ध कवि और सहृदय दोनों के साथ है । तथा शेष का सम्बन्ध केवल कवि के साथ ।

---

1 भामह का काव्यालंकार - 1/2
2 काव्य सूत्र वृत्ति 1/1/5
3 मम्मट का काव्य प्रकाश

इन प्रयोजनों में से अर्थ प्राप्ति, यश प्राप्ति, चरितनायक का गौरवगान ऐसे प्रयोजन हैं जिन पर किसी प्रकार का विवाद नहीं किया जा सकता है । काव्य सर्जन द्वारा धर्म प्राप्ति प्रयोजन व्याख्यापेक्ष है । "धर्म" से तात्पर्य यदि धारयति इति धर्मः अर्थात् (शुभ) कर्तव्य पालन है, तो यह काव्य का साक्षात् प्रयोजन न होकर असाक्षात् प्रयोजन है । कर्तव्य वस्तुतः उस कर्म का नाम है जिसे हम दूसरों की प्रेरणा अथवा द्वारा करते हैं तथा दूसरों के उपकार के लिये करते हैं किन्तु काव्यसर्जन अन्तः प्रेरणा से प्रभूत होने के कारण न तो दूसरों की प्रेरणा अथवा उपदेश की अपेक्षा रखता है और न इसके द्वारा दसूरों का उपकार करना कवि का प्रमुख उद्देश्य होता है । और यदि "धर्म" से तात्पर्य "पुण्यफल-प्राप्ति" लिया जाय तो इसे आज के बुद्धिवादी युग का मानव स्वीकृत नहीं करेगा । ठीक यही स्थिति इन प्रयोजनों की भी है । मोक्ष-प्राप्ति, अनर्थ, विपत्ति, रोग आदि से विमुक्ति तथा किसी देवता द्वारा अभिमत वर की प्राप्ति । शेष रहता है एक प्रयोजन, काम रूप फल की प्राप्ति रुद्रट ने उक्त प्रयोजन में "आत्मानन्दप्राप्ति" को (अथवा भामह और वामन के शब्दों में प्रीति अथवा मम्मट के शब्दों में (सद्यः पर निवृत्ति) को स्पष्ट शब्दों में स्थान नहीं मिला । यदि चतुवर्ग के अन्तर्गत "काम"शब्द से यदि मानवीय रागात्मक भावों की इच्छापूर्ति रूप अभिप्राय लिया जाय तो इसे सद्यः पर निवृत्ति का पर्याय मान लिया जा सकता है । फिर भी ऐसे विशिष्ट प्रयोजन को स्थान न मिलना अवश्य खटकता है । रस जैसे प्रमुख काव्यांग का अत्यन्त मनोयोग के साथ निरूपण करने वाले कवियों को यह प्रयोजन अभीष्ट अवश्य रहा होगा ।

"न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।"
व्यास की इस उक्ति को आधार मानकर कवि उमापति ने अपने पारिजातहरण महाकाव्य की रचना की है । अनेक-अनेक अर्थ देने वाले पदों से युक्त जो वचन है अगर उसमें जगत् को पवित्र करने वाले हरि का गुणगान नहीं किया और मानव का यशोगान किया है तो व्यास के अनुसार यह वाणी पाप है"8, ऐसा मानकर ही कवि उमापति ने अपने काव्य के लिये विषय को चुना है ।

पारिजातहरण महाकाव्य 19 वीं शताब्दी में कवि उमापति के द्वारा लिखा गया है । 1921 ई0 के असहयोग आन्दोलन के बाद यह काव्य लिखा गया है । उस समय देश में आन्दोलन हो रहे थे । उस देश की सामाजिक और आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी । नई सरकार के जनता पर अनेकों अत्याचार हो रहे थे । अतः देश में बढ़ते हुए अत्याचार को रोकने के लिए कवि ने मानस के मनोविनोद के लिए तथा वाणी की पवित्रता के लिए "पारिजातहरण महाकाव्य" की रचना की । जिस समय उन्होंने अपने इस काव्य को लिखा, वहां के राजा ने कवि को विशेष रूप से सम्मानित किया तथा पारितोषिक के रूप में कुछ धन भी दिया था । कवि का काव्य लिखने का प्रयोजन एक और भी था । जल्दी ही पिता की मृत्यु हो जाने से अकेले पुत्र होने के कारण घर में दीनता होने से उन्होंने यह काव्य लिखा, जिसमें भगवान कृष्ण की स्तुति की गई । वंश चलाने के लिए कोई सन्तान न होने से पुत्र प्राप्ति के लिए इन्होंने हरिवंश पुराण का अध्ययन किया और इसी पुराण को आधार मानकर कवि ने इस "पारिजातहरण महाकाव्य" की रचना कर डाली ।

पारिजातहरण महाकाव्य में भगवान कृष्ण के चरित का गान है । भगवान कृष्ण इस काव्य के नायक है । इस काव्य में कृष्ण को महापुरुष, सर्वेश्वर, तथा समस्त जगत् का नियन्ता कहा गया है । देवता मानकर उनकी यथास्थान स्तुति की गई है । इस प्रकार कवि ने अपने यश के साथ(महाकाव्य लिखकर) चरित नायक कृष्ण के यश को भी फैलाया है । इस प्रकार काव्य लिखकर कवि ने धन, असाधारण सुख तथा समस्त अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त किया है ।

कथानक का औचित्य

उचित और अनुचित इन शब्दों का प्रयोग जीवन के प्रत्येक कार्य-कलाप में पदे-पदे होता है । यही जीवन के सच्चे पथ का नियामक है । जहाँ तक काव्य-जगत् का प्रश्न है, वहाँ पर आचार्यों ने काव्य की जो सरणि निश्चित की है, उसी का अनुगमन करना उचित है, उससे भिन्न अनुचित कहा जाएगा उसी का नाम दोष होगा । मेखला कण्ठ में धारण करने से उपाहासास्पद होती है[1] । ठीक उसी प्रकार काव्य में रस, अलंकार, गुणादि का उचित सन्निवेश न होना अनौचित्य कहा जाएगा[2] । इसी मूल तत्व को लेकर औचित्य सम्प्रदाय ही चल पड़ा । आचार्य - क्षेमेन्द्र के शब्दों में जो जिसके सदृश हो वह उचित कहा जाता है और उचित का जो भाव है वह औचित्य कहलाता है । भारत, भामह, दण्डी, आनन्दवर्धन आदि आचार्यों द्वारा प्रतिपादित विविध काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों के मूल में औचित्य की ही धारणा निहित है[3] ।

---

1 "अदेशजो हि वेषस्तु न शोभाजनयिष्यति,
मेखलोरसि बन्धे न हास्यायेवोपजाते ।।
- काव्यप्रकाश

2 औचित्येन विनारुचि प्रतनतेनालंकृतिनो गुणा: ।
औचित्य विचार चर्चा कारिका-6 का दृष्टान्त ।।

3 एता: प्रयत्नादधिगम्य सम्यक् औचित्यमालोच्य तथार्थसंस्थम्
मिश्रा:कविरेन्द्ररचनात्यदीर्घा:कार्यामुहुश्चैव गृहीतमुक्ता:
- रूद्रट काव्यालंकार - 2.32

संस्कृत के आचार्यों ने काव्य में औचित्य को विशेष महत्त्व दिया है। औचित्य के प्रत्यक्षदर्शी आचार्यों में रुद्रट का नाम सबसे पहले आता है। क्षेमेन्द्र ने औचित्य को रससिद्ध काव्य की आत्मा कहा है। आनन्द वर्धन के अनुसार तो अनौचित्य से बढ़कर रसभंग का कोई कारण नहीं है और प्रसिद्ध औचित्य का अनुसर सरण ही रस का परम रहस्य है। काव्य का जीवित भूत तत्त्व है, "रस" अतएव काव्य का उपनिबन्धन करते समय कवि को रसदृष्टि के लिए सर्वात्मना प्रयत्नशील होना चाहिए। सहृदय के हृदय में रसानुभूति कराना परम वांछनीय है और केवल ऐतिहासिक घटनाओं के शुष्क वर्णन से पाठकों को रसानुभूति नहीं कराई जा सकती है। अतः कवि के लिए आवश्यक है वह कथानक को सरस बनाने के लिए रसापकर्षक तत्त्वों का परिहार करें और रसपोषक तत्त्वों का सन्निवेश अपने काव्य में करें। इतिवृत्त मात्र का निर्वाह कर देने से सकल प्रयोजन मौलिभूत रत्यादिक भावों के आस्वादन से समुद्भूत विगलित वेधान्तर आनन्द की अनुभूति कराने वाले कवि का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। क्योंकि वह प्रयोजन तो इतिहास से भी सिद्ध हो सकता है। इसी कारण रस पोषण के लिए सर्वात्मना प्रयत्नशील कवि को कहीं घटना का संकोच करना पड़ता है तो कहीं घटना का विस्तार और कहीं नूतन घटना की उद्भावना करनी पड़ती है। पर इस नूतन उद्भावना के समय कवि को इस बात के लिए जागरूक रहना पड़ता है कि वह नूतन कल्पना काव्यगत रस संगति के साथ इतिहास गत मुख्य वस्तु तत्त्व से भिन्न किसी प्रकार न लगे अपितु इसका एक विस्तृत रूप प्रतीत हो। जहां नूतन स्फुरित होते हुये काव्य वस्तुओं में पुरातन वस्तु रचना (अर्थयोजना) अक्षरादि रचना से निबद्ध की जाती है, वह स्पष्ट ही दूषित नहीं होती।[1]

---

1 अक्षरादि रचनेव योज्यते यत्र वस्तु रचना पुरातनी।
नूतने स्फुरिति काव्यवस्तुनि व्यक्तमेव खलु सा न दुष्यति।।"
-ध्वन्यालोक-4-119

काव्य में ऐतिहासिक कथानक का महत्त्व :-

इतिहास अतीत की घटनाओं को यथासम्भव सत्यरूप में अंकित करता है उसमें ऐसी घटनाओं का वर्णन होता है, जो इसी लोक में घटित हुई तथा उसमें ऐसे व्यक्तियों का चरित्र होता है जो इसी मानव समाज के अंग थे। ऐतिहासिक व्यक्तियों की प्रसिद्धि तथा प्रियता का प्रधान कारण यही है कि वे मानव समाज के एक अंग होकर ही मनुष्य स्वभावानुकूल कुछ ऐसे कार्य कर गए जो समाज के लिए बहुत कुछ पथ प्रदर्शक का कार्य करते हैं। समाज का सनातन सत्य स्वरूप अतीत के दर्पण में देखा जा सकता है अतः हम कह सकते हैं कि इतिहास समाज की बीती कहानी है। और समाज इतिहास का प्रतिबिम्ब। सत्य और कल्पना के इस अद्भुत समन्वय की मनोहरता का अनुभव करके ही आचार्यों ने काव्य कथानक के लिए इतिहासोद्भव वृत्त को प्रधानता दी या किसी ऐसे सत्पुरुष का भी चरित्र काव्य कथानक के लिए उपर्युक्त बताया जो कल का ऐतिहासिक व्यक्ति होने वाला है[1]। नितान्त कल्पित कथानक को काव्य के लिए उपयोगी नहीं माना। विशेषतः महाकाव्य के लिए क्योंकि उसमें इस बात की बहुत अधिक सम्भावना रहती है कि कवि समाज के कल्पित आदर्शों से इधर उधर बहक जाय और इस प्रकार काव्य के प्रमुख प्रयोजन अथवा प्रधान लक्ष्य (कान्ता सम्मिततया उपदेश[2]-प्रदत्त को ही खो बैठे।

कथानक की ऐतिहासिकता लोगों में काव्य के प्रति विश्वास उत्पन्न कराती है और इस प्रकार उसका रूप सजीव, स्वाभाविक एवं व्यावहारिक लगने लगता है। ऐतिहासिक वृत्त एवं पात्र साहित्य सिद्ध आदर्शों को सजीवता से

---

1 "इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।"
-काव्यादर्श - 1-15

2 काव्यप्रकाश

अनुप्राणित कर देते हैं । साहित्यिक कल्पनाओं में यथार्थता ला देते हैं । इतिहास वर्णित चरित्रों से जनसाधारण का आत्मीय सम्बन्ध संस्कारतः जुड़ा रहता है । काव्य में कल्पना का विशेष हाथ रहता ही है किन्तु उस कल्पना निर्मित काव्यगत जीवन को लोक ग्राह्यता अर्थात् व्यावहारिकता के स्तर पर लाने का श्रेय ऐतिहासिक कथानक को ही है । काव्य में ऐतिहासिक वृत्तों को ही प्रधानता रही है । काव्य में ऐतिहासिक वृत्त रखने का एक और विशेष कारण है । उसमें व्यक्ति के चरित्र का प्रायः समग्र रूप दिखाया जाता है जो अतीत के आश्रय से ही पूर्ण रूपेण जाना जा सकता है । यदि केवल वर्तमान जीवन का आश्रय लिया जाय तो पूरे का चित्रण नहीं हो सकता क्योंकि पता नहीं आगामी जीवन में किस व्यक्ति को चरित्र में परिवर्तन हो जाय । अतः जब तक जीवन की पूरी कथा न मालूम हो किसी एक अंग या अंश में उसके सम्पूर्ण चरित्र का प्रतिनिधित्व या प्रतिबिम्ब नहीं दिखाया जा सकता । प्रत्येक व्यक्ति में गुण दोष दोनों रहते हैं । न कोई नितान्त भला होता है और न कोई नितान्त बुरा ही । जिसमें अच्छाइयों की अधिक मात्रा होती है उसे बुरा कहा जाता है । काव्य या महाकाव्य में किसी व्यक्ति की सारी कहानी नहीं कही जाती अपितु उसके जीवन का जितना अंश काव्य रस विशेष के लिए उपयोगी समझा जाता है कवि उतने मात्र का वर्णन करता है । अतएव आचार्य आनन्दवर्धन का मत है - कि "विभाव अनुभाव तथा संचारी भाव की उचित योजना द्वारा सुन्दर प्रसिद्ध ऐतिहासिक आदि या कल्पित कथानक से युक्त प्रबन्ध ही रस का व्यंजक होता है । उसमें मनोनीत रस की प्रतिकूल घटनाओं का त्याग तथा अनुकूल घटनाओं की कल्पना भी की जा सकती है[1] ।

---

1 ध्वन्यालोक-3-66, 67

पात्र का काव्य वर्णित मात्र चरित्र उसके समग्र चरित्र का प्रतीक होना चाहिए और यह तभी हो सकता है जब पात्रों का चरित्र पूर्ण स्वरूप में विदित हो ।

पारिजातहरण कथा की प्राचीनता :-

पारिजातहरण कथा अति प्राचीन काल से प्रसिद्ध रही है । पारिजात-हरण काव्य की कथा पुराण प्रसिद्ध है । हरिवंश पुराण से इस काव्य की कथा ली गई है । पारिजातहरण महाकाव्य की कथा कृष्ण की कथा से सम्बन्धित है । राम तथा कृष्ण की कथा तो लोक प्रसिद्ध है तथा प्राचीनकाल से ही विख्यात है । हरिवंश पुराण में दो प्रकार की कथा प्रसिद्ध है । दूसरी कथा दृश्य श्रव्य काव्य में स्वीकार की गई है[1] ।

दूसरी कथा को ही आधार मानकर इस पारिजातहरण महाकाव्य की रचना हुई है ।

पारिजातहरण की कथा विभिन्न पुराणों में भिन्न-भिन्न प्रकार से मिलती है । ब्रह्मपुराण, विष्णु पुराण, देवी भागवत में पारिजातहरण का वृतान्त मिलता है । पारिजातहरण का वृतान्त हरिवंश में विशिष्ट स्थान रखता है । पारिजातहरण का द्वितीय वृतान्त हरिवंश पुराण के बारह अध्यायों में वर्णित है[2] ।

इसी कथा का आधार मानकर पारिजातहरण महाकाव्य की रचना की गई है । अतः भिन्न भिंन्न पुराणों में पारिजातहरण के वर्णन से पारिजातहरण कथा की प्राचीनता सिद्ध होती है ।

---

1 हरिवंश पुराण - 2-67, 68, 70

2 हरिवंश पुराण - 2-72, 29-66

पारिजातहरण कथानक का आधार पुराण :-

कवि उमापति द्विवेदी द्वारा विरचित पारिजातहरण महाकाव्य के पूर्व अनेक कवियों ने पारिजातहरण नाम के ग्रन्थ लिखे हैं इसमें निम्न कवियों के नाम उल्लेखनीय है :-

कविराज, भोज, रघुनाथ (तन्जौर के राजा
पारिजातहरण नाटक रचयिता गोपाल दास " । यह सभी ग्रन्थ कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाव्य के पूर्व ही लिखे गए क्योंकि प्रस्तुत पारिजातहरण महाकाव्य 19 वीं शताब्दी में लिखा गया है । इसके बाद इस प्रकार का कोई महाकाव्य किसी कवि ने नहीं लिखा चूँकि सभी पारिजातहरण (काव्य या नाटक) का आधार पुराण ही है अतः यह सिद्ध है कि प्रस्तुत पारिजातहरण महाकाव्य का आधार भी पुराण ही है तथा दूसरी बात यह भी सिद्ध है कि पारिजातहरण महाकाव्य (कवि उमापति की कथाहरिवंश पुराण में वर्णित पारिजातहरण की कथा से बिलकुल वैसी ही मिलती है । अतः पारिजातहरण कथानक का आधार पुराण ही है यह सिद्ध है । प
पारिजातहरण महाकाव्य के अन्त की कथा हरिवंश पुराण की कथा से कुछ भिन्न हो गई है । रस पोषण के लिए सर्वात्मना प्रयत्नशील कवि को कहीं नूतन घटना की उद्भावना करनी पड़ती है पर इस नूतन उद्भावना के समय कवि को इस बात के लिए जागरूक रहना पड़ता है कि वह नूतन कल्पना काव्यगत रस संगति के साथ इतिहास गत मुख्य वस्तु तत्व से भिन्न किसी प्रकार न लगे । काव्य के अन्त में जो कथा है वह कवि उमापति की अपनी कल्पना है लेकिन मुख्य कथा से भिन्न किसी प्रकार नहीं लगती । वह कथा पारिजातहरण महाकाव्य में इस प्रकार मिलती है - अन्त में उपहार रूप में

कृष्ण का पारिजातवृक्ष का पाना तथा सत्यभामा के घर में वृक्ष का आरोपण[1]।

संवाद वर्णन

पारिजातहरण महाकाव्य में स्थान-स्थान पर संवाद वर्णन मिलता है। यह संवाद रस पोषण के लिए काव्य में कथानक का विस्तार करने में बहुत ही सहायक होते हैं साथ ही विविध घटनाओं के वर्णन में भी सहायक होते हैं।

काव्य के एकादश सर्ग में नारद इन्द्र संवाद वर्णन मिलता है। जब नारद स्वर्ग पहुँचे तो इन्द्र ने उनका अभिवादन किया। और कुशल प्रश्न पूछे कि आपके शान्तिमय व्यवहार में विघ्नों का अभाव तो है न। अपने पिता की कुशलता बताइये और यदि मेरे (इन्द्र के) प्रति उनका कुछ आदेश हो तो सुनवाइये " श्री नारायण या महेश्वर शिव का यदि कोई सन्देश ले आए हो तो उसे भी सुनाइए क्योंकि उनके अनुशासन को किंचितमात्र भी टालना उचित नहीं है [2]।

अग्नि आदि दिग्पालों को कुछ मुझसे (इन्द्र से) अभीष्ट हो तो बताइए। अतः चाहे आत्म सम्बन्धी या अन्य सम्बन्धी कुछ वृत्त जो मेरे सुनने लायक हो कहिये"[3] इस समय मर्त्य लोक पर शासन करने वाले अखिल भुवन नायक मेरे छोटे भाई रमानाथ की कुशलता बताकर मेरी (इन्द्र की) मानसिक उत्कण्ठा शान्त करिये। यदि केवल मेरे पर अनुग्रह करते हैं तो आपके दर्शन में कृतार्थ हुआ। इस प्रकार अवसर पाकर नारद जी ने अपने

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 26

3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 28

अभिलषित कार्य की सिद्धि के लिए भूमिका के समान वचन-प्रबन्ध प्रारम्भ किया[1]। हे इन्द्र देव इस समय हमारा भ्रमण केवल आपके ही अभीष्ट कार्य सिद्धि के लिए है। मैं {नारद} भगवान् कृष्ण को आपके पिता श्री कश्यप जी का कुशल सन्देश बताकर द्वारिका पुरी से यहाँ आया हूँ आपके अनुज श्रीकृष्ण भली भाँति शासन कर रहे हैं। वह चक्रधारी कृष्ण शासन कर रहे हैं। वह चक्रधारी कृष्ण भौमासुर की पराजय चाहने वाले तथा आपके हित चाहने वाले आपका साथ देना भी अपनी ओर से चाह रहे हैं किन्तु इस बीच में आ पड़े एक आकस्मिक वृतान्त को सुनिए जिससे नारायण ने आपके पास अभी मुझे भेजा है।

आपके सुरवृक्ष पारिजात का एक फूल पाकर मैंने उनको भेंट किया इन्होंने उसे भीष्म कन्या रुक्मिणी को दे दिया यह सुनकर उनके बाहरी प्राण के समान प्रिय स्त्री सत्यभामा उनके बाहरी प्राण के समान प्रिय स्त्री सत्यभामा ईर्ष्या से कुपित हो उठी थी और उन भगवान कृष्ण ने सत्यभामा के मानभंग के लिए वर्ष भर के लिए पारिजातवृक्ष को उनके घर में लगा देने की प्रतिज्ञा कर दी है। अतः वर्ष भर के लिये आप अपने अनुज को देववृक्षों में रत्नभूत पारिजात को दे दीजिए। यदुनाथ ने मृदुल मुख से आप{देवलोक नायक} से याचना किया है। वह सत्यभामा आज दम्पत्ति के द्वारा सर्वथा पुत्री के समान सम्मान योग्य पारितोषिक की पात्र है।

नारद जी ने ज्यों ही इतना इतिवृत्ति कह सुनाया तब तक ही अमरनाथ इन्द्र चमक उठे और बोले अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है[2]। वह छली कृष्ण देवता से लेकर असुरों तक अपनी प्रभुता बनाने के लिए अपनी

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - ~~44~~ 32
2- पारिजातहरण महाकाव्य - एकादशसर्ग 44

माया फैलाकर हम सबको दबा रहे हैं और अब स्वर्ग की जो कुछ भी उत्तम वस्तु है उसे भी हर लेना चाहते हैं । वह कृष्ण अब उन्नति के लिये हमारी हानि का प्रयत्न कर रहे हैं । इन्होंने इस प्रकार एक बहाना पैदा कर हमें ﴾इन्द्र को﴿ जीतने की इच्छा से आपसे यह मौखिक सन्देश भेजा है[1] । वह कृष्ण अपनी सूझ से अपने तात्कालिक स्वार्थ सिद्धि के लिए जिसकी उपयोगिता मान लेता है, कभी सन्धि, कभी विग्रह आदि का मनमाना अव्यवस्थित प्रयोग किया ही करता है । नीति के अनुसार मुझ इन्द्र पर चढ़ाई कर देने के लिए वृक्ष की याचना रूप एक व्याज﴾कपट﴿ रच रहे हैं । इसलिए हे मुनिवर आप जाइए और उन कृष्ण से कहिए कि अपने स्वत्व को बढ़ाना तो अवश्य इष्ट है किन्तु दूसरे के स्वत्व को मिटाने की क्या आवश्यकता है[2] । इस प्रकार कृष्ण के दुर्गुण बताते हुए इन्द्र कहते है - यदि मनुष्य में स्त्रैणता रहे तो उसके ऐश्वर्य के विनाश में कोई रुकावट नहीं है, उसका प्रभुत्व नष्ट हो ही जाता है[3] । क्योंकि स्त्री से जित﴾वशीभूत﴿ पुरुष का जन्म ही व्यर्थ है ।"स्त्री के वश में रहने वाले मनुष्यों के अन्न खाने में भी पाप धर्मशास्त्रकारों ने बताया है ।

इस प्रकार कहते हुए इन्द्र से नारद जी ने कहा कि एकाएक ज्ञात हो पड़ी समता के कारण रस्सी में उदित हुई सर्प बुद्धि किसी की भी हो ऋ सबके लिए भ्रान्ति ही है[4] । कृष्ण की माया तो विख्यात ही है । इस निरंचन पुरुष कृष्ण को जगद् व्यवहार से कोई प्रयोजन नही है । इस प्रकार नारद भगवान् कृष्ण के गुणों का व्याख्यान बताते हुए इन्द्र से कहते हैं - हे देवेन्द्र!

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 52
2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 62
3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 71
4 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 76

अपने को ही धोखे में डालकर अपने आप अपनी शत्रुता करते हुए आपको मैं कौन सा सदुपदेश दूँ । यह मूढ़ता स्वयं फल को आपके कर्म विपाक को अलंकृत करेगी[1] ।

इस प्रकार विभिन्न शास्त्रों तथा विभिन्न दर्शनों के वर्णन द्वारा भगवान श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन नारद तथा इन्द्र के द्वारा करके कवि ने अपने पाण्डित्य को प्रदर्शित करते हुए काव्य के कथानक का विस्तार किया है जो कि अत्यन्त ही स्वाभाविक है ।

पारिजातहरण महाकाव्य के एकोनविंश तथा विंश सर्ग में ऋषि कश्यप तथा इन्द्र और भगवान कृष्ण का संवाद वर्णन मिलता है सभी महात्माओं तथा प्रजापति के गुरु वृहस्पति ने कश्यप ऋषि के पास जाकर इन्द्र तथा कृष्ण के युद्ध का वृतान्त सुनाया[2] ।

तब ऋषि उन दोनों के पास गए । इन्द्र तथा कृष्ण अपने पिता को युद्ध स्थल में देखकर स्तब्ध रह गए और उनके चरणों में गिर गए । तब ऋषि ने दोनों (इन्द्र तथा कृष्ण) की चारुता के लिए निश्चय करके कुछ प्रभावशाली वाणी में कहा तुम दोनों तत्व को जानने वाले हो तुम (कृष्ण) ने अवतार लेकर देवता के दुःख को दूर किया तुम दोनों न चाही गई वस्तु को नहीं दे सकते ऐसा नहीं है । सभी वैभव तुम लोगों को प्राप्त हो । निगम आदि गीतों में तुम्हारा उल्लेख है । तुम लोगों यज्ञों के ईश्वर भी हो । जगत के गुरु हो इस कारण मैं ऋषि कश्यप इस विषमायित शरीर में निर्णायकत्व को प्राप्त करके कुछ कहता हूँ इस समय यह शोचनीय नहीं है, पारिजात वृक्ष

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 97
2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकोनविंश सर्ग
पारिजातहरण महाकाव्य - विंशसर्ग -

देवलोक में रहे या पृथ्वी पर देवताओं की माता अदिति का कर्णावतंस हरण हो गया है "विशेष चिन्ता का विषय यह है । अपनी वधू के लियेकल्पवृक्ष के हरण के लिए आपस में तुम दोनों कलह करते हो क्या यह तुम दोनों को शोभा देता है । इस प्रकार कश्यप ऋषि के द्वारा जननी की स्तुति भी की गई ।

युद्ध वर्णन:-

इन्द्र के नारद से यह वचन कहने पर कि जाइये उस कृष्ण से कहिए कि :-

"बिना युद्ध के इस वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं मिल सकता"[1] नारायण तथा इन्द्र का युद्ध होना स्वाभाविक ही था ।

रस पोषण के लिए इस प्रकार के वर्णन तो कथानक के विस्तार करने में बहुत ही सहायक होते हैं ।

पारिजातहरण महाकाव्य के सत्रहवें सर्ग में नारायण तथा इन्द्र के युद्ध का विस्तृत वर्णन किया गया है । इन्द्र भगवान कृष्ण से कहते हैं -- हे कुजात । पारिजातवृक्ष के प्रति इच्छा त्याग दो । इन्द्रलोक के स्वामी को डरपोक मत समझो । तुम्हारा अधिकार इस वृक्ष के पत्ते पर भी नहीं है[2] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 100

2 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग - 1

ऐसा कहने पर ओजस्वी इन्द्र ने अपने विशाल धनुष को अपने कान तक खींचा और निरंकुश बाण से तीर कृष्ण के ऊपर छोड़ दिया । क्रोध से भगवान ने भी उसके बाण को निराकृत कर दिया और गम्भीर बाणी में बोले - सम्पूर्ण सिद्धियां पराक्रम से होती है[1] । मुझ कृष्ण का निश्चय बेकार नहीं है । यह पेड़ मैं ले जाऊँगा । इसलिए अपनी सफलता के लिये निश्चय मत करो ऐसा कहकर भगवान ने भी धनुष तैयार कर लिया, जो टेढ़ा होकर भ्रूभंग के समान भयंकर लग रहा था उतनी ही देर में इन्द्र के पुत्र पुरन्दर तथा कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न युद्ध के लिए तैयार हो गए और लगातार बाणों की वर्षा करते हुए एक दूसरे को मारने के लिए उद्यत हो गए । दोनों ही अपना-अपना कौशल दिखा रहे थे दोनों ही रोष से पूर्ण थे तथा दोनों का शरीर बाण रूपी पिंजरे के अन्दर प्रच्छन्न हो गया था । उन दोनों (इन्द्र तथा कृष्ण) का रोष सहित युद्ध देखकर स्वर्ग से देवगण देखने की इच्छा से भाग खड़े हुए ।

पृथ्वी फट गई, जमीन में चीत्कार पैदा हो गया तारों के समुदाय की संक्रान्ति शृंखला रहित हो गई अचानक स्वर्ग लोक फट गया[2] । अत्यधिक चमत्कार से युक्त स्वर आकाश में में उत्पन्न हो गया । इन्द्र का हाथी तथा कृष्ण का वाहन गरुण दोनों चीत्कार करने लगें । सभी देवताओं तथा महर्षियों द्वारा युद्ध शान्ति के लिए स्वस्त्ययन पाठ प्रारम्भ कर दिया गया[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग - 4

2 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग - 17

3 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदशी - 20

उतनी ही देर में इन्द्र के हस्तिवाहक ने सात्यकि के विशाल वक्षस्थल पर गदा मार दी । वह सात्यकि जन्म से कभी किसी से पराजित नहीं हुआ था तथा जो कृष्ण का दाहिना हाथ था । यह अपमान सात्यकि से कैसे सहा जाता उस सात्यकि ने अपने अतुलनीय कान्ति वाले कुन्त से इन्द्र के छत्र को आकाश में उड़ा दिया तथा हस्ति वाहक के आभूषण रूप बाण को भी गिरा दिया । इस सात्यकि के अद्भुत कर्म से कृष्ण प्रसन्न हो गया तथा इन्द्र क्रोध से भर गया तब क्रोध से व्याप्त शरीर वाले वह इन्द्र अपने इस अपमान को दूर करते हुए से कृष्ण के मान हानि की इच्छा से जब तक हाथ में बाण उठाते हैं तब तक सात्यकि उस बाण को काट देता है[1] ।

साथ ही ऐरावत के हांकने वाले के मस्तक को भी भेद डाला तथा इन्द्र के ध्वज के धूनन में विचार किया सभी दिशाओं के स्वामी सात्यकि के अद्भुत पराक्रम को देखने के लिए टूट पड़े । इन्द्र के पक्ष की ओर के शर पंजर को प्रद्युम्न ने तोड़ डाला ।

युद्ध का वर्णन कवि के काव्य लिखने के मुख्य प्रयोजन को भी सिद्ध करने में सहायक हुआ है तथा रस पोषण में कथानक का विस्तार करने में भी अत्यन्त आवश्यक सिद्ध हुआ है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग :- 28

पारिजात पुष्प का निरूपण :-

काव्य के छठे सर्ग में पारिजात नामक पुष्प का निरूपण किया गया है । सभी अभिलाषाओं को पूर्ण कर देने वाले इस पारिजात पुष्प का निरूपण करना कवि का प्रयोजन है ।

प्रस्तुत महाकाव्य का नाम ही पारिजातहरण महाकाव्य है अतः पारिजात पुष्प का निरूपण करना तो कवि के लिए स्वाभाविक ही प्रतीत होता है ।

वह पारिजातपुष्प अत्यन्त ही चमकीला था । उस पुष्प का अपूर्व सौरभ था । उसको देखकर सभी जनों के मानस प्रफुल्ल हो मोहक आनन्द में विभोर हो रहे थे ।" उस फूल पारिजात की चित्त को लुभाने वाली अकथनीय कान्ति ने सकल संसार की आँखें जिनकी कान्ति पर विराम करती है उस विश्वदर्शनीय रुक्मिणी सहित कृष्ण भगवान की आँखों को भी सतृष्णा लोभ युक्त कर दी[1] ।

अकस्मात् फैली उस फूल की प्रभा प्रसार ने निजी आकार के चमत्कार की चकाचौंध में सबकी आँखें तत्काल बन्द करदीं उस क्षण थोड़ी देर के लिए ऐसा लग रहा था जैसे मूर्तिमती आनन्दमय घनघटा की घटना सी संघटित हो गई हो और पुष्प की प्रभा स्थिर हो चमकने वाली बिजली सी लग रही थी ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 1

महर्षि नारद भगवान कृष्ण को वह पारिजात पुष्प उपहार रूप में देते हुये उस पुष्प के गुणों का वर्णन करते हुये कहते हैं - वह पुष्प भगवान के हाथ में अद्भुत शोभित हुआ । हे भगवन्! परम प्रभावशाली आप (कृष्ण) के सिवा पृथ्वी तल के ऐश्वर्य भोगने वाले किसी दूसरे लोगों के योग्य यह दिव्य पुष्प नहीं है । यह पुष्प न तो कभी कुम्हलाता है न कभी इसकी गन्ध उड़ती है । इसके मिल जाने पर अन्धों को भी प्रत्यक्ष दिव्य दृष्टि मिल जाती है । जीवों के मन की सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करता है तथा सम्पूर्ण गुणों के पाने की इच्छा रखने वालों को भी सन्तुष्ट करता है । सौभाग्य को चमका देता तथा पुण्यों का उदय करने वाला है । इसकी शोभा कभी भी नहीं घटती । दुःखी चित्त को भी पूर्ण सुखी कर देने वाला यह त्रिलोक में अनुपम है । स्वर्ग में भी इसके समान दूसरा पुष्प नहीं है[1]।

इस प्रकार उस पुष्प पर रुक्मिणी तथा कृष्ण दोनों उत्सुकता भरी आँखें एक अतिरिक्त पुष्प के समान उस पर प्रतिबिम्बित हो उठी ।

सम्पूर्ण अभीष्टों के देने वाले इस सन्तान पुष्प को भगवान ने प्रेमोपहार के रूप में रुक्मिणी को दे दिया[2]।

सत्यभामा के क्रोध का वर्णन :-

घटनाओं का वर्णन कवि उमापति ने अपने काव्य के कथानक का बढ़ाने के लिये किया है । सत्यभामा कृष्ण की सबसे प्रिय पत्नी थी । नारद के

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 6-8

2 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 11

द्वारा दिए गए पुष्प को भगवान कृष्ण को रुक्मिणी को दे दिया यह वृतान्त जानकर स्वाभाविक है - रुक्मिणी के सम्मानातिशय को सखी के मुख से सुनकर सत्यभामा का मानस क्रोध से भर गया । वह सत्यभामा क्रोध से लाल रक्त प्रभा से अनुरंजित आकाश भूमि सी भीषण दिखाई पड़ रही थी । सत्यभामा ने अपने दुःख का कारण मुनि से बताया - पति के लिए बनावटी आदर्शों के गर्व में मैने किसी अन्य स्त्री को कुछ भी नहीं गिना । इसी से आज लज्जाजनक अपमान सूचक प्रिय के विरूद्ध फल पा रही हूँ [2] । सत्यभामा क्रोध से भगवान् के दुर्गुणों को बताती हुई कहती है :- काली कान्ति वालों की रीति ही रस विषय में सदा उलटी ही रहती है [3] । कृष्ण पर ही अपने को न्योछावर करने वाली राधिका को कुल कलंकिनी बनाकर आज तक उसे नहीं पूछते । नास्तिकता से युक्त श्रेष्ठ पुरुष की बुद्धि जैसे निरर्थक हो जाती है, उसी प्रकार विषमरीति वाली प्रीति भी निरर्थक होती है । इसलिये हे मुने ! पति के परम अनुराग रूप भाग को पाने वाली रुक्मिणी की ही आज प्रशंसा करें जो आपके उपहार रूप दिए सकल कामना पूरक पारिजात का फूल पाकर सौभाग्य रूप तेज में फूली नहीं समाती है [4] । यह {कृष्ण} राधिकारमण नाम से प्रसिद्ध थे इनकी राधारमणता को पहले ही कुब्जा ने फीका कर दिया ।

अखिल तत्व ज्ञान के आधार भगवान कृष्ण सत्यभामा को सही-सही कोप युक्त जानकर उन्हें मनाने के लिए उनके घर की ओर चल दिए [5] । भगवान अपनी प्रियतमा की कोप स्थिति को देखने लगे । अधिक श्वासोच्छ्वास के कारण कांपते हृदय पर कमल कोष के समान वृक्षोज युगल जोरा में हिल रहे थे।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तमसर्ग - 3
2 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तमसर्ग - 31
3 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तमसर्ग - 33
4 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तमसर्ग - 41
5 पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टमसर्ग - 1

वह सत्यभामा क्रोध युक्त टेढ़ी भौहों से युक्त मुख को धारण किए दीख रही थी क्रुद्ध सर्पिणी की भाँति वह लम्बी-लम्बी भयंकर साँसें ले रही थी ।

अपने भूषण श्रृंगारादि से रहित स्वच्छ शरीर वाली सत्यभामा परमहर्ष के समय भी ऐसी जान पड़ती थी जैसे बसन्त के आरम्भ में पतझड़ हो जाने से डंठल मात्र से बची लता हो जाती है[1]। अपने प्राण बल्लभकृष्ण को सामने देखकर क्रोध के आवेश में सत्यभामा न उठ ही सकी, न पड़ी ही रही । सात्विक श्रृंगार भाव के उदय से नवोढा के समान उनका शरीर काँपने लगा । सत्यभामा के जलते क्रोधाग्नि में भगवान् कृष्ण का जो प्रेमार्द्र भाव आ मिला इससे भाप बनकर उठे जल से भरे अपने नयन कमल रूप दोनों पुट पात्रों को ही उसने भगवान के पाँव पखारने का पात्र बना दिया अर्थात डबडबाई आँखों से उनके चरणों को अश्रुजल से सींचने लगी[2]।

सत्यभामा के क्रोध की शान्ति के लिए पारिजात वृक्ष को सत्यभामा के घर में एक वर्ष तक लगा देने का वचन कृष्ण ने दे दिया " हे प्रिये सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ आज तुम सुनो और यह सभी देवता सुने वह पारिजात वृक्ष ही हमारा लाया तुम्हारे अभीष्ट पुष्पों को बरसाता हुआ एक वर्ष तक तुम्हारे आँगन में रहें अब तुम शीघ्र प्रसन्न हो जाओ[3]।

इस प्रकार सत्यभामा के क्रोध का वर्णन कवि ने अपने काव्य के कथानक का विस्तार करने के लिए किया है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टम सर्ग - 21

2 पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टमसर्ग -34

3 पारिजातहरण महाकाव्य - नवम सर्ग -41

गृहस्थ धर्म का निरूपण :-

काव्य के रस पोषण के लिए अपने काव्य में कवि को कहीं घटना का विस्तार करना पड़ता है ।

पारिजातहरण महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में गृहस्थ धर्म का निरूपण करके कवि ने अपने धर्म शास्त्र ज्ञान का परिचय दिया है । साथ ही यह वर्णन कवि के कथानक का विस्तार करने में भी सहायक है । इस प्रकार काव्य में स्थान-स्थान पर उपदेश भी प्राप्त होते हैं ।

"रुक्मिणी सहित भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने हाथ से महर्षि नारद के पाद प्रक्षालन किए क्योंकि अतिथि सेवा से बढ़कर गृहस्थ का दूसरा धर्म ही नहीं है ।" अपने अभीष्ट वस्तु की उत्पत्ति ही सभी धर्मों का अन्तिम परिणाम है । गार्हस्थ्य सम्बन्धी हमारे सभी धर्म आज आपके दर्शन से सफल हो गए इससे बढ़कर हमारी अभीष्ट वस्तु क्या होगी[1] ।

गृह शब्द का अर्थ गृहीत होने वाला या ग्रहण करने वाला होता है । जिसे सज्जन अनुगृहीत करने है या अपनी सेवा सत्कारादि गुणों से जो स्वयं महात्माओं को अपनी ओर खींच लेता है । वही वास्तव में गृह है । गृहस्थ से इतर कुछ भी अपेक्षा जिसे है वह अतिथि मात्र भिक्षु है, गृहस्थी की रक्षा करने वाले हम लोगों का महात्माओं का शुभ दर्शन देव का दिया पुरस्कार है[2] । जो मनुष्य गृहाश्रम के सभी सुख दूसरों को न भुगाकर अपने भोगते हैं वे लोकोपकारिणी संस्था के सर्वस्व हड़प जाने वाले महान पापी है । गृहस्थ की कृतार्थता प्रत्येक जीवों की सेवा से ही होती है[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 104
2 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 112
3 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 115

सती धर्म का निरूपण :-

रस पोषण के लिए विविध घटनाओं का वर्णन कवि के कथानक का विस्तार करने में सहायक प्रतीत होते हैं ।

कवि उमापति ने अपने पारिजातहरण महाकाव्य के छठे सर्ग में सती धर्म का निरूपण किया है जो कथानक के विस्तार के साथ साथ कवि के विविधशास्त्रों के ज्ञान को भी प्रकट करता है ।

रुक्मिणी जी भगवान कृष्ण के महत्व का वर्णन नारद से कर रही हैं । सर्वेश्वर भगवान के चरण कमलों की सेवा का अवसर मुझे प्राप्त है तो मैं रुक्मिणी उससे बढ़कर किसी वस्तु को नहीं मानती । पारिजात पुष्प की तो फिर कोई बात ही नहीं । पति के चरण प्रक्षालन जल से अपने को मैं कृतार्थ मानती हूँ । वह रुक्मिणी पति को ही देवता मानने वाली थी । त्रिलोक में जो कुछ भी पुष्पित फलित है वह सभी सतियों के लिये पति सेवा से ही प्राप्त है अतः पति को प्रसन्न करने के अतिरिक्त उन्हें कुछ भी अभीष्ट नहीं है [1] ।

इस संसार में जो भी वस्तुएं अत्यन्त प्रिय है उनमें किसी पर यदि उत्तम स्त्री बाच्छा करती है तो केवल पति की हित कामना से ही । अपने पति से अलग जो स्त्री इस बा सारे जगत को भी नहीं समझती ऐसी सतियों के लिए यह सम्पूर्ण संसार आनन्दमय हो उठता है । जो स्त्री आधे क्षण भी जिसके (पति के) अनुराग से रहित हो नहीं रहती तथा जिससे अलग

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 25

हो जीती हुई भी जो मरी सी रहती है तथा पतिव्रता स्त्री पति के प्रसाद रूप सुखों में स्वर्ग-नरक को भी समान मानती है तथा नित्य अपने पति गति का ही अनुसरण करती है ।

इस प्रकार सती धर्म का निरूपण करते हुये रुक्मिणी नारद से कहती हैं - हे ऋषिवर यह मेरा कथन आत्मा प्रशंसा परक नहीं है यह तो मैंने सतियों की साधारण स्थिति बतलाई है । इसी स्थिति को मैं हर समय निर्विघ्न निभाती रहूँ ऐसी मेरी कामना को आप अपने आशीर्वाद से पूर्ण करें[1] ।

भगवान की स्तुति :-
=============

कवि को इस काव्य को लिखने का एक उद्देश्य ईशस्तुति भी था यह काव्य शान्त रस या भक्ति रस प्रधान काव्य है । अतः काव्य के कई सर्गों में भगवान की स्तुति का वर्णन मिलता है । काव्य के पांचवें, बारहवें, अठारहवें तथा बीसवें सर्ग में भगवान की स्तुति का वर्णन मिलता है ।

नारद के मुख से भगवान कृष्ण की स्तुति है - हे जगन्नाथ संसार के तारने वाले आपके दर्शन मात्र से कृतार्थ होने वाले हमारे प्रति आपके द्वारा यह प्रयोग योग्य नहीं है[2] । सर्वथा पूर्ण होने से निरीह की उपाधि तो आपकी ही हो सकती है । आप स्थूल दृष्टि वालों की दर्शन लालसा पूर्ण करने वाले हैं । हे भगवान ! जन्म आकृति क्रियागुणों से आपका कोई वर्णन नहीं कर सकता है । हे लोकेश ! यह संसार आपकी कृपा के अनुरोध निरोध

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 34

2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 3

के द्वारा सजा हुआ है । आपने संसार में विभिन्न अवतार धारण कर समय-समय पर लोगों के कष्टों का निवारण किया है । जब कभी प्राणियों की क्रियाएं आपकी दृष्टि के लक्ष्य बन जाते हैं तब प्राणी बन्धन रहित मुक्त हो जाते हैं यही उनका मोक्ष है[1]। काव्य के बारहवें सर्ग में गरूड़ के द्वारा भगवान कृष्ण की स्तुति का वर्णन मिलता है । हे परमपूज्य मेरा गरूड़ का शरीर और मन आपसे एक क्षण के लिए भी अलग नहीं है । हे निर्विकार आपकी मानव के रूप में जो चेष्टाएं हैं वह हम लोगों को प्रसन्नता देने वाली हैं आपकी इच्छा से ये सृष्टि हुई है । विभिन्न जन्म लेकर आप इस संसार को प्रकाशित करते हैं । यह व्यापक वाङ्‌मय आपके गुण जाति कर्म की शुद्धता से प्राप्त है[2]। हे ईश्वर आप प्रतिदिन नए जगत का निर्माण करते हैं तथा उसका विस्तार करते हैं । हे भगवन ! आप प्रतिदिन नए जगत का निर्माण करते हैं तथा उसका विस्तार करते हैं । हे भगवन् आपकी सम्पूर्ण चेष्टाएं समान लोक की प्राप्ति से है । तुम्हारी अपनी इस लोक में कोई इच्छा नहीं है जैसे दीप स्वयं प्रकाशित होकर वस्तु को दिखाता है उसी प्रकार तुम स्वयं प्रकाशित होते हैं । हम लोगों का आपसे अलग कोई अस्तित्व नहीं है ।

युद्ध के वैषम्य की शान्ति के लिये भगवान् कृष्ण स्वयं भगवान शिव की स्तुति करते है ।

"प्रतिमील्य लोचन पयोजयोर्द्वयं हृदि,
हृष्टसाम्यबचरणामब्जयो र्न्यधात् ।
अथ तुष्टुवेऽलुरति गद्गदाक्षरं भगवन्[3]।
प्रसीद विषमैं सुसिद्धये ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 21
2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादशसर्ग - 45
3 पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टादश सर्ग - 5

काव्य के विंश सर्ग में भगवान कृष्ण की स्तुति का वर्णन किया गया है ।

हे ईश्वर अनेक अवतारों से क्रीड़ा करने के लिए न दिखाई देने वाले भी दिखाई पड़ने वाले दृश्य स्वरूप होते हुये भी ज्ञान के धाम के रूप में आपकी आत्मा होती है । हे ईश तुम्हें नमस्कार है[1] ।

हे जगत् का जालन करने वाले प्रलय काल में अपनी कोख में सम्पूर्ण विश्व को एकत्र करने वाले हो हे ईश तुम्हें नमस्कार है । आप ब्राह्मण, देवताओं सभी के दुःख का नाश करने वाले हैं ।

मुनि नारद के मुख से इस गीत स्त्रोत को सुनकर अभय की मुद्रा धारण करने वाले कृष्ण बोले - मेरी स्तुति पढ़ने वालों को अभय निश्चित हो जाता है[2] ।

द्वारिका वर्णन से प्रारम्भ :-

कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाव्य का प्रारम्भ द्वारिका वर्णन से हुआ है । वस्तु वर्णन के द्वारा कवि अपने काव्य की कथा का विस्तार करता है ।

समुद्र रूपी अपने वस्त्रों को संवारती देदीप्यमान भूषण रूप रत्नों को धारण कर मेघों को अपना केशपाश बनाती हुई, यह द्वारिकापुरी एक असाधारण नायिका के वेश को धारण करती थी, ऐसी पुरी का भगवान् कृष्ण

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - विंशसर्ग - 30

2 पारिजातहरण महाकाव्य - विंशसर्ग - 35

शासन करते थे । इसमें गगन चुम्बी अट्टालिकायें थीं । यह समस्त ऐश्वर्यों को धारण करने वाली थी । विविध रत्नों की विचित्र प्रभा से युक्त थी एवं इसकी दीवारें बहुत ही प्रकाशमान थी ।

संसार में औषधि मार्ग तथा मन्त्रों का प्रभाव सर्वोत्तम माना गया है इसी पुरी में वह साधारणतः सभी को प्राप्त है । यह पुरी राजमार्ग विश्रामस्थल तथा चौराहों से युक्त है इसके जलयन्त्रागार में चक्राकार नाचते हुये फव्वारों पर शरद्घन के भ्रम से मयूर तथा मोती के आकार की बूँदों के भ्रम से चातक इसे सदा घेरे रहते हैं । इसमें मनोहर बावड़ी और सरोवर सुशोभित होता है । इस पुरी में कहीं क्रीड़ा पर्वत सुशोभित होता है, जो बहुत ही ऊँचा है ।

द्वारिका पुरी के बाजार का भी काव्य के प्रथम सर्ग में वर्णन किया गया है । इस पुरी में उत्कृष्ट कलामर्मज्ञ शिल्पी है जो विविध वस्त्रों का निर्माण करते हैं यहाँ कि विशाल सड़कों पर नाना प्रकार के रथ निरन्तर दौड़ते हैं यहाँ के वन उपवन की शोभा देखते ही बनती है । इस पुरी के देखते ही देवता लोग भी अपना अमरता पर घृणा करते हैं । इसके दर्शन से पापों की राशि भी विलीन हो जाती है ।

द्वारिका पुरी के राजमहल का वर्णन काव्य के प्रथम सर्ग में किया गया है । राजमहल में कहीं युवक वृन्द का क्रीड़ा कौशलादि व्यवहार चल रहा है । कहीं कोलाहल पूर्ण गान हो रहा है । कहीं अप्सरायें नाच रही हैं । कहीं कौंसिल सजी बैठी हुई है । कहीं यज्ञ हो रहे हैं । कहीं यहाँ के अन्तःपुर में अपार सौन्दर्य ललनायें हैं । यह राजमहल बहुत ऊँचा है तथा स्वच्छ शीशों से जड़ा है और देवताओं से सेवित है । सैंकड़ों रत्नमय वेदियों से भूषित तथा सुधर्मा नानक देवसभा मण्डप से जो सुसज्जित है ।

इस प्रकार "सर्वथा स्वाधीन और समस्त जगत् के नियन्ता सर्वेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने मनु सम्बन्धिनी समस्त सम्पत्ति को उपाधि रूप में धारण कर भूतल को कंस आदि दानवों के विनाश द्वारा स्वस्थ कर अपनी बसायी कुशस्थली द्वारिका को सभी सुखों से पूर्ण कर दिया[1]।

इस प्रकार काव्य के प्रथम सर्ग में चौंसठ श्लोकों द्वारा द्वारिकापुरी के वर्णन द्वारा कवि ने अपने काव्य में घटना का विस्तार किया है ।

यज्ञ का वर्णन :-
=========

पारिजातहरण महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में रुक्मिणी के द्वारा किए गए यज्ञ का विशद-वर्णन किया गया है ।

यज्ञ का वर्णन कवि ने अपने काव्य में घटना का विस्तार करने के लिए किया है तथा अपने श्रुतिज्ञान सम्बन्धित पाण्डित्य को प्रदर्शित किया है ।

वैदिक ब्राह्मणों को बुलाकर शास्त्र के अनुसार कुण्ड, मण्डप, वेदिका आदि बनवाए, कारीगरों द्वारा यज्ञ मण्डप सजाया गया । भगवान कृष्ण की पत्नी रूक्मिणी के व्रतोद्यापन के लिए प्रस्तुत सामग्रियों से सजा सारी कल्याण कामना का एक आधार वह स्थल त्रिलोक के ऐश्वर्य का अतिक्रमण कर रहा था ।

यज्ञ को ही इष्ट कहते हैं[2]। अतः यह इष्ट कर्म मनमाने ढंग से नहीं होने चाहिए अपितु उसके विधान साधन शास्त्रोक्त हैं । इच्छा विषय होने से सुख को भी इष्ट कहते हैं । उन शत-शत सुखों को यह यज्ञ ही फलते हैं ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 1

2 पारिजातहरणं महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 36

द्विष्ट कर्म जो निषिद्ध है, वह अनिष्ट फल देते हैं । इष्ट सुख प्राप्ति के लिए विद्वान यज्ञों को ही अपनाते हैं क्योंकि अनृतः कर्मों के द्वारा ही संसार की गति नियमित है कर्म स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार के होते हैं[1] ।

स्थूल कर्मों का फल प्रत्यक्ष होता है तथा सूक्ष्म कर्मों का फल प्रत्यक्ष नहीं होता कर्म ऐहिक आमुष्मिक नाम से भी दो है[2] । इस शरीर के लिए ऐहिक तथा आत्मा के लिए आमुष्मिक कर्म है ।

यज्ञ प्राणी के दीर्घ जीवन को बढ़ाता है । यज्ञ से ही उत्पन्न अदृष्ट रूप व्यापार उसकी उस समय रक्षा करता है और समय पर फल प्राप्ति होती उसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । केवल प्रत्यक्ष फल पर ही विश्वास रखने वाले मनुष्य मूढ़ होते हैं । ऐसा जानकर ही शास्त्रीय विधि वाक्यों द्वारा बोधित देवताओं की तृप्ति चाहती हुई रुक्मिणी यज्ञ में तत्पर हुई क्योंकि उसी को अमृत कहा गया है[3] । अमृतन्नामयत् सन्तोमन्त्र जिह्वेषु जुहृति ।

इस प्रकार रुक्मिणी के द्वारा किए गए यज्ञ का विशद वर्णन कवि ने अपने काव्य की कथा को विस्तृत करने के लिए किया है । यज्ञ का वर्णन कवि कल्पित नहीं है बल्कि शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 4।
2 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 4।
3 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 5।

पारिजातहरण महाकाव्य में मोक्ष पुरुषार्थ:-

काव्यों में किसी एक रस की प्रधानता के साथ किसी एक पुरुषार्थ की भी प्रधानता होनी चाहिए । अन्य पुरुषार्थों की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि केवल एक में आसक्त व्यक्ति को जघन्य कहा गया है[1] ।

कुछ शान्त रस प्रधान काव्यों में मोक्ष पुरुषार्थ भी प्रधान रूप से व्यक्त किया गया है - जैसे महाभारत में । पारिजातहरण महाकाव्य भी शान्त रस प्रधान काव्य है । उसमें भी मोक्ष पुरुषार्थ की प्रधानता है । कवि उमापति एक आस्तिक और भक्त कवि थे । इनके काव्य में कई सर्गों में ईशस्तुति की गई है । काव्य के प्रथम सर्ग में मोक्ष पुरुषार्थ के वर्णन की सूचना दी गई है - मोक्ष देने वाली सप्तपुरियों में मोक्षोत्पादन में यह मुख्य द्वार है[2] ।"

लौकिक सुखों का उपभोग कर मानव अलौकिक सुखों (मोक्ष) की प्राप्ति यहाँ पर कर लेता है[3] ।

इस संसार के सभी जीव जब आप भगवान कृष्ण की दृष्टि के लक्ष्य बन जाते हैं तब सभी बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं अर्थात मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं ।

---

1 ध्वन्यालोक - चतुर्थ उद्योत

2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 38

3 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 39

पारिजात वृक्ष का आहरण :-

कवि उमापति का पारिजातहरण महाकाव्य लिखने का मुख्य उद्देश्य यही पारिजात वृक्ष का आहरण ही था ।

भगवान कृष्ण ने अपने वाहन गरूड़ से उतरकर पुत्र और पत्नी सहित उस द्रुमेन्द्र पारिजात की परिक्रमा की और हृदय से उसका अभिनन्दन किया तथा मन्त्र विधि से बुलाकर उस वृक्ष को नन्दनवन से उखाड़ लिया । उस वृक्ष के साथ भगवान के हाथ में विभूति भी चली गई । उत्सव प्रदान करने वाला वह वृक्ष ही मानो चिड़िया की बोली में बोला - एक की जय और एक की पराजय हो रही है[1] । आकस्मिक अद्भुत गरूड़ के उतरने पर विचित्र अनुचिन्तन लोगों में हुआ और प्रिय हरि भगवान कृष्ण का दर्शन भी हुआ । जितने नन्दन वन के अधिकारी थे वे सब स्तब्ध रह गए और जड़ के समान सब देखते रह गए ।

उस कामरूप दिव्यतरू को अपने वाहन गरूड़ के पृष्ठ पर चढ़ाकर कृष्ण ने कृतकृत्य होते हुये अपने शंख को बजाया और इन्द्र के दर्प के अपहार को जताने वाले तेज से युक्त शंख की ध्वनि को किया ।

"तङ्कामरूपमथ दिव्यतरूंस्ववाह पृष्ठेऽधिरोप्य कृतकृत्य इवेन्दिरेशः,
दध्मौ द्रुतं दरवरं स पुरन्दरस्य दर्पापहारपरिबुद्धतरस्वनं द्राक् ।"[2]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचदश सर्ग - 75
2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचदश सर्ग - 77

इस प्रकार पारिजातवृक्ष का आहरण कवि का काव्य लिखने का यह मुख्य प्रयोजन सिद्ध होता है ।

सत्यभामा के घर में पारिजातवृक्ष का आरोपण
-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-

युद्ध के अन्त में कृष्ण की विजय होती है और उनको पारिजातवृक्ष उपहार रूप में प्राप्त होता है । अन्त में सत्यभामा के घर में उन्होंने पारिजातवृक्ष को आरोपित कर दिया । कवि के काव्य लिखने का एक प्रयोजन यह भी था । अन्त में कवि उमापति का यह प्रयोजन सिद्ध होता है ।

भगवान् कृष्ण जब उपहार रूप में पारिजातवृक्ष को लेकर स्वर्ग से अपने पुत्रों और प्रिय सत्यभामा के साथ द्वारिका पुरी लौटते हैं तब कृष्ण का स्वागत करने के लिए वह द्वारिकापुरी बहुत उत्कंठित थी । दूर से ही शंख बजने लगे । जैसे पूर्ण चन्द्रमा सागर की तरंगों से प्रत्युत्गमन करता है वैसे ही पुरी के लोग प्रसन्नमुद्रा में प्रगट हो गए । कृष्ण के प्रत्युत्गमन के लिए आगे बढ़ गए । तब सम्पूर्ण लोगों की प्रसन्नता को बढ़ाता हुआ परिवार की श्रद्धा से ढोया जाता हुआ सब प्रकार से बारी-बारी पूजा की गई । द्वारिकापुरी के प्रत्येक सदन उस समय अतुलनीय सुगन्ध वाले तथा पानी से सिक्त मार्ग वाले थे । प्रत्येक सदन के गवाक्षावा और पुष्पों से युक्त थे । सभी नगरवासी बहुत प्रसन्न थे । इस प्रकार प्रसन्न होते हुये कृष्ण धीरे-धीरे आगे बढ़ गए ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 3

सभी नगरवासी अमरतरू पारिजातवृक्ष को देखने के लिए उत्सुक होते हुए संघर्ष करने वाले सुगन्ध रूप से मोह में पड़ गए । तात्पर्य यह है कि उस समय भीड़ बहुत ज्यादा थी । इस प्रकार भगवान कृष्ण सत्यभामा के साथ उनके घर पहुँच गए । कृष्ण सत्यभामा से बोले - हे चन्द्रमा के समान मुख वाली । यह पारिजातवृक्ष श्रम से लाया गया है और यह देवता की भूमि का आभूषण तुम्हारी नगरी में लाया गया है । इस वृक्ष को आज तुम्हारे सदन के एक भाग में आरोपित करता हूँ[1] ।

इति हि भगवती सा मन्त्रिता वल्लभेन,
प्रणयपुलकिता तत्पाणिपद्मेन नीत्वा ।
निजबलनिकेतस्यांगने मंगलेन
मंगलेन प्रियकरगकराब्जा रोपयामासरम्ये ।[2]

इस प्रकार कवि का काव्य लिखने का यह पारिजातवृक्ष का आरोपण यह प्रयोजन सिद्ध हुआ ।

दार्शनिक विचार-धारा :-
================

कवि उमापति विभिन्न दर्शनों में पण्डित थे । सांख्य का विशेष रूप से वर्णन स्थान-स्थान पर पारिजातहरण महाकाव्य में किया गया है । अतः स्थान-स्थान पर विभिन्न दर्शनों के माध्यम से कथानक का विस्तार करना कवि के लिये उचित ही है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 12
2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 13

पारिजातहरण महाकाव्य में सांख्य के तीनों प्रमाणों[1] (प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम) का उल्लेख किया गया है तथा तीनों गुणों सत्व, रजस्, तमस्[2] का भी उल्लेख किया गया है । सांख्य की वह त्रिगुणात्मिका प्रकृति त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित हो रही है[3] ।

काव्य में प्रकृति पुरुष के संयोग के बारे में इस प्रकार कहा गया है, ऐसा ज्ञात होता है कि यह एक ओर संसार की प्रकृति जन्य मलिनता ही यमुना है और दूसरी ओर उस परम पुरुष की श्वेत विभूति ही गंगा है उसके पदारविन्द की प्रेमिका यह सरस्वती नामक इन दोनों को संहित कर एक में मिला रही है[4] ।

काव्य में रुक्मिणी को प्रधान मूल प्रकृति कहा गया है और नारायण की आठ पटरानियों को सांख्य शास्त्र प्रतिपादित आठ प्रकृतियों के समान कहा गया है[5] ।

"सांख्य शास्त्र वालों के मत से अनादि सिद्ध चेतन निर्लिप्त पुरुष ईश्वर है जड़ात्मिका, त्रिगुणमयी उसकी प्रकृति ईश्वरीय चैतन्य से विम्बित हो संसार की गुण दोषमय सृष्टि करती है । इसलिए निर्लिप्त चेतन पुरुष के अंशों से उत्पन्न हम पुरुषों का उन स्त्रियों के अधीन विलास केवल बन्धन ही होता है क्योंकि शुद्ध ब्रह्म ही प्रकृति प्रतिच्छिन्न हो बद्ध जीव बन जाता है[6] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 43
2 पारिजातहरण महाकाव्य - दशमसर्ग - 13
3 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 45
4 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 44
5 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 45
6 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादशसर्ग-72

पारिजातहरण महाकाव्य - में न्याय वैशेषिक सिद्धान्तों का यत्र तत्र उल्लेख मिलता है । काव्य में कहा गया है कार्य बिना कारण नहीं हो सकते । कार्य से कारण का अनुमान होता है जैसे घड़े से कुम्हार का इस अनुमान से कारणी भूत आपकी चेतनात्मक सत्ता की प्रतीति कैसे मिटाई जा सकती है[1]।

कारण व्यापार के पूर्व भी कार्य कारण में विद्यमान रहता है क्योंकि असत् या अविद्यमान होने पर कार्य की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती । पारिजातहरण महाकाव्य में कहा गया है कि उपर्युक्त कारणों से किसी भी कार्य के कारणों की लघुता या गुरूता जीव के चित्तगत बोध का अनुसरण करती है[2]।

वेदान्तियों के सिद्धान्त का भी उल्लेख पारिजातहरण महाकाव्य में किया गया है । काव्य में अद्वैतता को सिद्ध करने के लिए बताया गया है कि अविचल प्रेम में अतात्त्विक बाहरी व्यवहारों का क्या सम्बन्ध है क्योंकि सत् ब्रह्म्म जो सबसे निरपेक्ष है उसका भी अद्वयत्त्वेन ज्ञान, अविधामूलक अज्ञान से अन्यथा भासमान, अतथ्य प्रपंचमें बाधित ज्ञान उत्तर अध्यवसाय, निश्चयात्मक ज्ञान में ही प्रमाणित होता है । तात्पर्य यह है कि जैसे रज्जु में सर्प ज्ञान भ्रमात्मक है इसी प्रकार अद्वितीय ब्रह्म्म में सारा द्वैत प्रपंच भ्रमात्मक है । इसमें यदि रज्जु ज्ञान भी अद्वय ब्रह्म्म में असत्य है तो विषम उदाहरण है अन्यथा उसकी अद्वैतता कैसे सिद्ध होगी[3]।

पारिजातहरण महाकाव्य में कहा गया है कि "पंचकोषात्मक ब्रह्म्म निरूपण में प्रतिपादित अन्नमयकोष को प्रचुर मात्रा में उत्पन्न करते हैं[4]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 7

2 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 64

3 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तम सर्ग - 38

4 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 20

वेदान्तियों को माया के कारण जगत् में बाह्यत: भेद दिखाई पड़ता है जैसे एकाएक ज्ञात हो पड़ी समता के कारण रस्सी में उदित हुई सर्पबुद्धि किसी की भी हो सबके लिए भ्रान्ति ही है[1]।

काव्य में कृष्ण को मायावी कहा गया कृष्ण की माया तो विख्यात ही है । कृष्ण को काव्य में एक स्थान पर निर्लेप अद्वैत बताया है । ऐसे चित्त स्वरूप परमात्मा में तो वास्तविक विशेष विभाग ही नहीं है वह तो निर्लेप अद्वैत है[2]। पारिजातहरण महाकाव्य में वेदान्त की पंचीकरण प्रक्रिया तथा उसके बाद होने वाली भौतिक सृष्टि का भी वर्णन किया गया है ।

पारिजातहरण महाकाव्य में सभी दर्शनों का वर्णन एक ही श्लोक में करके कवि उमापति ने अपने अद्भुत पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है । काव्य के षष्ठ सर्ग में रुक्मिणी को सांख्य मत वाले प्रकृति कहते हैं, वेदान्ती चिद्ब्रह्म बतलाते हैं, वही माया भी कहकर प्रपंचित करते हैं । मीमांसक तुम्हें क्रिया कहते हैं । योगदर्शन वाले सिद्धि मानते हैं । तार्किक बुद्धि इच्छादि ईश्वर के गुणों में गिनकर गुणात्मक बुद्धि रूप में देखते हैं । पौराणिक परमेश महिषी परामबा कहते हैं[3]।

इस प्रकार विभिन्न दर्शनों का वर्णन कवि की अद्भुत प्रतिभा का द्योतक है तथा साथ ही कथानक के विस्तार में भी सहायक हुए हैं ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादशसर्ग - 77

2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादशसर्ग - 37

3 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 41

समय - समय पर ईश्वर का अवतार :-

कवि उमापति अवतार वाद को मानने वाले थे । विभिन्न पुराणों में भगवान के अवतारों का वर्णन मिलता है । समय समय पर जीवों के कष्टों के निवारण हेतु भगवान ने विभिन्न रूपों में इस धरती पर अवतार लिया है ।

"भगवन ! आपकी ऐहिक लीला भी प्राकृतिक नियमों से रहित सर्वथा स्वतन्त्र है अतः आपका सर्वोत्तर प्रभुत्व लौकिक व्यवहारों में भी छिप नहीं सकता । आपने मछली बनकर वेदों का उद्धार किया, कछुआ हो पृथ्वी को पीठ पर धारण किया, सूकर हो पृथ्वी को फैलाया, बनकर हिरण्यकशिपु जैसे अजेय दैत्य को मारा, कपटवामन बन त्रिलोक को दो पग में ही नाप लिया[1] तपस्वी ब्राह्मण का अवतार धारण कर बहुत बढ़े क्षत्रिय राजमण्डल को प्रमाणित किया फिर स्वयं क्षत्रिय राम होकर अपने ही अवतार उस परशुराम को पराजित कर ब्राह्मण कुलोत्पन्न लोक विजयी दशमुख रावण को समूल उखाड़ डाला । आज इस अवतार में भी हाथ से उठाए छत्र के समान पर्वत (गोवर्द्धन) को धारण करने वाले, बचपन में आप प्रतीत करा चुके हैं कि आप किसी प्राकृत नियम के पराधीन नहीं[2] ।

अवतार ऐश्वर्य अत्यन्त अलक्ष्य नहीं रहा, इतने पर भी यदि जीव अपने उद्धारार्थ आपकी शरण न आएं तो आपका क्या दोष है । यही आप के अवतारों का रहस्य है । आप बड़े-बड़े लोकोत्तर बलवान् हिरण्याक्ष आदि दैत्यों को गर्वित कर निजी अवतारों से खेलते हुए उन्हें मिटा देते हैं[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 11

2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 12, 13

3 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 14

इन्द्र नारद से भगवान् कृष्ण के अवतारों के विषय में बताते हुये कहते हैं :- पहले ही पृथ्वी पर अवतार लेते समय सब देवताओं को मनुष्य योनि में भेज दिया । पहले ही अवतार के समय जिस जननी के पेट में रहे उसे ही भानुमती का पिटारा बना रखा था पेट में आते ही इन्द्र जाल आरम्भ कर दिया[1] ।

ऋषि कश्यप भगवान् कृष्ण की स्तुति करते हुये उनके अवतारों के बारे में बताते हुये कहते हैं :- आप कृष्ण ने अवतार लेकर देवताओं के दुःख को दूर किया[2] ।

गदा, पद्म, शंख, चक्र से मीनादि अनेक अवतारों से क्रीड़ा करने के लिए न दिखाई देने वाले भी दिखाई पड़ने वाले दृश्य स्वरूप होते हुये भी ज्ञान के धाम के रूप में तुम (कृष्ण) की आत्मा होती है तुम्हें नमस्कार है । शेषनाग के फन पर शयन है जिसका, अपनी नाभि से उत्पन्न ब्रहम्मा, ब्रहम्मा से उत्पन्न जो तेज है, वह तेज तुम्हारा (भगवान कृष्ण का) है, अनवस्था पृथ्वी में भुखमरी बाढ़ आदि) रूपी गृह से ग्रस्त भू भार की धारा के लिये कूर्मावतार धारण करने वाले माया के तुम आश्रय हो[3] ।

इस प्रकार भगवान् के अवतारों का वर्णन स्थान-स्थान पर इस परिजातहरण महाकाव्य में कवि ने किया है । यह अवतारों के वर्णन कथानक के विकास में सहायक हुए हैं ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 47, 48

2 पारिजातहरण महाकाव्य - विंश सर्ग - 3

3 पारिजातहरण महाकाव्य - विंश सर्ग - 30, 31

श्लेष की प्रधानता :-

काव्य में श्लेष की प्रधानता है । काव्य के कई श्लोक श्लेष में लिखे गये हैं ।

एक उदाहरण जिसमें युग्मक से शरद ऋतु और सत्यभामा का श्लेष किया गया है :-

" इस समय कोप रूप तम को हटाकर प्रसन्न हुई ‹ शरद ऋतु घने अन्धकार को हटाकर निर्मल हुई › जड़ी भूत अभिप्रायों को स्वच्छ कर दिखाती हुई दु:खावस्था रूप पंक को सुखा देने से जिसके व्यवहार मार्ग शोभन हो गए हैं ‹शरद ऋतु - बुरे ढंग का पंक सुखा देने से जिसके मार्ग शोभन हो गए हैं ऐसी खिलते कमल रूप मुख वाली सारसों हँसों की बोल से रमणीय बिना श्रेणी के इधर उधर छिटके मेघों से शोभित होने वाली › आशाओं में स्फुरण लिए ‹शरद ऋतु दिशाओं में स्फुरित सत्ता वाली› तुम सत्यभामाशरद ऋतु के समान हमें आक्रमण के लिये ‹शरद-विजय यात्रा के लिये› प्रेरित कर रही हो[1] ।

कवि की सूक्तियां :-

सूक्तियां कवि की प्रतिभा की द्योतक होती हैं । सूक्तियों का वर्णन करके कवि ने अपनी विद्वता का परिचय दिया है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - नवम सर्ग - 50, 51

आमोदिनी सुन्दर गन्धवाली सरसभावों के विकास से रमणीय अथवा सरस स्वभाव तथा विकास से मनोहर, सन्दर्भ शुद्धि, पद विन्यास की स्वच्छता पक्ष में सम्यक् ग्रथन की सुरीति तथा पूर्ण रूपेण पुष्ट माधुर्यादि गुण, सूत्र से युक्त, प्रसाद वाली भली भाँति अलंकृत तथा संस्कार से शोभित माला के समान आपकी यह वाणी हृदय में रख लेने से किसकी श्री को नहीं बढ़ा देगी[1]।

इस आपकी वाणी ने औचित्य का त्याग कहीं नहीं किया है। व्याज रहित भाववाली तथा रमणीय पदविन्यास वाली, आडम्बर शून्य सरस शब्दों वाली, आसक्ति आदि सामर्थ्य से शोभित उत्तम कुलीन अंगना की तरह यह किसको मान्य नहीं[2]।

शुद्ध, दोषरहित, अभिधेय वाच्य अर्थ के प्रतिपादन में बलगी, प्रपंच विस्तार से रहित अत्यन्त निर्मल आन्तर बोध के ऐश्वर्य को फैलाए हुई, बिना सन्देह के प्राप्त सिद्धि द्वारा शुभ लाभवाली यह वाणी वपस्विनी के समान है[3]।

पारिजातहरण महाकाव्य में स्थान-स्थान पर अनेक सुभाषितों का प्रयोग हुआ है। यह कवि के काव्य लिखने की शैली है तथा ये कथानक के विस्तार में भी सहायक हुई हैं।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 57
2 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 58
3 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 59

काव्य के चतुर्थ सर्ग में गृहस्थ धर्म का निरूपण किया गया है उसमें बताया गया है - अतिथि सेवा से बढ़कर गृहस्थ का दूसरा धर्म ही नहीं है। कुटुम्बियों को महात्माओं के दर्शन से बढ़कर दूसरी वस्तु कमनीय नहीं होती। प्रस्ताव के बिना सन्तों का अनुग्रह किसी पर नहीं होता[1]।

अमृत लाभ को ही स्वर्ग की विशेषता बताया गया है[2]। इस काव्य में अनेकों अर्थान्तरन्यासों का प्रयोग सुभाषितों के रूप में हुआ है :-

पंख निकल आने पर चींटी कभी चन्द्रबिम्ब को चूमती है[3]। लक्ष्मी का यह स्वभाव होता है कि बड़े विज्ञों को भी हठात् मोह में डाल देती है[4]।

चंचल भंवरों को देखकर यह अनुमान लगाया कि काली कान्ति वालों की रीति ही रस विषय में सदा उल्टी ही रहती है[5]।

भगवान कृष्ण सत्यभामा को मनाते हुए कहते हैं - भला घर के कोने में मिलते मधु के लिये दुर्गम गिरि शिखर पर चढ़ना किसको उचित है[6]। अनावृष्टि के कारण सूखते रस वाली खेती में जैसे इच्छानुसार पानी बरस गया। सत्यभामा लहलहा उठी[7]। विद्या {शास्त्र ज्ञान} प्रभुता तथा उद्यम से नीतिज्ञों

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 104-107
2 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 119
3 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 22
4 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 31
5 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तम सर्ग - 33
6 पारिजातहरण महाकाव्य - नवम सर्ग - 23
7 पारिजातहरण महाकाव्य - नवम सर्ग - 43

की सर्वतः कार्यसिद्धि मानी जाती है । सज्जनों की रक्षा करने वाली मानवता बुद्धि को भूषित करती है इस बुद्धि को पूर्ण रूप से परिशीलित शास्त्र शोभित करता है उस शास्त्र ज्ञान को अलंकृत करने वाला नय, नैतिक व्यवहार है । उसका भी भूषण उत्तम विवेक तथा विवेक को भी पराक्रम रूप गुण सजाता है और उसे भी विनय शोभित करता है जिसका विचार स्त्री की सम्मति का अनुगामी है वह पुरुष सिद्धि की अभिलाषा कैसे करता है क्या कभी अन्धकार के साथ दिन श्री रह सकती है । स्त्री से जित पुरुष का जन्म व्यर्थ बताया गया है[1] और तथ्य ज्ञान से गिरे हुये ऐसे पुरुष की पद पद में भ्रान्तियां होती हैं[2]। जैसे पित्त बढ़ जाने से जिनकी आँखों में पियरी छा जाती है उसकी दृष्टि में संसार ही पीला दिखाई देता है[3]।

अपने अधिकार की सीमा के भीतर जो उद्योग करते हैं । वे लोग तो प्रशंसनीय गुणों से युक्त सिद्धियां प्राप्त करते हैं किन्तु जो अधिकार सीमा का लंघन करने वाले बुद्धिहीन हैं वे अर्थ तथा परमार्थ से भी च्युत हो जाते हैं । पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त करे भी जिसने विवेक का अर्जन नहीं किया ऐसे पुरुष से क्या लाभ है यदि समुद्र की क्षारता नहीं निकली तो वह भरा रहकर भी क्या किया[4] ।

इस प्रकार कवि की यह सूक्तियां उनकी प्रतिभा की द्योतक सिद्ध होती है तथा साथ ही कथानक के विकास में भी सहायक हुई हैं ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 67, 71

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 77

3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 78

4 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 65, 66

यथास्थान प्रकृति वर्णन :-

पारिजातहरण महाकाव्य में यथास्थान प्रकृति वर्णन किया गया है । यथा स्थान प्रकृति का वर्णन काव्य के कथानक का विकास करने वाला होता है । यज्ञ के लिए रैवतक पर्वत पर जाने पूर्व प्रभात वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक है । रैवतक की यात्रा में मध्य में समुद्र पड़ता है जिसका वर्णन करके कवि ने अपनी अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया है । अपनी मुस्कराती दृष्टि पड़ने से बड़े आनन्द में उठती उत्ताल तरंग मालाओं से युक्त, उस अनन्त जलराशि वाले समुद्र को यह भगवान् भी गिरि शिखर से सानन्द देखने लगे[1] । उस समुद्र में कहीं लहरें उठ रही हैं, कहीं मछलियां तैर रही हैं, कहीं बडवानल उठ रहा है । गम्भीर ध्वनि के बहाने स्तुति पाठ करता समुद्र भगवान् कृष्ण के प्रति साष्टांग प्रणत सा दिखाई दे रहा था[2] ।

यह समुद्र स्वच्छन्द धीर एवं गम्भीर रूप में सारी पृथ्वी को चारों ओर से घेरकर स्थित है । इस समुद्र में रंग-बिरंगे रत्न है एवं जल - जन्तुओं से युक्त है ।

अपने वंश के मूल पुरुष चन्द्रमा तथा प्रिया लक्ष्मी के पिता होने से उस पुरातन पयोनिधि को भगवान् ने अत्यधिक हर्ष से सम्मानित किया[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 67
2 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 79
3 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 7

पूर्वजों की पूजा प्राप्त करने वाला ये समुद्र विशेष रूप से श्लाघनीय है । पथिप्रसंग में प्रयागगंगा का तथा त्रिवेणी का वर्णन पारिजातहरण महाकाव्य में बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है । कहीं तो मनोहर जल प्रवाह वाली मन्दगति से बह रही थीं, कहीं इसकी गम्भीर ध्वनि हो रही थीं, कहीं उतावली सी लहरें उछाल रही थीं । मानो गंगा से मिलने के लिये अटूट उत्साह भरती जा रही थीं[1] जिस प्रयाग में यह देव नदी गंगा, कलिन्द पुत्री यमुना तथा इस सरस्वती से संगत हो त्रिवेणी रूप में अनन्त महात्म्य युक्त अपूर्व शोभा धारण कर रही हैं[2]। नील तरंगों वाली यमुना, लालरंग वाली सरस्वती तथा श्वेत वर्ण वाली गंगा सुशोभित हो रही है । इस त्रिवेणी की प्रभा के समान कोई मिश्रित प्रभाजगत् में नहीं है ।

प्रकृति जन्य मलिनता को यमुना तथा परम पुरुष की श्वेत विभूति को गंगा और इन दोनों को संहित करने वाली सरस्वती कही गई है । ये एक ही त्रिदेव की त्रिगुणात्मक शक्ति है जो त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित हो रही है ।

काव्य में विभिन्न रूपों से त्रिवेणी को नमस्कार करके उसके सौन्दर्य का वर्णन किया गया है —"नेत्र के नीचे के भाग से श्वेत तथा एक देश से लाल, भ्रमर के समान नील कनीनिका पुतली वाली ईश्वर की दृष्टि रूपिणी इस त्रिवेणी को नमस्कार है । कस्तूरी मिले केशर के पंक रूप अंगराग से भीगा भूमिका पयोधर पट के समान शोभमान इसकी मैं{नारद}वन्दना करता हूँ[3]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 38
2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 41
3 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 49, 50
~~4 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 58~~

भगवान कृष्ण की उपमा त्रिवेणी से करते हैं - भगवान के लाल ओंठ जैसे सरस्वती हो उनके दांत जैसे गंगा हो तथा उनका नीलवर्ण शरीर जैसे यमुना हो । यह त्रिवेणी मानो तीनों वेदों की त्रयी है । इससे पृथक कोई पावन वस्तु नहीं है तथा इससे बढ़कर अपूर्व रूप वाली कोई वस्तु नहीं हैं । इसके अतिरिक्त कोई मनोहारी नहीं है[1] ।

पारिजातहरण महाकाव्य में त्रिवेणी का प्राकृतिक वर्णन भी किया गया है - ये त्रिवेणी कहीं उज्ज्वल कान्ति से विलसित, कहीं मूंगे के समान कान्तिवाली, कहीं तरंग तमाल की सी नील शोभा युक्त, खेलते हंसों से शोभित है तथा टेढ़ी रेखा वाले शैवाल जालों से जटिल अन्तर्जल राशि वाली है[2] ।

सत्यभामा को साथ लिए भगवान कृष्ण पर्वत पर चढ़ते हैं, उस समय कवि ने और शरद ऋतु का अत्यन्त ही मनोहारी वर्णन किया है । कवि का यह वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक प्रतीत होता है । कवि ने वस्तुतः यह वर्णन घटना का विस्तार करने के लिये ही किया है ।

कवि ने शरदऋतु के वर्णन में सत्यभामा तथा शरदऋतु का श्लेष किया है - हे प्रिये ! इस समय कोप रूप तम को हटाकर (घने अन्धकार को हटाकर) प्रसन्न हुई (निर्मल हुई) श्र आशाओं में विस्फुरण लिए (दिशाओं में स्फुरित सत्ता वाली (तुम) सत्यभामा) शरदऋतु के समान हमें आक्रमण विजय यात्रा के लिए प्रेरित कर रही हो[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 58

2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 62

3 पारिजातहरण महाकाव्य - नवम सर्ग - 51

भगवान कृष्ण सत्यभामा को शरदऋतु की विशेषताएं बताते हुए कहते हैं- यह शरद की स्वच्छ जल वाहिनी नदी एकलरी मुक्तामाल का अनुकरण कर रही है । श्वेत अम्बर वाली, हंसों की गति संचार से प्रसन्न श्रृंगार हार के पुष्प समूह से मनोहर छटा वाली शरद ऋतु उदित हो रही है । रंग बिरंगे कमल पुष्पों से सजा कहीं जिसमें चमकती मछलियाँ उछल रही हैं । कहीं रंग बिरंगे जल विहंगम पत्ते झूल रहे हैं । इस प्रकार शरदऋतु की विशेषताएं लिए सरोवर सुशोभित हो रहा है । प्रत्येक सरोवरों में खिले हुये कमल रूप सजाए आसनों पर मानो शरदऋतु के गुणों को देखने के लिये परम शोभा का समाज निकल कर बैठा हुआ है[1] ।

कवि का बसन्त वर्णन बहुत ही स्वाभाविक और मनोहर है । बसन्त भी पृथ्वी में रमण करने के लिए भगवान विष्णु के साथ हो गया । भगवान कृष्ण ने इस पृथ्वी लोक में ऋतुराज बसन्त के लिए पूरे लोक पर अधिकार करके नवरसों से रमणीय जो मानव की चेतना है उसको संचालित कर दिया[2] । बसन्त ऋतु में सब लोगों ने पीताम्बर धारण कर लिया वृक्ष, तरुलताएं तथा पत्ते झड़ने लगे सुशोभित होने वाले वन के नए रस-भूत में कलियाँ प्रादुर्भूत हो गयी । नए नए किसलयों से युक्त वन हो गए । इस प्रकार यह ऋतुराज बसन्त पृथ्वी पर धीरे-धीरे आ गया । इस ऋतुराज के जन्म को भौरों की मधुर वाणी के द्वारा गया और प्रिय कोयल की वचनाली द्वारा गाया गया । अपने मित्र के पास आने से प्रसन्न कामदेव अपने मित्र बसन्त के स्वागत के लिये चर और अचर सबमें व्याप्त हो गया[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 15

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 22

3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 26

उस मधुमास वसन्त ने जड़ और चेतन सभी में रति को धारण किया । वसन्त की परिचर्या की पूर्ति के लिए सभी लोकों में सहचरण के लिए वह कमदेव व्याप्त हो गया और विरही लोगों में क्रुद्ध होकर विरहियों के हृदय को भेदकर मानों खिले पलाशों को हृदय की पंखुड़ियों को भेद दिया[1] । अव्यक्त मनोज्ञ ध्वनि से युक्त शीतल सुप्रभात में मलयानिल के बहते हुये अलसाई हुई नृत्य करते हुये प्रभात में चुटट करने वाली चुटकियों से खिलती हो समस्त फूलों के उत्सव की शोभा ऋतुराज के साथ रमण कर रही है[2] । यह वसन्त ऋतु सम्बन्धी अपनी क्रियाओं को दिखाता हुआ अपने रूप को विस्तृत कर रहा है । इसकी तुलना किसी से नहीं हो सकती है । अपने अपने स्वभाव के अनुसार बूढ़े, युवक, कुमार सभी कामदेव की आराधना कर रहे हैं । वह कल्पवृक्ष भी बसन्त को देखकर अपनी दिव्यता से उल्लसित हो गया और बढ़े आनन्द वाली सारी पृथ्वी को उल्लसित करने लगा । इस प्रकार यह मधुमास का मारूत विहरण करता हुआ लोगों के घर के भीतर बाहर नर्म सचिव का काम करने लगा ।

ब्रज में भगवान्-कृष्ण के बाल्यकाल में जो रसगोष्ठी शरदृतु में हुई थी, वह रसगोष्ठी मधुमास में आज फिर होने लगी भगवान ने पीताम्बर धारण करके रुक्मिणी आदि सखियों के साथ रमण किया । रास शुरू होने पर मधुमास ने सभी स्थितियाँ अनुकूल बना दीं । भौरों ने मधुर गुंजन प्रारम्भ कर दिया । पक्षी भी अपनी ऊँची धीमी मीठी - मीठी ध्वनियों से गाने लगे । जलाशय भी प्रसन्नता के उदय को प्रदर्शित करता हुआ खुश होकर नाचने लगा । भगवान कृष्ण ने रास शुरू करके बंशी को अपने अधर में धारण किया । उस बाँसुरी ने मंगलाचरण कानान्दी गीत गाना शुरू कर दिया ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 30

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 32

इस प्रकार त्रिभंगी की स्थिति में खड़े होकर, पाँव तक लटकती फूलों से घिरी माला को धारण करके मयूर के पूंछों के रत्नों से सिर को विभूषित करके भगवान् कृष्ण ने काम को प्रसन्न करने की जितनी चेष्टाएं हैं सब प्रारम्भ कर दी[1]। वह सम्पूर्ण जगत् भगवान की बाँसुरी में डूब कर साधारणीकरण होकर सब एक रस हो गया।

प्रभात-वर्णन

काव्य के द्वितीय सर्ग में महाकाव्यों की प्रचलित परम्परा के अनुसार प्रभात वर्णन किया गया है। रात्रि वर्णन से प्रारम्भ कर दूरारूढ़ सूर्य तक का क्रमिक वर्णन इस काव्य में किया गया है।

रुक्मिणी देवी और भगवान कृष्ण ने पृथक-पृथक उत्कंठा पूर्वक सोच विचार करते हुये ही रात्रि व्यतीत कर दी। उस समय रात्रि गर्भवती स्त्री के समान प्रतीत होती थी उसने अपने भीतर बालरूपी सूर्य को धारण कर लिया था। वह शीघ्र ही प्रसव करना चाहती थी। उसकी यह अवस्था देखकर मानों निशापति चन्द्रमा ने अपनी विलास वासना को विरत करके उसे सहवास से मुक्त कर दिया[2]। अर्थात प्रभात होने वाली थी।

प्रवीण वैतालिक मण्डल उन्हें जगाने के लिये गीत गाने लगा। प्रभात के कारण दीप की प्रभा मलिन हो रही है। द्विजगण वैदिक मंगलपाठ कर रहे हैं एवं दिंगनाएं लाल वस्त्रों से रंजित हुई उक्त महोत्सव के पुनीत क्षण को सूचित कर रही हैं।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 60

2 पारिजातहरण महाकाव्य- द्वितीय सर्ग - 4, 5

रात्रि का मुख उज्ज्वल होकर शोभायमान हो गया और मनोहर सुगन्ध फैलाती हुई गर्व लिए वायु बह रही है । तम से आवृत्त चित्त वाले जीवन अभी अभी बन्धन से छूटकर निश्शंक विहर रहे हैं । प्रातः का समय हो गया है अतः हे भगवन् मोहनिद्रा त्यागकर जागो । आपके प्रताप के साथ स्पर्द्धा करने वाला भानु मण्डल जब उग रहा है तब अवश्य उठेंगे, ऐसा जान आपके मुख चन्द्र से डरा चन्द्रमा अभी अस्त हो रहा है[1] । और मोह उत्पन्न कर देने वाले घने अन्धकार को स्वाभाविक बाल चापल्य से मारकर उसके खून से लथपथ हुआ यह बाल सूर्य आकाश के भीतर से ही लालिमा लिए चमक रहा है[2] । हे देव अग्नि को दीप्त करने वाली ऋचाओं को पढ़ते हुये अग्निहोत्र ब्राह्मणगण हवन कर रहे हैं और प्राभातिक वायु का संचार प्रत्येक स्थानों में हो गया है । अतः अब आप उठे । पक्षियों के कलकल से बच्चे जाग गए है । प्रातःकाल की समुपस्थिति में गौएं भी उठकर खड़ी हो गई हैं और रंभाती हुई अपने बछड़ों को दूध पिलाने के उतावलेपन को प्रदर्शित कर रही है इसलिए हे कमलनयन आपके नयन कमलों को भी विकसित हो जाना चाहिए । आप जाकर अपने प्रताप में सूर्य का अभिमान और चन्द्रमा के अभाव से होने वाली क्षति को दूर करें । भगवान विधिवशात् अपने प्रियतम चन्द्रमा के अस्त होने पर यह वसुन्धरा कुछ काल के लिये अत्यन्त विकल सी दिखाई देगी, अतः अभी अपने मुखचन्द्र के प्रदर्शन से उसे हर्ष युक्त करे[3] । देखिए वह रात प्रातःकाल ओस के बहाने आंसू बहाती हुई चली जाती है अथवा यों कहिए समय आने पर किसका दुरभिमान नष्ट नहीं होता । हे मुरमथन ! सोने के पिंजड़े में मंजुल मूर्तिवाली सारिका वेद मार्ग में प्रशंसित, पद पद में मनोहर मंगलमय आप

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 36
2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 39
3 पारिजातहरण महाकाव्य -द्वितीय सर्ग - 55

का नाम रट रही है[1]। भगवान कृष्ण ने इस प्रकार पक्षियों के कलकल के पीछे बन्दियों से कहे उषःकाल के विकास को सुनकर गले से लटकती वनमाला के बहाने गलबहियाँ डाले हुई मर्दित शरीरवाली शय्या को मानो प्रियतम प्रीतियुक्त प्रेयसी को जैसे छोड़ देता है वैसे ही छोड़ दिया[2]। इस प्रकार विभिन्न अलंकारों के माध्यम से कवि ने प्रभात का चित्र सा अंकित कर दिया है। इस प्रकार प्रभात वर्णन कवि ने कवि परम्परावश तथा कथानक के विस्तार के लिए किया है तथा साथ ही अपने काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए किया है।

सन्ध्या-वर्णन

काव्य के तेरहवें सर्ग में सन्ध्या का बहुत ही मनोहारी वर्णन किया गया है। यह रचना काव्य परम्परा के आधार पर की गई है। सन्ध्या, प्रदोष, रजनी, इन्दु आदि का यथावसर वर्णन कभी-कभी काव्य सौन्दर्य के लिये आवश्यक होता है।

ध्यान के समाप्त हो जाने पर तथा सन्ध्या हो जाने पर गिरि शिखर पर निविष्ट तथा चन्द्रशाला पर आश्रित प्राक् दिशा में चन्द्रमा उदित होते हुये तथा पश्चिम दिशा में सूर्य अस्त होते हुये एक साथ रक्त वर्ण के आकाश में दिखाई पड़े[3]। पूर्व दिशा में चन्द्रमा के उदित हो जाने पर और पश्चिम दिशा में दिन के ढल जाने पर आकाश रक्त वर्ण का हो गया है और वह दोनों ऐसे लग रहे हैं जैसे मणि के बने हुये पुटभाण्ड के दो खण्ड हो गये हों और फूट जाने पर कामदेव की स्त्री रति के आभूषण का सिन्दूर का प्रवाह फैल गया हो।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 58
2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 59
3 पारिजातहरण महाकाव्य - त्रयोदश सर्ग - 1

दिन के ढल जाने पर सूर्य की किरणों के चले जाने पर आकाश के बहुत अधिक अन्धकार से ग्रसित होने पर सम्पूर्ण लोक के द्वारा अस्पृश्य किन्तु आलोक्य रूप अपनी रोष सहित पीड़ा के कारण उत्पन्न रक्त वर्ण का दिखाई दे रहा है। रात्रि में चन्द्रमा के उठने पर मानो तारों का हार पहने हुये बहुत अधिक रक्त वर्ण के वस्त्र से अंग को ढके हुये तथा ढके हुये मुख की कान्ति वाली सन्ध्या मानो सूर्य का अनुसरण कर रही है[1]। पश्चिम दिशा में सूर्य के नाचते हुये गिराती हुई पृथ्वी पर चंचल बाल सन्ध्या अनुराग से विहार करती है ।

इस प्रकार विभिन्न अलंकारों के माध्यम से कवि ने सन्ध्या का चित्र साउपस्थित करके अपने अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया है । यह वर्णन कवि परम्परावश किया गया है तथा साथ ही यह कथानक के विस्तार में सहायक है और काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाने वाला है ।

मानव और प्रकृति का जन्म से ही सम्बन्ध होता है, मनुष्य प्रकृति में ही जन्म लेता है उसी में बढ़ता है, अतः प्रकृति का मानव से अटूट सम्बन्ध रहा है, इसलिये प्रत्येक कवि का काव्य प्रकृति वर्णन से अछूता नहीं रहता है । प्रकृति वर्णन में सन्ध्या, प्रभात, समुद्र, नदी तथा ऋतुओं का वर्णन आता है ।

पारिजातहरण महाकाव्य में यथास्थान सन्ध्या, प्रभात, समुद्र, त्रिवेणी, शरदऋतु तथा बसन्त ऋतु का वर्णन मिलता है, । निश्चय ही कवि ने ये वर्णन कथानक का विस्तार करने के लिये तथा महाकाव्य की परम्परा के अनुसार तथा अपने काव्य सौन्दर्य को बढ़ाने के लिये किया है ।

--0--

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - त्रयोदश सर्ग - 10

चतुर्थ अध्याय

===========

"पारिजातहरण महाकाव्य में कवि उमापति द्विवेदी का शास्त्रीय पाण्डित्य"
-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-

व्युत्पत्ति तथा अभ्यास द्वारा परिष्कृत प्रतिभा काव्य समुद्भव का हेतु मानी गई है[1]। इसी व्युत्पत्ति को क्षेमेन्द्र ने "परिचय, कहा है, जिसके बिना कोरा पद्य-निर्माता विदग्ध-गोष्ठी में उतना ही अज्ञ प्रतीत होता है, जितना कोई नवागन्तुक किसी बड़े नगर की बीहड़ गली में[2]। प्रतिभा और व्युत्पत्ति के इस मणिकांच्चन संयोग से ऐसे काव्यलंकार की रचना होती है जो सदा विदग्धकण्ठाभरण बनता है । व्युत्पत्ति के अन्तर्गत विश्व का सारा ज्ञान भण्डार आ जाता है । विभिन्न आचार्यों ने परिगणन के लिए कुछ प्रधान विभिन्न विद्याओं का उल्लेख कर दिया है ।

राजशेखर ने काव्यार्थयोनि प्रकरण में श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, प्रमाण-विद्या, समय-विद्या, राज-सिद्धान्तत्रयी, लोक-विरचना, प्रकीर्णक, उचित संयोग, योक्तृ संयोग, उत्पाद्य संयोग, तथा संयोग विकरण इन सोलह का परिगणन किया है[3]। क्षेमेन्द्र ने तर्क, व्याकरण, भरत चाणक्य, वात्स्यायन, रामायण, मोक्षोपाय, आत्मज्ञान, धातुवाद, रत्नपरीक्षा, ज्यौतिष, धनुर्वेद, गजतुरगपुरुष-लक्षण, द्यूत, इन्द्रजाल तथा अन्य विविध विषयों के परिचय को कवि साम्राज्य का द्योतक बताया है[4]। उसी प्रकार मम्मट ने स्थावर जंगात्मक लोकवृत, छन्द, व्याकरण, अभिधानकोश, कला चतुर्वर्ग, गजतुरग खड्गादिलक्षण, काव्य तथा इतिहास आदि की व्युत्पत्ति को काव्य हेतु भूत निपुणता के अन्तर्गत गिनाया है[5]।

---

1 व्युत्पत्त्यभ्यास संस्कृता प्रतिभास्यहेतुः -काव्यानुशासन, प्रथम अध्याय
2 कविकण्ठाभरण पंचमसन्धि -आचार्य क्षेमेन्द्र
3 काव्यमीमांसा अध्याय - 8
4 कविकण्ठाभरण, पंचमसन्धि
5 काव्यप्रकाश- प्रथम उल्लास

इसी प्रकार वाग्भट ﴾15 वीं शताब्दी﴿ ने स्थावर जंगम रूप लोक में तथा लक्षण साहित्य छन्दोलंकार श्रुति-स्मृति पुरोणेतिहासागम नाट्याभिधान कोष कामार्थ योगादि शास्त्रों में निपुणता को व्युत्पत्ति माना है । किन्तु वह केवल लाक्षणिक ही कही जा सकती है, वास्तव में विज्ञान की इयत्ता निर्धारित ही नहीं की जा सकती । अपने क्षेत्र की इस वृहत्ता के कारण ही कवि को ब्रह्म के पर्यायावाची कवि की उपाधि मिली ।

पारिजातहरण महाकाव्य में उपलब्ध शास्त्रीय - संकेतों से कवि के ज्ञान-भण्डार को अनुमान किया जा सकता है । कवि के ज्ञान की सीमा विस्तृत है । इन शास्त्रों में उनका गम्भीर प्रवेश है । व्याकरण शास्त्र, काव्य शास्त्र, कामशास्त्र, श्रुतिज्ञान, पुराणशास्त्र-ज्ञान दर्शन-शास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, चित्रात्मक ज्ञान, पाक-विज्ञान, ज्योतिशशास्त्र, पक्षि-विज्ञान आदि के अनेकशः संकेत उनके इस महाकाव्य में प्राप्त हैं ।

1. व्याकरण शास्त्र ज्ञान :-

कवि ने अपने पारिजातहरण महाकाव्य की रचना जनमानस के विनोद के लिए की है । अतः उनके इस काव्य में भाव-पक्ष की, कलापक्ष की अपेक्षा प्रधानता दृष्टिगोचर होती है । व्याकरण शास्त्र ज्ञान में उनकी बहुत अधिक प्रौढ़ता नहीं प्राप्त हुई है, फिर भी काव्य में विभिन्न लकारों का प्रयोग, विभक्तियों का प्रयोग, प्रत्यय का प्रयोग, उपसर्ग का प्रयोग आदि उनके व्याकरण-शास्त्र ज्ञान का परिचय देता है । कुछ उदाहरण इस तथ्य को प्रमाणित करने में पर्याप्त होंगे ।

यथा-शशंस §पारिजातहरण 2-1§, मुमुद्र §2-2§ अधिससार §3-3§ ययौ §3-4, 5, 10§, उवाह§3-12§ चकार §3-14, 6-1§, मेने §4-7§ अरेभे §4-13§ आहु §5-15§, रेले §6-12§, प्राप §7-1§, ददर्श § 8-2§, जगाम §8-1§, जगाद §9-1§, प्रतिपेदे §11-1§, विललंधे §11-2§, शशुभे §12-2§ आदि लिट लकार में प्रयुक्त शब्द है । लिट लकार का प्रयोग काव्य में अधिक किया गया है । इसके अतिरिक्त लट लकार, लंङलकार तथा विधिलिंग, लृट लकार का प्रयोग भी हुआ है ।

दधाति §1-6§, अनुयाति§1-10§, लिम्पति §1-11§, ज्वलन्ति §1-14§, नृत्यति §1-17§, सूचयतीति §6-10§, स्फाराति - §8-12§, तुष्यति §10-78§, क्षरन्ति §10-61§, आदि लट्लकार में प्रयुक्त शब्द हैं ।

अमिलत् §1-1§, अवीवहत् §3-6§, अदर्शयत् §5-12§, निरची-रवनत् §4-15§, अभ्रमत् §7-3§, न्यवारयत् §7-13§ आदि लड़लकार में प्रयुक्त शब्द है । पृच्छेत् §8-31§, चेत् §9-4§, स्मरेत् §9-6§ आदि विधि लिड़्. में प्रयुक्त शब्द है दास्यति §10-70§ आदि लृट्-लकार में प्रयुक्त शब्द हैं ।

इसके अतिरिक्त "क्त" प्रत्यय से बनी धातुओं का भी प्रयोग इस पारिजातहरण महाकाव्य में हुआ है । आस्थितः §3-1§, प्रमण्डिता§5-11§, यतः §7-34§, प्रतिबिम्बितं,§6-9§ प्रायुड्.क्त §6-11§ प्रवेपितः §8-4§ दृष्टिटम् §10-1§ आदि "क्त" प्रत्यय से बने शब्द है ।

विचित्य §1-4§, अभिभूच्य §2=8§, निवृत्य §3-33§,लक्ष्यीकृत्य §4-38§, निशाम्य §5-1§, व्याहृत्य §5-56§, आदि ल्यप् प्रत्यय से बने शब्द हैं । दधानः §1-24§,उद्यमानः §2-56§ आदि शतृ-शानच् प्रत्यय से बने शब्दों का प्रयोग हुआ है स्खलन्तीः §3-71§, वीजयन्ती §4-71§, प्रतारयन्ती§5-10§ आदि शतृ प्रत्यय से बने शब्दों का स्त्रीलिङ्ग प्रयोग भी हुआ है । श्लाघनीयः §4-8§, क्षमापणीयं §5-25§ आदि अनीयर् प्रत्य से बने शब्दों का प्रयोग हुआ है । कारयति §10-63§, अतिष्ठिपत् §4-18§, आदि प्रेरणार्थक धातुओं का भी प्रयोग हुआ है ।

उपसर्गयुक्त धातुओं का भी प्रयोग हुआ है यथा -अनुयाति §1-10§, उपैति §1-9§, न्यवारयत् §7-13§, प्रवेपितः §8-4§, अभ्युदिता, अधिगम्य- §9-2§, प्रतिपेदे §11-1§, विललंघे §11-2§, आचरन्ति §10-4§ आदि ।

तद्धित प्रत्यय का भी प्रयोग इस काव्य में हुआ है । सौहार्द - §10-43§, औदार्य, माधुर्य §10-94§ मौक्तिक §11-16§, स्त्रैणता §11-83§, कौशिकता §11-92§ औपाधिक §6-31§, भीष्मकसुता §6-15§, कार्मुक §17-13§ आदि तद्धित प्रत्यय प्रयोग है ।

कर्मवाच्य प्रयोग भी इस काव्य में हुआ है मन्यते §1-5§,समाश्रयन्ते- §1-16§, रमन्ते §10-4§ आदि कर्मवाच्य प्रयोग भी हुआ है ।

पारिजातहरण महाकाव्य के पंचम सर्ग में त्रिवेणी का वर्णन सातों विभक्तियों में कवि ने किया है । "प्रयागभुवि" सप्तमी में,"अतिसिता"

प्रथमा में, "नीरै:" तृतीया में, "तस्या:" षष्ठी में तथा "सरस्वती" प्रथमा में, "कामधेनुम्" द्वितीया में, "यस्यै चतुर्थी में प्रयोग किए गए शब्द हैं[1]।

§2§ काव्य शास्त्र ज्ञान :-

पारिजातहरण महाकाव्य की रचना कवि ने जगत् की पवित्रता के लिए तथा जन-मानस के विनोद के लिए की है। अत: इनके काव्य की भाषा सरल और परिमार्जित है तथा जनमानस की भाषा है। इनके काव्य की भाषा दुरूह नहीं है, न ही लम्बे-लम्बे समासों का प्रयोग ही हुआ है।

कवि उमापति द्विवेदी के काव्यशास्त्रीय ज्ञान का परिचय निम्न श्लोक से स्पष्ट है -

आमोदिनी §सर्वथाप्रसन्न करने वाली§ किंच सुन्दर गन्धवाली सरसभावों के विकास से रमणीय अथवा सरस स्वभाव तथा विकाश §दीप्ति§ से मनोहर, सन्दर्भ शुद्धि, पदविन्यास की स्वच्छता पक्ष में सम्यक् ग्रथन की सुरीति तथा पूर्ण रूपेण पुष्ट §माधुर्यादि§ गुण किंचसूत्र से युक्त, प्रसादवाली. भली भांति अलंकृत तथा संस्कार से शोभित माला के समान आपकी यह वाणी हृदय में रख लेने से किसकी श्री को नहीं बढ़ा देगी[2]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचमसर्ग - 42, 57

इस आपकी वाणी ने औचित्य का त्याग कहीं नहीं किया है । व्याज रहित भाववाली §शुद्धाभिप्राय§ तथा रमणीय पद विन्यास वाली, आडम्बर शून्य सरस शब्दों वाली आसक्ति आदि सामर्थ्य से शोभित उत्तम कुलीन अंगना की तरह यह किसको मान्य नहीं हैं[1] ।

शुद्ध, दोषरहित§ निरंजन§रूप, अभिधेय वाच्य अर्थ §ब्रह्म्म के प्रतिपादन §उपासना§ में लगी, प्रपंच विस्तार §भौतिक जात§ से रहित अत्यन्त निर्मल आन्तर §आध्यात्मिक§ बोध §ज्ञान§ के ऐश्वर्य को फैलाए हुई, बिना सन्देह के प्राप्त सिद्धि द्वारा शुभ लाभ वाली तपस्विनी के समान आपकी वाणी हमारे पुण्य से ही हमें अनुगृहीत कर रही है[2] ।

वैसे यह तो भगवान् कृष्ण ने नारद से अपनी कार्य सिद्धि के लिए उपपति §युक्ति§ से पूर्ण पद ये वचन कहे थे परन्तु इससे कवि के पद विन्यास, माधुर्यादि गुण, सरसशब्द आदि के विषय में संकेत हैं । कवि की उक्ति में तथा पदों में प्रसाद है । कवि की उचित व्याज रहित भाववाली अर्थात शुद्धाभिप्राय वाली है तथा रमणीयपद विन्यास वाली है, उत्तम आडम्बर शून्य सरस शब्दों वाली है तथा उत्तम कुलीन अंगना की तरह हैं एवं शुद्ध दोषरहित है । प्रपंच विस्तार §भौतिक जगत्§ से रहित, अत्यन्त निर्मल आध्यात्मिक बोध वाली है । बिना सन्देह के प्राप्त सिद्धि द्वारा शुभलाभ वाली तपस्विनी के समान है । इनकी उक्ति में सहायक प्रसंग द्वारा मुख्य अभिधेय का तिरोभाव नहीं है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 58

2 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 59

अभिधा, लक्षणा, व्यंजना-ये तीन शक्तियां शब्द की मानी जाती है। इनसे क्रमशः वाच्य (संकेतित) लक्ष्य और व्यंग्य अर्थ का बोध होता है। इनमें व्यंजना का उपयोग काव्य में होता है। अभिधा से लोक प्रसिद्ध मुख्य अर्थ का बोध होता है इसलिए वाच्यार्थ को भी मुख्यार्थ कहते हैं लेकिन कभी-कभी ऐसा ज्ञात होता है कि वाक्य में मुख्यार्थ का अन्वय (सम्बन्ध) ठीक-ठीक नहीं बैठता तब लक्षणा का सहारा लेना पड़ता है।

जब अभिधा से प्रतीत होने वाले मुख्यार्थ का बोध हो अर्थात वाक्य में उसकी संगति न बैठे तो किसी विशेष प्रयोजन को सूचित करने के लिए मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाले किसी अन्य अर्थ की प्रतीति जिस शक्ति के द्वारा होती है उसे लक्षणा कहते हैं[1]।

मम्मट का वाच्याद्यस्तदर्थाः स्युः[2] यह कथन वाच्य लक्ष्य और व्यंग्यरूप अर्थों की काव्यकला के "साधन" और "माध्यम" दोनों रूपों में प्रतिपादित करने के लिए है। वाच्य लक्ष्य व्यंग्य-रूप अर्थ काव्यरूप कला निर्माण के माध्यम हैं। मम्मट ने कहा है "वाच्य लक्ष्य और व्यंग्यरूप अर्थों का उपयोग कविजन जिसलिए किया करते हैं, वह उनका अनुपम प्रकाशन है[3]।

ध्वनिवाद के अनुसार भी शब्द की तीनों उपाधियां सम्भव है - वाचकता, लाक्षणिकता, व्यंजकता। आचार्य मम्मट ने शब्दों का यह श्रेणी विभाग किया --

---

1 साहित्यदर्पण - 2/5

2 काव्यप्रकाश - 2 य उल्लास

3 काव्य प्रकाश - 2 य उल्लास

स्याद्वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यंजकस्त्रिधा"[1]

काव्य में प्रयुक्त शब्द त्रिविध अर्थात "वाचक" और लाक्षणिकता और व्यंजक हुआ करते हैं। इसका यही अभिप्राय लिया कि काव्य रचना भले ही लोक शब्दों से रचे हों किन्तु इन्हीं लोकशब्दों से रचे गए काव्य में काव्य की रूपरेखा तभी झलक सकती है जब कि कोई भी शब्द ऐसा प्रयुक्त हो जाय जिसमें कवि की हृदय तन्त्री झङ्कृत हो उठे और जिसका संगीत सहृदय-हृदय को स्पर्श कर जाय।

पारिजातहरण महाकाव्य में लक्ष्य और व्यंग्य अर्थ का निरूपण हुआ है।

सामने बैठे भगवान् कृष्ण के वक्षस्थलस्थित श्वेत कौस्तुभमणिरूप दर्पण में, उनकी हरी कान्ति से आच्छन्न अपनी छाया देखकर श्याम हो गए अपने शरीर को आशांकित कर (देवार्षि नारद) विस्मित हो रहे थे[2]।

परस्पर की कान्ति संक्रम से अपूर्व प्रभा रखता उन दोनों का संगम जिसमें समस्त पद अपने-अपने अर्थ को छोड़ कर एक तीसरे अर्थ को कहते है ऐसी "जहत्स्वार्था" व्याकरण-प्रसिद्ध, वृत्ति को प्राप्त दो शब्दों के समास के सदृश एक अपूर्व छटा दिखा रहा था[3]।

---

1 काव्य प्रकाश 2.1

2 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 96

3 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 97

इस नारायण की आठ पटरानियाँ जो सांख्य-शास्त्र प्रतिपादित आठ प्रकृतियों के समान है उनमें प्रधान मूल प्रकृति आप §रूक्मिणी ही हो । इस निश्चय को भगवान ने §सत्यापितं§ सत्य कर दिखाया । जिससे यह पुष्प राज रूप उपहार पाने योग्य दूसरी कोई नहीं रही । §सत्याऽपि तम्§ इस परिच्छेद से भाव व्यंजना यह है कि सत्यभामा भी इस सम्मान को न पा सकी §सत्यभामा का सत्या भी नाम है§[1]

भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामा को विशेष प्रेम करते थे । कभी-कभी यात्राओं में भी गरूड़ पर बायीं ओर उन्हें बिठा लेते थे, पूर्वोक्त व्यंजना को और स्पष्ट करते हुए नारद जी यही कहते है, हे देवि रुक्मिणी ! इस विलासी प्रभु की कहीं किसी यात्रा में कोई गरूड़ासन भले ही प्राप्त कर ले किन्तु इनसे दिया अमित मात्रा में यह सौभाग्य भाग आज तुमने ही प्राप्त किया इसे मैं समझता हूँ ।[2]

सत्यापितं इस पद की घटना विश्लेष से व्यंजित अन्य स्त्री के अनादर रूप भाव वाली रुक्मिणी ही प्रशंसामयी[3] नारद की वाणी सुनकर भगवान एक चिकनी हंसी से मुस्करा उठे ।

लाक्षणिक ध्वनि के द्वारा गांधी के नेतृत्व में चलते स्वराज्य सेवा के लिए सत्याग्रह की स्मृति दिलाकर अपने काल विशेष की सूचना कवि ने दी है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 18
2 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 19
3 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 20

यह कुमुद का वन दिन में ‡ध्वनि से कुमुद दुःखित का दल‡ स्वर्ग राज्य में उल्लसित चन्द्र की चाँदनी में ‡किंच निजी राज्य से उत्पन्न‡ पृथ्वी के आनन्द रूप मनोहर चाँदनी प्रकाश में सर के भीतर ‡लक्षणा से देश के भीतर‡ अपने को प्रकाशित ‡ प्रभावयुक्त‡ करने के लिए बिना भयकम्प के आशायुक्त हो सुगन्धित तथा बद्ध सम्पुटित रहकर अन्य पक्ष में ‡शोभन गाँधी रूप नेता से बद्ध उनके अनुरोध से गृहीत‡ अथवा बन्दीखाने में पड़ा सत्याग्रह रूप तप कर रहा था[1]।

पुराण-शास्त्र ज्ञान :-

इतिहास पुराणाभ्यां चक्षुर्भ्यामिव सत्कविः ।
विवेकांजन शुद्धाभ्यां सूक्ष्मम्प्यर्थमीक्षते ।।[2]

कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण-महाकाव्य का कथानक ही पुराण पर आधारित है । कवि उमापति को पुराणों का विस्तृत ज्ञान था क्योंकि पुराणों से उन्होंने पारिजातहरण नामक कथा को ही लेकर अपने इस काव्य की रचना की । उनके इस काव्य में यथास्थान पौराणिक आख्यानों का भी उल्लेख मिलता है । अत्यन्त प्रसिद्ध पौराणिक आख्यानों के अतिरिक्त उन्होंने अत्यन्त अपरिचित कथाओं का भी स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है । एक ही कथानक कई रूपों में कई स्थानों पर उल्लेखीत हुआ है । कभी उसका एक रूप एक दृष्टि से देखा गया तो कभी दूसरा रूप दूसरी दृष्टि से । ये कथानक प्रायः उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष, दृष्टान्त, भ्रान्तिमान, समासोक्ति आदि अलंकारों के साथ ही आते हैं । इस प्रकार श्री उमापति द्विवेदी की अलंकारप्रियता के साथ उनकी पुराणज्ञता का सुन्दर

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 16

2 "काव्यमीमांसा "- अध्याय- 8

समन्वय हुआ है । अपने काव्य में चमत्कार बढ़ाने के लिए उन्होंने जो पुराणों का सहारा लिया यह ठीक ही किया क्योंकि पौराणिक कथाओं के समाज में अत्यन्त प्रिय होने के कारण उनके द्वारा भाव - बोध कराने में बड़ी सुगमता हो जाती है । कवि ने जहाँ अप्रचलित कथाओं का उल्लेख किया है वहाँ उनकी केवल वैदुष्य प्रदर्शन की भावना मानी जाएगी । पारिजातहरण महाकाव्य की कथा लोकप्रिय होने के कारण भाव-बोध कराने में समर्थ है ।

पारिजातहरण महाकाव्य का कथानक हरिवंशपुराण से लिया गया है । हरिवंश पुराण में दो प्रकार की कथा प्रसिद्ध है । इसमें पहली कथा तो विष्णु-पुराण में स्वीकार की गई है दूसरी कथा दृश्य श्रव्य काव्य में स्वीकार की गई है जो इस प्रकार है :- श्री कृष्ण के सन्दर्शनार्थ आए हुए नारद के द्वारा दिए गए पारिजात पुष्प को श्रीकृष्ण को देना तथा कृष्ण का उसे रुक्मिणी को सौंपना उससे सत्यभामा का क्रोध, कृष्ण का सत्यभामा के अनुनयार्थ, स्वर्ग से पारिजात वृक्ष ही उखाड़ लाने की प्रतिज्ञा, नारद के द्वारा कृष्ण तथा इन्द्र के बीच सन्देशवार्ता, इन्द्र की पारिजात देने में असम्मति, इन्द्र कृष्ण युद्ध, स्वर्ग से पारिजात का लाया जाना तथा एक संवत्सर बीतने पर पुण्यक व्रतोत्सव के समय पुनः स्वर्ग में वापस पहुँचाया जाना आदि का वर्णन हुआ है ।

इसी कथा को आधार मानकर पारिजातहरण-महाकाव्य की रचना हुई है । पारिजातहरण महाकाव्य का कथानक इस कथानक से थोड़ा ही भिन्न है अन्यथा पूरी कथा वैसी ही ज्ञात होती है । इसके अतिरिक्त ब्रह्मपुराण, विष्णु-पुराण, देवी-भागवत में पारिजातहरण का वृतान्त मिलता है । पद्म-पुराण में भिन्न वृतान्त मिलता है ।

पारिजातहरण का वृतान्त हरिवंश में विशिष्ट स्थान रखता है। यह वृतान्त हरिवंश में दो बार वर्णित है। कृष्ण पारिजात का हरण करते हैं। इन्द्र, कृष्ण के पराक्रम को देखकर पारिजात वृक्ष को ले जाने की अनुमति दे देते हैं[1]।

पारिजातहरण का द्वितीय वृतान्त हरिवंश पुराण के बारह अध्यायों में वर्णित है। वह कथा इस प्रकार है -- "रैवतक पर्वत में नारद के द्वारा दिए गए पारिजात-कुसुम को कृष्ण रुक्मिणी को दे देते हैं। इस पुष्प के प्रदान से सत्यभामा रुष्ट हो जाती है। उनके आग्रह से कृष्ण स्वर्ग से पारिजातहरण करते हैं। इस कथा में शिव की स्तुति और पुण्यक व्रत का सम्मिश्रण है कृष्ण और इन्द्र के युद्ध की शान्ति के लिए कश्यप ऋषि शिव की तपस्या करते हैं[2]।

भगवानकृष्ण स्वयं पारिजात की सफलता के लिए महादेव की स्तुति करते हैं[3]।

सत्यभामा सौभाग्य की प्राप्ति के लिए नारद को पुरोहित बनाकर तथा कोमल तन्तु के द्वारा पारिजातवृक्ष से कृष्ण को बाँधकर प्रभूत धन के साथ कृष्ण का दान करती है[4]।

---

1 उत्पाट्या रोपायमास विष्णुस्तं गरूडोपरि,
श्रुत्वा तं देवराजस्तु कर्म कृष्णस्य तत्तदा,
अनुमेने महाबाहु कृतकर्मेति चाब्रवीत्।

"हरिवंश पुराण"— 2-67, 68, 70

2 हरिवंश पुराण -- 2-72, 29-66

3 हरिवंश पुराण -- 2-74, 22-34

4 हरिवंश पुराण — 2-76, 3 -36

पारिजातहरण के इस वृतान्त में हरिवंश पुराण में युद्ध का विस्तृत वर्णन मिलता है[1]।

पारिजातहरण के प्रसंग में नारद के द्वारा दिए गए पारिजात पुष्प का उल्लेख पद्म पुराण को छोड़कर ब्रह्मपुराण, विष्णु पुराण, भागवत-पुराण, देवी-भागवत तथा ब्रह्म वैवर्त आदि पुराणों में नहीं मिलता है। पद्म-पुराण में हरिवंश पुराण की ही भांति शची के द्वारा पारिजात कुसुमों का श्रृंगार, सत्यभामा की पारिजातहरण वृक्ष की लेने की उत्कट इच्छा का कारण बन जाता है। पद्म पुराण उत्तरखण्ड - 40 में पारिजात हरण का वृतान्त हरिवंश पुराण से बहुत समानता रखता है।

पारिजात वृक्ष के पृथ्वी में स्थिति काल के विषय में पुराणों में मतभेद है। "ब्रह्म" पुराण[2], विष्णुपुराण[3], पद्मपुराण[4], तथा भागवत पुराण[5] में पारिजात वृक्ष को कृष्ण के जीवन काल तक के लिए पृथ्वी में निवास करते हुए प्रस्तुत करते हैं। सत्यभामा के व्रत की समाप्ति पर पारिजातवृक्ष पुनः स्वर्ग पहुँचा दिया जाता है[6]।

विष्णु पर्व के कृष्ण चरित के अन्तर्गत पारिजातहरण का वृतान्त संक्षिप्त है। इस प्रकार विभिन्न पुराणों में वर्णित पारिजातहरण नामक आख्यानों से यह ज्ञात होता है कि कवि उमापति द्विवेदी ने अपने पारिजातहरण महाकाव्य की रचना हरिवंश पुराण में वर्णित पारिजातहरण की कथा को आधार मानकर

---

1 हरिवंश पुराण - 2-73-75
2 ब्रह्मपुराण - 20.3
3 विष्णुपुराण - 5.21
4 पद्मपुराण उत्तरखण्ड - 276
5 भागवतपुराण - 10-6734
6 संवत्सरे ततो याति केशिहाऽमरसत्तमः।
पारिजातं पुनं स्वर्गमान्यत्सर्व भावनः॥
"हरिवंश पुराण"-2-76-36

किया है । हरिवंश में पारिजातहरण के अन्तर्गत यह प्रसंग पुराणों में पाए जाने वाले पारिजातहरण पुराणों में पारिजात निबन्धन हरिवंश के इस प्रसंग से नितान्त भिन्न रूप में मिलाता है ।

इन पुराणों में कृष्ण सत्यभामा के इन्द्र लोक पहुँचने पर सत्यभामा की शची के प्रति ईर्ष्या, पारिजातहरण के लिए कृष्ण की प्रतिज्ञा, कृष्ण इन्द्र युद्ध और अन्त में इन्द्र की पराजय का उल्लेख है[1] ।

हरिवंश पुराण में पारिजात वृक्ष की प्राप्ति के बाद सत्यभामा के व्रत विशेष पुण्यक व्रत का वर्णन है[2] ।

यह व्रत सत्यभामा के द्वारा कृष्ण की दीर्घायु के लिए किया गया है । पुण्यकव्रत हरिवंश के अतिरिक्त अन्य पुराणों में नहीं मिलता । पारिजातहरण के अन्तर्गत दो स्तुतियां हरिवंश पुराण में मिलती है । पहली स्तुति इन्द्र और कृष्ण के युद्धोयोग को देखकर कश्यप ऋषि के द्वारा शिव जी के प्रति है[3] ।

दूसरी स्तुति इन्द्र के विरूद्ध संग्राम में शक्ति की प्राप्ति के लिए कृष्ण के द्वारा महादेव के प्रति है[4] ।

---

1 विष्णु-पुराण - 530, 31, ब्रह्म पुराण - 203
पद्म पुराण उत्तरखण्ड 90 भाग 10-59, 38-40
देवी भागवत पुराण 4-25, 25-27

2 हरिवंश पुराण - 2-75-81

3 हरिवंश पुराण - 2-72

4 हरिवंश पुराण - 2-74

पुष्पकव्रत की अर्वाचीन सामग्री हरिवंश के पारिजातहरण के वृतान्त की अर्वाचीनता को पुष्ट करती है ।

पद्म पुराण में पारिजातहरण की कथा इस प्रकार है - पृथ्वी से उत्पन्न नरकासुर नामक दैत्य इन्द्रादि देवों को पराजित कर देवमाता अदिति के दो कुण्डल, ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा घोड़ा तथा स्वर्ग की अन्य सम्पत्तियां लूट ले गया था । देवगण ने कृष्ण की शरण जाकर उनसे नरकासुर के वध की प्रार्थना की । कृष्ण ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर अपनी प्रिया सत्यभामा सहित गरूड़ पर सवार होकर असुर को मारने के लिए प्रस्थान किया और उसका वध कर देवों की लूटी हुई सम्पत्ति उन्हें पुनः वापस दिलवाई । अनेक नरेशों की सोलह हजार कन्याओं को जो असुरों के यहां बन्दी थीं मुक्त किया तथा उनकी ही प्रार्थना पर उनसे विवाह किया । फिर देवमाता का दर्शन करने तथा उनके कुण्डल देने स्वर्ग लोक गए । देवमाता को प्रणाम कर उनके कुण्डल उन्हें समर्पित किए । उस समय सत्यभामा शची के महल में गई । इन्द्राणी ने उनका उचित स्वागत किया । उसी समय सेवकों ने इन्द्र का भेजा सुन्दर पारिजात का पुष्प शची को दे दिया । शची ने उसे मर्त्योचित न समझ सत्यभामा से पूछा भी नहीं और वह पुष्प अपने ही केशों में गूँथ लिया । सत्यभामा इस अपमान से बड़ी क्रुद्ध हुईं । उन्होंने कृष्ण के पास जाकर उनको शची के पारिजात विषयक गर्व का वृतान्त बताया । वासुदेव ने प्रिया की बात सुनकर पारिजात का वृक्ष ही उखाड़ लिया । और उसे गरूड़ पर लादकर प्रिया के साथ द्वारका को चल दिये । उस पर इन्द्र को बड़ा क्रोध आया । देवों को साथ लेकर उन्होंने कृष्ण से युद्ध किया, पर अन्त में पारिजात होकर इन्द्र ने पारिजात का स्वर्ग से जाना सह लिया । कृष्ण ने उसे सत्यभामा के महल में लगाया[1] ।

---

1 पद्मपुराण-उत्तरखण्ड अध्याय 276 श्लोक 42/110

यह कथा हरिवंश में बड़े विस्तार के साथ तथा पद्मपुराण की कथा से कुछ भिन्न कही गई है । वहां नारद का स्वर्ग से एक पारिजात पुष्प लाना, कृष्ण को देना तथा कृष्ण का उसे रुक्मिणी को सौंपना उससे सत्यभामा के अनुयथार्थ स्वर्ग से पारिजातवृक्ष ही उखाड़ लाने की प्रतिज्ञा, नारद द्वारा कृष्ण तथा इन्द्र के बीच सन्देश वार्ता, इन्द्र की पारिजात देने में असम्मति, इन्द्र-कृष्ण युद्ध, स्वर्ग से पारिजात का लाया जाना, तथा एक संवत्सर बीतने पर पुण्यकव्रतोत्सव के समय पुनः स्वर्ग में वापस पहुँचाया जाना आदि का वर्णन है[1] ।

इसके अतिरिक्त एक स्थान पर हरिवंश में ही पद्मपुराण जैसा कथानक भी है[2] ।

कवि उमापति द्विवेदी विरचित "पारिजातहरण महाकाव्य" की कथा इस प्रकार है ।

द्वारका के वर्णन के पश्चात् रुक्मिणी दूती को भेजकर अपने द्वारा किए गए व्रत के उद्यापन के लिए भगवान् कृष्ण से अनुमति मांगती है । भगवान् कृष्ण स्वीकार कर लेते हैं ।

तत्पश्चात् यज्ञ के लिए भगवान् कृष्ण का रुक्मिणी के साथ रैवतक पर्वत की यात्रा का वर्णन किया गया है । नारद के द्वारा भगवान् कृष्ण की स्तुति तथा नारद के द्वारा कृष्ण को पारिजात पुष्प देना, भगवान् कृष्ण को रुक्मिणी को पारिजात पुष्प देना । तत्पश्चात् नारद के द्वारा सत्यभामा का क्रोध,

---

1 हरिवंश पुराण अध्याय 65-76

2 हरिवंश पुराण 2/64

भगवान कृष्ण को सत्यभामा को मनाया जाना, तथा सत्यभामा से पारिजातवृक्ष को माँगने के लिए नारद इन्द्र के पास जाना, नारद-इन्द्र संवाद तथा इन्द्र का बिना युद्ध के पारिजात वृक्ष को न देना, सत्यभामा के साथ भगवान कृष्ण का स्वर्ग जाना, नारायण इन्द्र युद्ध तत्पश्चात युद्ध की शान्ति के लिए भगवान शिव की स्तुति ऋषि कश्यप का आगमन, कश्यप के द्वारा माता अदिति के कुण्डलों का भौमासुर राक्षस के द्वारा हरण को बताया भगवान का पाताल गमन, भौमासुर-वध, राजकन्याओं का उद्वार, माता अदिति के कुण्डलों का लाना, भगवान के द्वारा उपहार-स्वरूप में पारिजात का पाया जाना, भगवान कृष्ण का द्वारिका को प्रस्थान, सत्यभामा के घर में पारिजात का आरोपण आदि का वर्णन पारिजात-हरण महाकाव्य में किया गया है[1]।

पारिजातहरण महाकाव्य में यथास्थान व्रत विधान का वर्णन,यज्ञ का वर्णन, द्वारिका का वर्णन, नदियों तथा ऋतुओं का वर्णन, समुद्र का वर्णन,स्वर्ग का वर्णन, युद्ध का वर्णन किया गया है । जो पुराणों से बहुत कुछ समानता रखता है । हरिवंश पुराण के पंचम सर्ग में तीनों लोकों का, संगीत का तथा व्रत-विधान आदि का बीच-बीच में विस्तृत वर्णन किया गया है[2]।

कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाव्य के प्रथम सर्ग में रूक्मिणी के व्रत का वर्णन किया गया है । दूती ने आकर भगवान कृष्ण से कहा - हे भगवन् ! आपकी ज्येष्ठापत्नी रुक्मिणी अपने किए पुण्यकव्रत की पूर्णता के लिए कल आपके साथ ही रैवताचल पर पूजनीय देव ब्राह्मणों की पूजा करना चाहती है । आपकी एकमात्र उपासना ही जिसे इष्ट है ऐसी अपनी प्रियतमा

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य "श्री उमापति द्विवेदी

2 हरिवंश पुराण " 5-267 से 279

रुक्मिणी को अपनी अनुमति दें अनुगृहीत करें क्योंकि सती रुक्मिणी आपकी कृपा के परोक्ष कुछ भी करना नहीं चाहती[1] इस पर भगवान श्रीकृष्ण ने अनुराग सहित कहा - वह रुक्मिणी अपनी कामना पूर्ण समझें[2]।

हरिवंश पुराण के पंचम सर्ग में नदियों का वर्णन मिलता है -कच्छा आदि प्रत्येक क्षेत्र में गंगा सिन्धु नाम की दो नदियाँ हैं । जो नील पर्वत से निकलकर विजयार्द्ध पर्वत की दोनों गुफाओं का उल्लघंन करती हुई सीता नदी में प्रवेश करती है[3]।

पारिजातहरण महाकाव्य के पंचम सर्ग में गंगा आदि नदियों का वर्णन किया गया है - इस प्रयाग भूमि में सूर्य पुत्री यमुना की घनी नील तरंगों से आक्रान्त तथा लाल रंग में तरंगित सरस्वती को अंक में लिए स्वभाव से ही श्वेतवर्ण वाली जो गंगा सुशोभित हो रही है इसकी तुलना में किसने अपनी वाणी प्रस्तुत की है[4]। कवि उमापति द्विवेदी ने अपने पारिजातहरण महाकाव्य में विभिन्न अलंकारों के माध्यम से त्रिवेणी का वर्णन किया है । इस प्रकार कवि की अलंकार प्रियता के साथ उनकी पुराणज्ञता का सुन्दर समन्वय हुआ है ।

उपमा, रूपक अलंकारों के माध्यम से त्रिवेणी वर्णन प्रस्तुत है "तीन रंग वाली तीनों नदियों का मिला तिरंगा प्रवाहरूप त्रिवेणी राधा रूपिणी लता से कलित कल्पतरू स्वरूप आप की खिले फूलों की लाल कान्ति से लसित या स्फुट कामदेव के द्वारा उपरञ्जित श्याम छाया के समान ज्ञात होती है अथवा मेरी

---

1 या रुक्मिणी -- — -- भवतानुस्वैतादृौ ।
"पारिजातहरण महाकाव्य" 1-61

तामात्मनः -- — -- कदापिसत्या ।
"पारिजातहरण महाकाव्य 1-62

2 विहित -- — -- व्याजहार ।
"पारिजातहरण महाकाव्य" 1-63

3 हरिवंश पुराण " 5-267 से 279

4 भाति — — सरस्वती कैः । "पारिजातहरण महाकाव्य"5-42

तमोमयी बुद्धि ६लपल-रंग में वर्णित६ अनुराग से अंकित भगवान् सदाशिव की मूर्तिमती विशद स्वच्छ दया की तुलना कर रही है[1]।

हरिवंश पुराण के षोडश-सर्ग में उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक अलंकारों के माध्यम से शरदऋतु का वर्णन मिलता है --

अथान्तर किसी समय शरद् ऋतु आई सो वह ऐसी जान पड़ती थी मानो वर्षा रूपी स्त्री के चले जाने पर एक दूसरी अपनी ही स्त्री कमल के समान मुख से युक्त होती है उसी प्रकार वह शरद ऋतु भी कमल रूपीमुख से सहित थी। जिस प्रकार स्त्री लाल-लाल अधरोष्ठ से युक्त होती है उसी प्रकार वह शरदऋतु भी बन्धूक के लाल लाल फूल रूपी अधरोष्ठ से युक्त थी। जिस प्रकार स्त्री उज्जवल वस्त्रों से युक्त है उसी प्रकार वह शरद-ऋतों भी उज्जवल मेघ रूपी वस्त्रों से युक्त थी[2]।

पारिजातहरण महाकाव्य के दशम-सर्ग में शरद्-ऋतु का वर्णन किया गया है :-

यह शरद की स्वच्छ जल वाहिनी नदी, पर्वतश्रृंग को चारों ओर से घेरकर बहती दो गण्ड शैलों के बीच पतली धार में निकलती हुई तुम्हारे६कृष्ण के६ विसंकट दोनों स्तनों के बीच लटकती एकलता मुक्तामाल का अनुकरण कर रही है।

---

1 राधालता -- -- -- अनुरागैः।
"पारिजातहरण महाकाव्य" 5-46

2 हरिवंश पुराण" - 16-22

कहीं पके धान हैं, कहीं-कहीं हरी-हरी घास है[1]। यह धवल हंसों की श्रेणी अपने चरण चंचु चोंच की लालिमा से रंगी शुकमाला से मिलकर बरसात बीत जाने पर भी आकाश में इन्द्र धनुष की शोभाला रही है[2]। दूसरी ओर केसर रंग का फूलों से गिरा पराग पटल जिस पर छाया हुआ है तथा कमल पुष्पों से सजा कहीं जिसमें चमकती मछलियों उछल रही है इस प्रकार शरद ऋतु की विशेषताएं लिए सरोवर शोभित हो रही है[3]।

विभिन्न अलंकारों के माध्यम से शरद ऋतु का वर्णन कवि की अलंकार प्रियता के साथ पुराणज्ञता का परिचय देता है। श्लेष तथा उपमा के माध्यम से शरद का वर्णन प्रस्तुत है :-

श्लेष के द्वारा वाग्देवता की तुलना शरदऋतु से कर रहे हैं - श्वेत अम्बर वाली §देवता पक्ष में§ श्वेत वस्त्र से सजी, आरसित बोलते हुए, हंसों की गति संचार से प्रसन्न §देवता पक्ष में§ आष्लसित मन्द या सर्वथा शोभामान हंस §निजवाहन§ की गति संचार से प्रसन्न ऋतु पक्ष में §श्रृंगार हार के पुष्प श्रृंगरार्थ हार के फूलों से अथवा अन्य विधि श्रृंगार तथा हार एवं पुष्प राशि से मनोहर कान्ति वाली §ऋतु पक्ष में§ उल्लास से विकसित कर रखा है। अपने समय के आश्रित बन्धु जीव दुपहरी के फूल पीसने §देवता पक्ष में§आनन्दित कर दिया है

---

1 श्रृंगा -- -- -- तवासलेयम्।
पारिजातहरण महाकाव्य 10-9

केदारिणी -- -- -- डलिनीला।
पारिजातहरण महाकाव्य 10-10

2 एषा -- -- -- आदधाति।
पारिजातहरण महाकाव्य 10-7

3 आपिंजर -- -- -- विशेषः।
पारिजातहरण महाकाव्य 10-14

अपने सिद्धान्त के आश्रित बन्धुओं के जीवों को जिसने ऐसी वाग्देवता ﴾सरस्वती देवी﴿ के समान हमारे आन्नार्थ शरदृतु उदित हो रही है[1]।

हरिवंशपुराण के एकचत्वारिंश सर्ग में उत्प्रेक्षालंकार के माध्यम से समुद्र का वर्णन मिलता है - लहलहाता हुआ समुद्र ऐसा जान पड़ता था मानों मदोन्मत्त दिग्गज ही हो और मछलियों के बार-बार उछलने तथा नीचे आने की लीला से ऐसा जान पड़ता था मानो नेत्रों को कुछ-कुछ खोल रहा हो और बन्द कर रहा हो । वह समुद्र ऊँची उठती हुई अपनी चंचल तरंग रूपी भुजाओं के समूह से ऐसा जान पड़ता था मानो विशाल आकाश से ईर्ष्या कर समस्त दिशाओं से युक्त आकाश का आस्फालन करने के लिए उद्यत हुआ हों[2]।

पारिजातहरण महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में समुद्र का वर्णन किया गया है- जो समुद्र तटवर्ती वनों की घनी छाया से आच्छादित, दोनों प्रान्तों के बीच आस-पास दोनों ओर से छाए घने बादलों से घिरे प्रशस्त आकाश के समान दिखाई दे रहा है, जिसका कोलाहल अनुक्षण बढ़ता जा रहा है जो समुद्र रंग बिरंगे रत्न एवं जल जन्तुओं से चित्रित आशय वाला हो । अपने भीतर उबते डूबते जल के उत्पत्ति प्रलय का अभिनय कर रहा हों । जिस समुद्र का तीनों काल में कभी नाश नहीं होता, ऐसे समुद्र का भगवान कृष्ण ने हृदय तथा सिर से आलिंगन किया[3]।

---

1 श्वेताम्बरा — — — शरन्नः ।
पारिजातहरण महाकाव्य 10-12

2 हरिवंशपुराण -एकचत्वारिंश - 2-3

3 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 1-12

हरिवंश पुराण के एकचत्वारिंश-सर्ग में द्वारिका का वर्णन मिलता है। द्वारिकापुरी बारहयोजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी, वज्रमय कोट के घेरा से युक्त तथा समुद्र रूपी परिखा से घिरी हुई थी। रत्न और स्वर्ण से निर्मित अनेक खण्डों के बड़े-बड़े महलों से आकाश को रोकती हुई वह द्वारिकापुरी आकाश से च्युत अलकापुरी के समान सुशोभित हो रही थी[1]।

सब प्रकार के रत्नों से निर्मित प्राकार और तोरणों से युक्त एवं बाग बगीचों से सहित ऊँचे-ऊँचे मन्दिरों से वह नगरी अत्याधिक सुशोभित हो रही थी[2]।

परिजातहरण महाकाव्य का प्रारम्भ ही द्वारिका के वर्णन से हुआ है। वे भगवान कृष्ण समुद्री रूपी अपने वस्त्रों को सँवारती एवं दैदीप्यमान भूषण रूप रत्नों को धारण कर एक असाधारण नायिका के वेश के धारण करती हुई इस द्वारिकापुरी का शासन करते थे। इस द्वारिकापुरी में गगनचुम्बी अट्टालिकाएं थीं। यह पुरी सर्वोत्तम ऐश्वर्य को धारण करने वाली थी। इस पुरी में जहाँ मरकतमणि विभूषित महल है, वहाँ वर्षाकाल का आनन्द है, जहाँ सूर्यकान्त मणि जटित है वहाँ दिन के समान प्रकाश है नीलम जटित महलों पर अमारात्रि की शोभा है तथा चन्द्रकान्तमणि जटित भवनों पर पूर्ण ज्योत्सना विहार कर रही है। इस पुरी में बहुत अधिक प्रकाशमान दीवारें हैं। इसके गवाक्ष सुवर्णमय है और इसके राजमार्ग सुन्दर सोने के कलश कंगूरों

---

1 "हरिवंशपुराण" एकचत्वारिंश - 19,20

2 "हरिवंशपुराण" एकचत्वारिंश - 25 वाँ

से अलंकृत है । इसके जलयन्त्रागार के फव्वारे पर मयूर, चातक, शुक्र, सारस आदि पक्षी निरन्तर विद्यमान रहते हैं । इस प्रकार इस पुरी से दूर रहकर भी इसका केवल नाम लेने से समस्त ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं । इसके दर्शन से पापों की राशि भी विलीन हो जाती है तथा सेवन से मनुष्य संसार बन्धन से रहित हो मुक्ति का भागी हो जाता है[1]।

विभिन्न अलंकारों के माध्यम से द्वारिका का वर्णन करके कवि उमापति ने अपनी अलंकार प्रियता के साथ पुराणज्ञता का परिचय भी बड़ी कुशलता के साथ दिया है । अनुप्रास का उदाहरण इस द्वारिकापुरी के प्रसंग में :-

"पदे पदेऽस्यास्तु मिथोमनोहरौ सदारमेते सरसी सरोवरौ"[2]

श्लेष तथा उपमा अलंकारों के माध्यम से द्वारिका की बावड़ियों का वर्णन बड़ा ही मनोहर है ।

(वाणी पक्ष में)

फुदकते हुए मीनरूपीमनोहर एवं चंचल नेत्रों वाली क्षण-क्षण में खिसकते हुए वस्त्र रूप शैवाल से सुशोभित होने वाली तथा चिरकाल तक ऊँची जलराशि को उन्नत उरोजों के रूप में धारण करने वाली बावड़ियां नायिकाओं की भांति किसके मन को नहीं हर लेती है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य-1 से 25

2 पारिजातहरण महाकाव्य-1 से 19

(नायिका पक्ष में)

मीन की तरह चंचल नेत्रों वाली एवं क्षण-क्षण में शैवाल की तरह खिसकने वाले वस्त्र को धारण किए हुई चिरकाल तक खड़े ऊँचे स्तनों वाली नायिकाएँ किसका मन नहीं हर लेती[1]।

हरिवंश पुराण के पंचाशतम सर्ग में युद्ध का प्रारम्भ तथा एक पंचाशतम सर्ग में युद्ध का अवान्तर वर्णन मिलता है। इसी प्रकार पारिजातहरण महाकाव्य में भी सोलहवें सर्ग में युद्धोद्योग का वर्णन हुआ है और सत्रहवें सर्ग में नारायण तथा इन्द्र के युद्ध का वर्णन किया गया है।

महान् ओजस्वी इन्द्र द्वारा अचानक अपने विशाल धनुष को बजाकर हाथ से खींची गयी धनुष की प्रत्यंचा कृष्ण के काल तक पहुँचा दी गई। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी अपना धनुष युद्ध के लिए तैयार कर लिया जो टेढ़ा होकर बड़ा ही भयंकर लग रहा था[1]। (इन्द्र के पुत्र पुरन्दर तथा कृष्ण के पुत्र कामदेव) दोनों कालातिपात के न सह सकने वाले रोष से पूर्ण थे। फेंके गए धनुष के समूह के पिंजरे से दोनों की काया प्रच्छन्न हो गई[2]।

पुराणों में स्थान-स्थान पर भगवान् की स्तुति का उल्लेख मिलता है - ब्रह्म-पुराण में कृष्णावतार के पूर्व व्यास के द्वारा विष्णु स्तुति में

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग - 3, 7

2 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग - 13

चतुर्व्यूहात्मक, निर्गुण-शाश्वत और पुराण विष्णु की स्तुति[1]। ब्रह्म पुराण में कालियदमन के प्रसंग में नाग पत्नियों के द्वारा कृष्ण की स्तुति का वर्णन है[2]।

विष्णु पुराण में कालयवन के प्रसंग में मुचुकुन्द के द्वारा कृष्ण की स्तुति का वर्णन है[3]। देवीभागवत में विष्णु स्वयं को देवी के अधीन बनाकर पृथ्वी की रक्षा के लिए उनकी स्तुति करते हैं[4]। भागवत पुराण में कृष्ण जन्म के पूर्व ब्रह्मा और शिव का वर्णन है[5]। पद्म पुराण में वसुदेव और देवकी की कृष्ण के प्रति स्तुति है[6]। पद्मपुराण में बाणासुर के आख्यान में मोहनास्त्र के द्वारा कृष्ण का शिव को मोहित कर देने का उल्लेख है। पार्वती की स्तुति से कृष्ण मोहनास्त्र का उल्लेख है। पार्वती की स्तुति से कृष्ण मोहनास्त्र का संहरण करते हैं[7]।

श्रीमद्भगवद्गीता में देवताओं की उपासना के बारे में बताया गया है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं -- जो-जो सकामी भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस उस भक्त की मैं उस ही देवता के प्रति श्रद्धा को स्थिर करता हूँ[8]।

---

1 ब्रह्मपुराण - 180
2 ब्रह्मपुराण - 185
3 विष्णुपुराण- 2-23
4 देवीभागवत -4, 19
5 भागवतपुराण - 10, 2. 25. -45
6 पद्मपुराण उत्तरखण्ड - 272
7 पद्मपुराण उत्तर खण्ड - 277
8 श्रीमद्भगवद्गीता - अध्याय 8-20 वाँ

श्रीमद्भगवद्गीता से अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं - हे भगवन् ! आप परमब्रह्म और परमधाम एवं परम पवित्र हैं । क्योंकि आपको सब ऋषि जन सनातन, दिव्य पुरुष एवं देवों का भी आदिदेव, अजन्मा एवं सर्वव्यापी कहते हैं[1]।

हे सम्पूर्ण विश्व के स्वामिन् ! आपको अनेक हाथ, उदर, मुख और नेत्रों से युक्त तथा सब ओर से अनन्त रूपों वाला देखता हूँ । हे विश्वरूप ! आपके न अन्त को देखता हूँ, न मध्य को और न आदि को ही देखता हूँ[2]। पारिजातहरण महाकाव्य में स्थान-स्थान पर भगवान् की स्तुति का वर्णन किया गया है । काव्य के पंचम सर्ग में नारद के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की गई है । हे जगन्नाथ ! आपने जो कहा सब सत्य है किन्तु संसारी लोग ठीक कह सकते हैं । हें संसार के तारने वाले ! आपके दर्शन मात्र से कृतार्थ होने वाले हमारे प्रति आपके द्वारा यह प्रयोग योग्य नहीं है[3]।

हे भगवान् ! जाति (जन्म) आकृति क्रिया गुणों से आपका कोई वर्णन नहीं कर सकता क्योंकि नित्य शुद्ध - आत्मा के ये सभी असत्य उपाधि मात्र हैं[4]।

---

1 श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 10-13

2 श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 11-16

3 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 3

4 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 7

पारिजातहरण महाकाव्य के बारहवें सर्ग में गरूड़ के द्वारा कृष्ण की स्तुति का वर्णन हुआ है । गरूड़ श्रीकृष्ण से कहता है - हे परमपूज्य ! यह मेरा शरीर और मेरा मन तुम्हारे चरण कमलों से क्षण भर के लिए भी अलग नहीं हैं । यह तुम्हारा दर्शन इस संसार में मंगल दृष्टि की प्रसन्नता की जो विधि है वह पहले से अधिक प्रसन्न दिखाई दे रही है[1] ।

हे निर्विकार ! तुम्हारी मानव के रूप में जो पद और जो चेष्टाएं हैं वह हम लोगों को प्रसन्नता देने वाली है । पवित्र और अनिर्मल होने पर भी समुद्र से अलग शरत्सरोवर सरोज सहित सुशोभित होता है[2] ।

अट्ठारहवें सर्ग में युद्ध की शान्ति के लिए भगवान् के द्वारा शिव की स्तुति की गई है -

"नरोहरिस्तावदेरः प्रतिश्रुतं विचिन्त्यन् प्राणपर्ण महारणम् ।
निजस्यचाजेय तथाऽऽप्त निर्णयं चिराय दध्यौ विषमें सदाशिवम् ।

पुराणों में यथास्थान यज्ञादि कर्मों का उल्लेख है । श्रीमद्भगवद्गीता में यज्ञादि कर्मों का उल्लेख हुआ है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 38
2 पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टदश सर्ग - 2

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं - तुम शास्त्र विधि से नियत किए हुए स्वधर्म रूप कर्म को करो, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है । हे अर्जुन ! बन्धन के भय से भी कर्मों का त्याग करना योग्य नहीं है । क्योंकि यज्ञ अर्थात् विष्णु के विभिन्न किए हुए कर्म के सिवाय अन्य कर्म में लगा हुआ ही यह मनुष्य कर्मों द्वारा बँधता है । इस यज्ञ द्वारा तुम लोग वृद्धि को प्राप्त होवों यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित कामनाओं को देने वाली हो वे इस यज्ञ द्वारा देवताओं की उन्नति करों देवता तुम लोगों की उन्नति करें[1] ।

श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय चार में फलसहित प्रथम - पृथक यज्ञों का का कथन है । श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं, हे अर्जुन यज्ञों के परिणामस्वरूप ज्ञानामृत के भोगने वाले योगी जन सनातन पर ब्रह्मा परमात्मा को प्राप्त होते हैं और यज्ञ सहित पुरुष को यह मनुष्य लोक भी सुखदायक नहीं हैं फिर परलोक कैसे सुखदायक होगा[2] ।

और हे अर्जुन सांसारिक वस्तुओं से सिद्ध होने वाले यज्ञ से ज्ञानरूप यज्ञ सब प्रकार से श्रेष्ठ हैं क्योंकि हे पार्थ ! सम्पूर्ण यावन्मात्र कर्मज्ञान में शेष होते हैं अर्थात् ज्ञान उनकी पराकाष्ठा है[3] ।

---

1 श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 3-8-11।

2 श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 4-31।

3 श्रीमद्भगवद्गीता - अध्याय 4-33

पारिजातहरण महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में यज्ञ का विशद वर्णन किया है ।

परम योग्य वैदिकों के प्रतिपादित विधान एवं मन्त्र पाठ से सर्वाधिक ऐश्वर्य से शोभित तथा अवर्णनीय प्रीति को उत्पन्न करने वाले इस पर्वत पर यज्ञ स्वरूप भगवान् के द्वारा अधिकार प्राप्त कर, दक्षिणास्वरूप दक्षिणस्वभाव वाली रुक्मिणी जी यज्ञ करने के हेतु प्रस्तुत हुई[1] । यज्ञ की इतिकर्तव्यता का वर्णन भी इसी सर्ग में विस्तार के साथ किया गया है । मर्त्यलोकवासी मानगण पृथ्वी से उपजने वाले अन्नरसादि रूप सम्पत्ति से तृप्ति पाते हैं किन्तु स्वर्ग लोकीय अदृष्ट देवगण की तृप्ति के लिए, नियमरूप यज्ञ ही हैं जो वेदों के द्वारा शिक्षित हैं[2] । यह यज्ञ ही है जो वेदों के द्वारा अनुशासित एक कर्म विशेष हैं ।

सत्पुरुषों ने सतत् इसका अनुष्ठान किया है इसलिए इसकी सफलता सिद्ध है तो फिर कौन इसको न करें । कर्मों के परिणाम तक ठीक पहुँचने वाली जिन विद्वानों की बुद्धि होती है, वे इष्ट सुख प्राप्ति के लिए इन यज्ञों को ही अपनाते हैं क्योंकि अन्ततः कर्मों के द्वारा ही संसार की गति नियमित है[3] । मर्त्यविहित यज्ञों का वर्णन भी पारिजातहरण महाकाव्य में मिलता है - हे (इन्द्र) देवलोक के स्वामी होते हुए भी पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले औषधि, रस आदि विषय विशेष जो देवमुख अग्नि में हवन रूप से

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थसर्ग - 29,30

2 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 31

3 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग 32-40

दिया जाता है उससे तृप्त होते हैं अर्थात् मर्त्य विहित यज्ञों से ही उनकी तृप्ति होती है[1]। सोमरस की आहुति का वर्णन भी पारिजातहरण महाकाव्य में मिलता है यह संसार अग्निस्थली है जिसमें सोमरस रूपी चेतना ही आहुति दी गई है[2]। पहले यज्ञ में अधिष्ठित विराट पुरुष प्रजा के लिए उत्पन्न किया गया अब पुत्र बनकर नरकभित् के परिणाम को प्राप्त होता है[3]।

कृष्ण का स्वरूप भारतीय संस्कृति और साहित्य का एक प्राचीन विषय है। हरिवंश के विष्णु पर्व में कृष्ण की बाल्यावस्था से लेकर द्वारिका में उनके राज्यकाल तक का विस्तृत वर्णन मिलता है। हरिवंश के भविष्य पर्व में भी कृष्ण के जीवन से सम्बद्ध अनेक वृत्तान्त मिलते हैं। भारतीय साहित्य में कृष्ण का स्थान महत्वपूर्ण है। कृष्ण के चरित्र विस्तार का क्षेत्र व्यापक है। उपनिषद् से लेकर पुराणों तक इस विस्तृत क्षेत्र में कृष्ण का व्यक्तित्व विकसित हुआ है। पुराणों में कृष्ण चरित निश्चित रूप धारण करता है। कृष्ण के इस प्राचीन व्यक्तित्व से वैष्णव भक्ति का निकट सम्बन्ध है। कृष्ण चरित्र एक प्राचीन वृतान्त है। अनेक ग्रन्थ कृष्ण के चरित्र से किसी न किसी प्रकार परिचय की सूचना देते हैं। प्रायः सभी पुराणों में कृष्ण चरित्र का प्रारम्भ विष्णु की स्तुति तथा कृष्ण के वैष्णव स्वरूप पर प्रकाश डालने के उपरान्त होता है।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग 78
2 पारिजातहरण महाकाव्य विंश सर्ग - 11
3 पारिजातहरण महाकाव्य विंश सर्ग - 12

हरिवंश में कृष्ण के कालियदमन का वृतान्त है[1]।

ब्रह्म्म पुराण में कृष्णावतार के पूर्व व्यास के द्वारा विष्णु स्तुति है[2]। कालियदमन के प्रसंग में नागपत्नियों के द्वारा कृष्ण की स्तुति का वर्णन है[3]। विष्णुपुराण के कालयवन के प्रसंग में विष्णुपुराण में मुचुकुन्द के द्वारा कृष्ण की स्तुति का वर्णन है[4]।

देवी भागवत में भी पृथ्वी की रक्षा के लिए कृष्ण की स्तुति का वर्णन मिलता है[5]। पद्मपुराण में वसुदेव और देवकी की कृष्ण के प्रति स्तुति है[6]। अग्निपुराण में कृष्ण चरित्र का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त रूप से हुआ है। इस पुराण का संक्षिप्त हरिवंश वर्णन[7] हरिवंश के कृष्ण चरित्र से बहुत समानता रखता है।

विविध पुराणों के कृष्ण चरित्र में हरिवंश के कृष्ण चरित्र के स्थान का निर्णय अपेक्षित है। कृष्ण सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को प्रस्तुत करने के

---

1 हरिवंश पुराण - 2. 12

2 ब्रह्म्मपुराण - 180

3 ब्रह्म्मपुराण - 185

4 विष्णुपुराण - 2. 23

5 देवी भागवत - 4-19

6 पद्मपुराण उत्तरखण्ड - 272

7 अग्निपुराण - अध्याय 13

कारण हरिवंश के कृष्ण चरित्र का विशेष स्थान है । महाभारत का पर्वसंग्रह पर्व हरिवंश के विष्णुपर्व में कृष्ण कथा का निर्देश करता है[1]। पाँचवाँ चरण हरिवंश में कृष्ण चरित्र का उल्लेख करता है[2]।

वैष्णव पुराणों में विष्णु का व्यक्तित्व सांख्य, योग तथा वेदान्त की दार्शनिक विचार धाराओं के आचरण में व्यापक हो गया है । विष्णु पुराण में सांख्य, योग, वेदान्त का समन्वय प्राचीन काल में ही हो गया था । गीता में कृष्ण का सांख्य, योग और वेदान्तमय रूप को सूचित करता है । कृष्ण ज्ञानयोग के द्वारा सांख्य की निष्ठा तथा कर्मयोग के द्वारा योग की निष्ठा तथा का वर्णन करते हैं[3]।

पारिजातहरण महाकाव्य में भी कृष्ण के चरित्र का वर्णन पुराणों में वर्णित कृष्ण के चरित्र के आधार पर ही किया गया है । पारिजातहरण महाकाव्य के प्रथम सर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण को सर्वेश्वर तथा समस्त जगत् के नियन्ता कहा गया है - सर्वथा स्वाधीन और समस्त जगत् के नियन्ता सर्वेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने मनु सम्बन्धिनी या मानव सम्बन्धिनी समस्त सम्पत्ति को उपाधि रूप में धारण कर अर्थात् कपट मानुष होकर भूतल को

---

1 शिशोश्चर्या विष्णोः कंसवधस्तया
महाभारत 1.2-82-83 विष्णु पुराण

2 यत्र कृष्णस्य कर्माणि श्रूयन्ते जन्मना सह
महाभारत -1-2 अधिक पाठ
अंशावतरणं विष्णोर्यदिदं त्रिदशैः कृतम ।
क्षयार्थं पृथिवी द्राणां सर्वमेतदकारणम् ।।
हरिवंश पुराण 1-54-13

3 लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगे न आख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ।।
श्रीमद्भगवद्गीता-अध्याय 3-3

कंस आदि दानवों के विनाश द्वारा स्वस्थ कर अपनी बसायी कुशस्थली (द्वारिका) को सभी सुखों से पूर्ण कर दिया[1]। जैसे कि पुराणों में यथास्थान कृष्ण की स्तुतियों का वर्णन मिलता है वैसे ही पारिजातहरण महाकाव्य में यथास्थान कृष्ण की स्तुतियों का भी वर्णन मिलता है । पंचम सर्ग में नारद के द्वारा भगवान कृष्ण की स्तुति की गई है । हे प्रभो । हमारे जैसे स्थूल दृष्टि वालों की दर्शन लालसा पूर्ण करने के लिए या निजभक्तों के प्रत्यक्ष उद्धारार्थ ऐसा सर्वोत्कृष्ट दिव्य अवतार धारण किए हुये आप ऐसा (नर साधारण साध्य) व्यवहार करते हुये अपने को छिपा क्यों रहे हो[2]। द्वादश सर्ग में गरूड़ के द्वारा भगवान् कृष्ण की स्तुति की गई है – हे निर्विकार ! तुम्हारी मानव के रूप में जो पद और जो चेष्टाएं हैं, वह हम लोगों को प्रसन्नता देने वाली है । पवित्र और अनिर्मल होने पर भी समुद्र से अलग शरत्सरोवर सरोज सहित सुशोभित होता है[3]। दूर से गिरी हुई जल की बूँदे मिट्टी में अनिल में या पृथ्वी में और कहीं लीन हो जाएं किन्तु परमार्थतः वह पृथक नहीं है उसी प्रकार तुम एक ही जगत् के रचयिता हो[4]। बीसवें सर्ग में नारद के द्वारा नारायण की स्तुति की गई है । गदा, पद्म, शंख, चक्र से मीनादि अनेक अवतारों से क्रीड़ा के लिए न दिखाई देने वाले भी

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य – प्रथम सर्ग – 1

2 पारिजातहरण महाकाव्य – पंचम सर्ग – 6

3 पारिजातहरण महाकाव्य – द्वादश सर्ग – 39

4 पारिजातहरण महाकाव्य – द्वादश सर्ग – 43

दिखाई पड़ने वाले स्वरूप होते हुए भी ज्ञान के काम रूप में तुम्हारी आत्मा होती है । हे भगवन् ! तुम्हें नमस्कार हो[1] । मुनि के मुख से इस गीत स्तोत्र को सुनकर अभय की मुद्रा को धारण करते हुए कृष्ण बोले तुम्हें क्या चाहिए मेरी स्तुति पढ़ने वालों का अभय निश्चित हो जाता है[2] ।

पारिजातहरण महाकाव्य के नायक कृष्ण है । इस महाकाव्य में कृष्ण को ईश्वर के रूप में माना गया है, वह समस्त जगत के नियन्ता है तथा सब कुछ जानने वाले हैं - आठवें सर्ग में कहा गया है विज्ञान ﴾अखिल तत्त्व ज्ञान﴿ के आधार पर भगवान कृष्ण का सत्यभामा को सही - सही कोपयुक्त जानकर विशेष उत्सुकता से उन्हें मनाने के लिए उनके घर की ओर चल दिए[3] । दसवें सर्ग में कृष्ण का सांख्य दर्शन बताया गया है - कृष्ण नारद से कहते हैं - जो कुछ भी मनुष्य करते हैं कराते हैं उस कार्य के कारण प्रकृतिगत गुणों सत्त्व रजस, तमोरूप से सर्वथा प्रसूत, बुद्धिधिकारमय निजी भाव ﴾मानस भाव﴿मय होते हैं । उसी के अनुसार प्राप्त परिणाम में चित्त को प्रकाशित करते हैं﴿ कारण गुणानुरूप ही कार्य सिद्धि प्रसिद्ध है[4] । एकादश सर्ग में वर्णित कर्मयोग तथा ज्ञानयोग का एक उदाहरण प्रस्तुत है - जो प्रभु दूषित दृष्टि वाले ﴾इन्द्र के﴿ तथा हमारे ﴾नारद के﴿ भी अधिक उपकारार्थ तथा कर्मयोग और ज्ञान योगात्मक दोनों मार्गों की शिक्षा देने के लिए निजी माया से ही जन्मना मनुष्य बने हुए हैं । अज्ञान से ही आप उस नारायण के ऊपर आक्षेप कर रहे हैं । उनकी निन्दा मूर्खता ही है[5] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - विंश सर्ग - 30

2 पारिजातहरण महाकाव्य - विंश सर्ग - 35

3 पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टम सर्ग - 1

4 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 63

5 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 85

पारिजातहरण महाकाव्य में अत्यन्त प्रसिद्ध पौराणिक आख्यानों का भी उल्लेख किया है । अत्यन्त प्रसिद्ध पौराणिक आख्यानों के अतिरिक्त अत्यन्त अपरिचित कथाओं का भी उल्लेख इस काव्य में किया गया है । समुद्रवर्णन प्रसंग में कवि ने आदि पुरुष चन्द्रमा को समुद्र का पुत्र बताया है- चन्द्रवंश के भूषण भगवान् कृष्ण को गिरि शिखर पर बैठे देख जोरों में लहराता हुआ समुद्र मानों लहरों के बहाने बढ़े आनन्दोल्लास में उछलने लगा इसलिए कि भगवान के वंश के आदि पुरुष चन्द्रमा समुद्र के ही पुत्र है फिर अपने वंश के भूषणीभूत भगवान् को देख, समुद्र क्यों न तरंगित हो[1] । चतुर्थ सर्ग में भगवान् कृष्ण रुक्मिणी को अपने बालचरित्र का प्रसंग आदि सुना रहे हैं :-

अनेक योद्धाओं को पराजित कर इच्छानुसार अपने हर लाने की गाथा तथा उसी कारण शिशुपाल का अपमान एवं अन्ततः उसको मार देने आदि का वृत्तान्त सुनती अपने ही जड़ से उत्पन्न वर के कारण अपने ही भाई रुक्मि का पराजय एवं अपने द्वारा उसकी रक्षा आदि का वृतान्त उत्सुकता से पूछ रही थी[2] हे भगवन् आपने कछुआ हो, पृथ्वी को धारण किया, सूकर हो पृथ्वी को फैलाया, सिंह बनकर हिरण्यकशिपु जैसे अजेय दैत्य को मारा, कपटवामन बन त्रिलोक को दो पग में ही नाप लिया । तपस्वी ब्राह्मण का अवतार धारण करे बहुत बड़े हुए क्षत्रिय राजमण्डल को प्रमथित किया । फिर स्वयं क्षत्रिय राम होकर अपने ही अवतार इस परशुराम को पराजित कर, ब्राह्मण कुलोत्पन्न लोक विजयी दशमुख रावण को समूल उखाड़ डाला[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 66

2 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 74

3 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 11, 12

त्रिवेणी के वर्णन के प्रसंग में जिसके लिए सारे देवता स्पृहा करते हैं जिसके लिए भगवान् शंकर भी पार्वती कृत अवमान को सहन करते तथा सगर की सन्तानें जिसके लिए कर्तव्य का आदेश देती है । वह वही गंगा यमुना और सरस्वती से युक्त शोभित हो रही है[1] ।

रुक्मिणी देवी की कही अपने अनुराग से रंजित चित्तवृत्ति को सुनकर सभी गुणियों से प्रशंसित रीति वाली अपनी वीणा की शिक्षा गुरु (पौराणिक कथा के अनुसार वीणा बजाने की अन्तिम शिक्षा रुक्मिणी ने उन्हें दिया था था फिर बैकुण्ठनाथ ने इन्हें बीणाचार्य की उपाधि से विभूषित किया था । उस रुक्मिणी में नारद जी ने अपनी आत्यन्तिक भक्ति दिखाई[2] । क्रुद्धसत्यभामा नारद से कृष्ण के बारे में कहती है - हे मुने ! यह राधिकारमण नाम से प्रसिद्ध थे । इनकी राधारमणता को पहले ही कुब्जा ने फीका कर दिया था[3] । श्री कृष्ण सत्यभामा से कहते हैं - घोर तपस्याओं से आराधित भगवान शंकर से जिस मृत संजीवनी विद्या को शुक्राचार्य ने प्राप्त किया है केवल मेरे अर्थसिद्धि के लिए विधाता की दी हुई स्वभाव सिद्ध वह विद्या तुम्हारी आंखों में ही है[4] । इन्द्र नारद से कृष्ण के बारे में कहते हैं - मेरे अंश को पृथ्वी पर उतार कर अर्जुन नामक मनुष्य में उसे रख मित्रता के बहाने उन्हें भी सेवक बनाकर हमें रिक्त (निस्सार) जान पराभव (दबा देने) के योग्य देख रहे हैं[5] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 57
2 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 35
3 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तम सर्ग - 44
4 पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टम सर्ग - 59
5 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 57

नारद इन्द्र से कहते हैं – आपकी भयंकर वृष्टि के बचाने उन्होंने (कृष्ण ने) बाल्यकाल में जो अद्भुत विलास स्वरूप नख पर नगराज गोवर्धन को उठा लिया था, उस लीला को जानते हुए भी आप उन्हें क्यों भूल रहे हैं[1]। बारहवें सर्ग में भगवान कृष्ण कहते हैं – मदिरा की सखी तथा कामदेव को जन्म देने वाली रमा (लक्ष्मी) मेरे कृष्ण के बिना कुछ भी नहीं है इसलिए सम्पत्ति की उपेक्षा करके तथा समुद्र से उत्पन्न होने वाली लक्ष्मी की उपेक्षा करके शंकर विष की पी गए[2]। कश्यप ऋषि भगवान् कृष्ण तथा इन्द्र से कहते हैं – हे इन्द्र ! जननी की स्तुति के लिए तुम्हारे द्वारा यह श्लोक भी गाया गया था । महिष के मर्दन में शान्ति के लिए देवताओं के साथ व्यासोक्ति से वृद्धि को प्राप्त सप्तशती में है तुम दोनों उसको फिर से स्मरण करो[3]। वह स्तुति मार्कण्डेय की दुर्गासप्तशती में भी कही गयी है । तथा पारिजातहरण महाकाव्य के 20 वें सर्ग में कही गई है –

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां, तेषां यशांसि न च सीदतिधर्मवर्ग:
धन्यास्त एवं निभृतात्मज भृत्यदारा, येषां सदाऽभ्युदयदा भवतीप्रसन्ना[4]

बीसवें सर्ग में कश्यप ऋषि के द्वारा भगवान् – कृष्ण की स्तुति के विषय में कहा गया है – शेषनाग के फन पर शयन है जिसका, अपनी नाभि से उत्पन्न कमल से उत्पन्न, ब्रह्मा, ब्रह्मा से उत्पन्न जो तेज है वह तेज तुम्हारा है, अनवस्था (पृथ्वी में भुखमरी बाढ़ आदि) इस रूपी ग्रह से ग्रस्त भूभार की धारा के लिए कर्मावतार धारण करने वाले माया के तुम आश्रय हो[5]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य – एकादश सर्ग – 96
2 पारिजातहरण महाकाव्य – द्वादश सर्ग – 9
3 पारिजातहरण महाकाव्य – विंश सर्ग – 20
4 पारिजातहरण महाकाव्य – विंश सर्ग – 21
5 पारिजातहरण महाकाव्य – विंश सर्ग – 31

इस प्रकार इन पौराणिक आख्यानों का वर्णन कवि ने अपने पारिजातहरण महाकाव्य में कथा को आगे बढ़ाने के लिए किया है ।

विष्णु पुराण में यथा स्थान सूक्तियों का वर्णन मिलता है । विष्णु-पुराण को कतिपय सूक्तियों का वर्णन प्रस्तुत है -

"मूढानामेव भवति क्रोधो ज्ञानवतां कुतः"[1] । दान के बारे में कहा गया है कि बिना दान किए जो भोजन करता है वह विष खाता है[2] । प्रिय होने पर भी जो हितकर न हो उसे न कहे । अच्छा है हितकर कहना यद्यपि वह अत्यन्त अप्रिय हो[3] । सदाचार का उल्लघंन करके कोई कल्याण नहीं पा सकता[4] ।

भागवत-पुराण तथा श्रीमद्भगवद्गीता में भी यथास्थान सूक्तियों का वर्णन मिलता है - जिस प्रकार जलयान से समुद्र पार करते हैं वैसे ही सभी आश्रमों का भरण करते हुए गृहस्थ अपने आश्रम में दुःख के समुद्र के पार जाता है[5] । जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करता वह असभ्य है[6] । हम सभी ईश्वर के लिए बलि वैसे ही वाहन करते हैं जैसे रस्सी से नथा हुआ पशु मनुष्य के लिए[7] ।

---

1 विष्णु पुराण - 1-1-17

2 विष्णु पुराण - 3-11-72

3 विष्णु पुराण - 3-12-44

4 विष्णु पुराण - 3-17-2

5 श्रीभागवत पुराण - 31-4-17

6 भागवत पुराण - 3. 17. 12

7 भागवत पुराण - 5. 1. 14

श्री मद्भगवद्गीता में आत्मा के लिए कहा गया है कि यह ‌‌{आत्मा} न उत्पन्न होता है और न कभी मरता है । यह अज, नित्य शाश्वतऔर पुरातन है । शरीर के मारे जाने पर यह {आत्मा} नहीं मरता[1] । कर्मों के द्वारा ही जनक आदि को पूर्ण सिद्धि मिली[2] । "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"[3] ।

पारिजातहरण महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में यथा स्थान सूक्तियों का वर्णन किया गया है । काव्य के चतुर्थ सर्ग में यज्ञ के वर्णन में कहा गया है - "कर्मों के द्वारा ही संसार की गति नियमित है ।"[4] चतुर्थ सर्ग में गृहस्थ धर्म का निरूपण किया गया है - "अतिथि सेवा से बढ़कर गृहस्थ का दूसरा धर्म ही नहीं है[5] । भगवान कृष्ण ने नारद को अलभ्यनिधि के समान समझा क्योंकि कुटुम्बियों को महात्माओं के दर्शन से बढ़कर दूसरी वस्तु कमनीयनहीं होती[6] । तथा सत्पुरुषों का ऐसा करना स्वभाव ही होता है[7] । प्रस्ताव के बिना सन्तों का अनुग्रह किसी पर नहीं होता[8] । सन्तों का दर्शन निष्पाप ही प्राप्त करते हैं[9] ।

---

1 श्रीमद्भगवद्गीता - 2.20
2 श्रीमद्भगवद्गीता - 3.20
3 श्रीमद्भगवद्गीता - 2,47
4 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 40
5 पारिजातहरणमहाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 104
6 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 105
7 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 106
8 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 107
9 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 111

नारद श्रीकृष्ण से कहते हैं :-

आपके वचनामृत का पान कर पाता तो स्वर्ग में भी कुछ नहीं रह जाता क्योंकि अमृत लाभ ही स्वर्ग की विशेषता है[1]। इन्द्र देवताओं का स्वामित्व जो गौरवगर्त है उसमें लज्जा से डूबे है। अर्थात देवस्वामी होकर मैं किसी दूसरे की सहायता कैसे मांगू इस लज्जा से प्रत्यक्ष आकर आपसे याचना नहीं करते। यह लक्ष्मी का स्वभाव ही है कि बड़े विद्वों को भी हठात् मोह {अज्ञान} में डाल देती है[2]। सत्पुरुष दूसरों के कर्तव्यों की अपेक्षा न कर, व्यवहार करते हुए उपस्थित अवसर नहीं खोते[3]। काव्य के 20वें सर्ग में कहा गया है - जिस प्रकार बड़ी नदियों का सरा जल सूख जाए तो क्या उसकी सम्पूर्ण नालियां उसको भर सकेगीं[4]।

आनन्दवर्धन कृत ध्वन्यालोक में हरिवंश को महाभारत का उपसंहार पर्व माना है। ध्वन्यालोक के इस स्थल पर हरिवंश में शान्त रस का प्राधान्य बतलाया गया है[5]। पारिजातहरण महाकाव्य भी शान्त रस प्रधान काव्य है। इस काव्य में स्थान-स्थान पर शान्त रस अथवा भक्ति रस का चित्रण मिलता है। हरि के यश का गान करना ही कवि का काव्य लिखने का मुख्य उद्देश्य था अतः इनके इस काव्य में रस का उतना अच्छा चित्रण नहीं हो पाया है, फिर भी जगह-जगह पर ईश्वर की भक्ति और

---

1 पारिजात हरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 119
2 पारिजात हरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 31
3 पारिजात हरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 32
4 पारिजात हरण महाकाव्य - विंश सर्ग - 18
5 "सत्यं शान्तस्यैव रसस्यांगित्वं महाभारते मोक्षस्य च सर्व पुरुषार्थेभ्यः प्राधान्यम्" अयं च निगूढरमणीयोऽर्थो महाभारतावसाने हरिवंश - वर्णनेन समाप्तिं विदधता कवि वेधसा कृष्ण द्वैपायनेन सम्यक् स्फुटीकृतः।"

ध्वन्यालोक 425-426

जीवों के इस संसार में बार-बार जन्म लेने और मरण के उदाहरण से ऐसा ज्ञात होता है कि यह काव्य शान्त रस अथवा भक्ति रस प्रधान काव्य है । शान्त रस का स्थायी-भाव निर्वेद है । मोक्ष रूपी परमपुरूषार्थ की प्राप्ति शान्त रस से होती है । मोक्ष रूप परमपुरूषार्थ की प्राप्ति शान्त रस से होती है । शान्त रस काव्य के लिए परमावश्यक है शान्त व रस का उद्दीपन-विभाव संसार की असारता है । काव्यं के पंचम सर्ग में नारद के द्वारा भगवान कृष्ण की स्तुति शान्त-रस का उदाहरण है - हे मुक्ति नाथ ! अपने शरीर पर रेंगते क्षुद्राति क्षुद्र कीटों के समान संसार सारे जीवों को विशेष आस्था न होने के कारण जब तक आप उपेक्षित किए रहते हो अर्थात उनकी ओर ध्यान नहीं देते तब तक ये संसार में आते जाते बन्धन में पड़े रहते हैं जब कभी उनकी क्रियाओं या अपनी इच्छा से ही आपकी दृष्टि के वे लक्ष्य बन जाते हैं तब बन्धन रहित मुक्त हो जाते हैं यही उनका मोक्ष है[1] ।

इस श्लोक में स्थायी भाव निर्वेद है और उद्दीपन विभाव जीवों का मुक्त हो जाना है ।

काव्य के छठे सर्ग में रुक्मिणी के द्वारा कहा गया यह वचन शान्त रस का उदाहरण है - अपने पति से अलग सारे जगत् को भी कुछ नहीं समझती ऐसी सतियों के लिए यह त्रिलोक आनन्दमय हो उठता क्योंकि यह भेद संसरण अर्थात विविध व्यवहारों वाला यह संसार है इस बन्धन को तोड़कर ही प्राणी परम सुख भोगता है[2] । यहाँ स्थायी भाव निर्वेद है तथा सांसारिक बन्धन को तोड़कर प्राणी का परम सुख भोगना उद्दीपन विभाव है ।

---

1 पारिजातहरण - पंचम सर्ग - 2।

2 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 28

पुराणों में दार्शनिक विचार धारा दर्शन ग्रन्थों से अलग अपना अस्तित्व बनाए रखने के कारण एक स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है । दार्शनिक विवेचन के अन्तर्गत कहीं पर सृष्टि के आदि स्वरूप की ओर प्रकाश डाला गया है, कहीं जीव, जगत् और माया के सिद्धान्तों का उल्लेख है । विष्णु-पुराण, कूर्मपुराण, वराह पुराण तथा हरिवंश पुराण में सांख्य प्रमुख स्थान रखता है। हरिवंश पुराण का दार्शनिक तत्त्व पौराणिक दर्शन के क्षेत्र में महत्त्व रखता है । इस पुराण के भविष्य पर्व के अन्तर्गत सात से बत्तीसवें अध्याय तक आदि सृष्टि का और प्रकृति पुरुषात्मक विष्णु के स्वरूप का चिन्तन है । इस स्थल में सांख्य और योग के विषयों पर अलग-अलग विचार प्रस्तुत किए गये हैं ।

हरिवंश में सांख्य विषयक विचार अनेक स्थलों में मिलते हैं । इस पुराण में विष्णु पर्व के अन्तर्गत अर्जुन के प्रति कृष्ण की उक्ति में सांख्य प्रकृति का विवेचन हुआ है । प्रकृति को व्यक्ताव्यक्त और सनातन कहा गया है । इसमें प्रवेश कर योगविद् मुक्तावस्था को प्राप्त होते हैं[1]। प्रकृति के इस स्वरूप का विवेचन गीता[2] में हुआ है । हरिवंश में इस प्रकृति को परम ब्रह्म[3] कहा गया है । गीता में प्रकृति को सांख्य पुरुष की सहचरी बनाकर अनादि कहा गया है । जगत के विकार प्रकृति से ही उद्भूत माने गए हैं[4]। हरिवंश में प्रकृति को विकृतात्मिका कहा गया है । विष्णु पर्व[5] में वरुण कृष्ण को

---

1 प्रकृतिः सा मम परा व्यक्ताव्यक्ता सनातनी ।
यां प्रविश्य भवन्तीह मुक्ता योग विदुत्तम : ।।
हरिवंश पुराण 2. 144. 10

2 महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिता: ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ।। श्रीमद्भगवद्गीता 9-13

3 हरिवंश पुराण 2-114-1

4 श्रीमद्भगवद्गीता 13-19

5 पूर्वं हिं या त्वया सृष्टा प्रकृतिर्विकृतात्मिकता
हरिवंश पुराण 2. 127. 76

विकृतात्मिकता प्रकृति का सृष्टा बतलाते हैं । इसी प्रसंग में कृष्ण को प्रकृति के विकारों के विकार का शमयिता कहा गया है[1] ।

प्रकृति का विकार दृश्य जगत् है । इस जगत् के विकार दुष्ट जन है । इनके शमन के लिए कृष्ण का बार-बार अवतार ग्रहण ही प्रकृति के विकारों का शमन है ।

हरिवंश भविष्य-पर्व में[2] प्रकृति को कारण कहा गया है, जिससे महत् की उत्पत्ति हुई । कृष्ण को उस प्रकृति का "कारणात्मक प्रधान पुरुष" कहा गया है । महत् से अहंकार की उत्पत्ति होती है । अहंकार से पंच तन्मात्राएं तथा पंचमहाभूत उत्पन्न होते हैं । पुरुष रूप कृष्ण को इन कारणों का परिणाम कहा गया है[3] ।

हरिवंश में कृष्ण का सांख्य पुरुष से एकीभाव विशुद्ध सांख्यमत का पोषण नहीं करता । इस पुराण के सांख्य-पुरुष रूप कृष्ण में वेदान्त के परम ब्रह्म का समन्वय हुआ है । कृष्ण को प्रकृति का सृष्टा कहने के साथ ही प्रकृति के विकारों के विकार का शमयिता कहा है[4] । गीता में भी पुरुष रूप कृष्ण में परब्रह्म का एकीभाव दृष्टिगोचर होता है । अज और अव्यय होने पर भी प्रकृति को अधिष्ठित करके जगत् का निर्माण करने वाले कृष्ण को सांख्य का विशुद्ध पुरुष नहीं कहा जा सकता[5] ।

---

1 हरिवंश पुराण - 2. 127. 8 विष्णु पर्व

2 हरिवंश पुराण - 3. 8818-20 भविष्यपर्व

3 हरिवंश पुराण - 3. 88. 18-23 - भविष्यपर्व

4 हरिवंश पुराण 2. 127. 76, 81-82

5 अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोअपि सन् ।
प्रकृति स्वामधिष्ठाय संभावाम्यात्ममायया ।"

गीता-4-6

हरिवंश में ब्राह्मण से पुरुष की उत्पत्ति बतलाई गई है[1]। इस पुरुष को सभी ओर से बाहु तथा पादयुक्त, सर्वत्र नेत्र सिर तथा मुख वाला सर्वज्ञात तथा सर्वव्याप्त कहा गया है[2]। गीता के अन्तर्गत ब्रह्म के लक्षणों के कथन में उन्हीं विशेषणों का प्रयोग हुआ जो हरिवंश में सांख्य पुरुष के लिए प्रयुक्त लिए गये हैं[3]।

हरिवंश में पुरुष श्वेताश्वर की भाँति पुरुष सूक्त के पुरुष का बाचक है। पुरुष का कारण ब्रह्म माना गया है। सांख्य पुरुष से अजन्मा होने के कारण स्वयं कारण और कार्य है। अतः यह पुरुष सांख्य पुरुष से भिन्न तथा ब्रह्मा से उत्पन्न है[4]। मनु स्मृति में कारण रूप सदसदात्मक ब्रह्म से प्रकृति एवं पुरुष की उत्पत्ति बतलाई गई है[5]। मनुस्मृति की यह विचारधारा हरिवंश से पूर्णतः समानता रखती है। हरिवंश का पुरुष सदसदात्मक ब्रह्म से उत्पन्न होने पर भी सांख्य पुरुष से भिन्न पुरुष है।

भागवत पुराण में प्रकृति को कारण रूप तथा पुरूष को कार्य रूप माना है। कार्य रूप होने के कारण सुख तथा दुःख के भोग का दायित्व पुरूष पर है[6]।

---

1 हरिवंश पुराण 3-16-2-3

2 हरिवंश पुराण 3-16-6

3 सर्वतः पाणि पादन्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।
गीता-13-13
वायु पुराण 14.12 यही श्लोक
कूर्म पुराण 2.3.2 यही श्लोक
ब्रह्म पुराण 235-30 यही श्लोक

4 हरिवंश पुराण

5 मनुस्मृति - 1-11

6 कार्यकारण कर्तृत्वे कारणं प्रकृति विदुः ।
भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुरुषं प्रकृतेः परमं ।।
-भागवतपुराण- 3.26.8

पारिजात हरण महाकाव्य में पुराणों के समान ही विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का उल्लेख हुआ है, जिसमें सांख्य सिद्धान्तों का उल्लेख कुछ अधिक हुआ है। पारिजात हरण महाकाव्य में सांख्य की इस प्रकृति के बारे में कहा गया है - भगवन् ! यह तत्वात्मिका (सांख्यमतानुसार 24 तत्वों में फैली हुई) अन्य मतों में तद्धर्म, तत्शक्ति आदि रूपों में मानी जाने वाली जडा प्रकृति यामाया आपके दर्शनार्थ आपकी अधिष्ठित भूमिका में प्रवेश करते हुए लोगों को उन-उन सत्व रज तम रूप गुणों का दरवाजा छेंककर सम्मुख, निजी विलासों से छला करती है[2]। पारिजातहरण महाकाव्य के पंचम सर्ग में पृथ्वी आदि का आदि कारण भगवान् कृष्ण की असाधारण इच्छा ही बतलाई गई है[3]। काव्य में त्रिगुणात्मिका प्रकृति के बारे में बताया गया है कि संसार के उद्भव स्थिति प्रलय को करने वाली जो त्रिगुणात्मिका प्रकृति है जिसके वर्णन में (एकामजां लोहित शुक्ल कृष्णाम् इत्यादि वाक्य है, वही त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित हो रही है[4]। पारिजातहरण महाकाव्य में सांख्य सिद्धान्तों के इन प्रमाणों के विषय में कहा गया है। प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम प्रमाण से भी इसकी तथ्यता पर विश्वास कर बुद्धिमान पुरुष इष्ट सिद्धि के कारणी भूत अनुशासन वाले उस शास्त्रों में किए गए विवेक का अनुसरण करते हैं[5]। पारिजातहरण महाकाव्य में सांख्य के प्रकृति-पुरुष के

---

1 कार्यकारण कर्तृत्त्वे कारणं प्रकृतिं विदुः ।
भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुरुषं प्रकृतेः परमं ।।
भागवत पुराण 3.12.8

2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 10

3 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 15

4 सांख्यकारिका - 2
श्वेताश्वतरोपनिषद् 4/5

5 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 43

के संयोग के बारे में इस प्रकार कहा गया है – ऐसा ज्ञात है कि यह एक ओर संसार की प्रकृति जन्य मलिनता ही यमुना है और दूसरी ओर उस परम पुरुष की श्वेत विभूति ही गंगा है । इनके पदारविन्द की प्रेमिका यह सरस्वती नदी इन दोनों को संहित कर रही है[1] । काव्य के छठे सर्ग में मूल प्रकृति के बारे में इस प्रकार कहा गया है – इस नारायण की आठ पटरानियाँ जो सांख्य शास्त्र प्रतिपादित आठ प्रकृतियों के समान है उनमें प्रधान मूल प्रकृति आप [भगवान् श्रीकृष्ण] ही है[2] सांख्य की विकृतियों, के बारे में काव्य के 20 वें सर्ग में कहा गया है । जो चौबीस तत्व है, वह इस संसार के मूल है पुरुष में उनकी सात विभूतियां है, उसमें 16 हजार [भूत भौतिक] विकारों को कैद कर रखा है[3] । कार्य से कारण का अनुमान बताते हुए कवि कहते हैं संसार की सभी शक्तियों से असाध्य संसार के अद्भुत विधान उत्पत्ति विनाश-शाली कार्य बिना कारण नहीं हो सकते, कार्य से कारण का अनुमान होता है जैसे घड़े से कुम्हार का[4] । काव्य में कहा गया है – छोटे कारण से बड़ी प्रतिज्ञा क्यों हुई तो उपर्युक्त कारणों की लघुता या गुरुताजीव के चित्तगण बोध का अनुसरण करती है । अतः सबकी गति समान नहीं होती[5] । घर के प्रति कुलाल की अपेक्षा जैसे उसका पिता अन्य या सिद्ध कारण है इसीलिए ब्रह्मा जी जगत् कारण होते भी आपके द्वारा अन्यथा सिद्धि प्राप्त कर सही संसार के पितामह पद को धारण करते हैं[6] । बड़े विवेक से प्रधान सत्ता की व्यापकता

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य – पंचम सर्ग – 44
2 पारिजातहरण महाकाव्य – षष्ठ सर्ग – 18
3 पारिजातहरण महाकाव्य – विंशसर्ग – 48
4 पारिजातहरण महाकाव्य – पंचम सर्ग – 7
5 पारिजातहरण महाकाव्य – दशमसर्ग – 64
6 पारिजातहरण महाकाव्य – दशमसर्ग – 54

के आधार पर, नियति ने जगत में सम्बन्धों का ग्रथन किया है । यह सम्बन्ध यद्यपि दो आश्रयों में रहता है किन्तु उन दोनों की तादात्म्य सत्ता का भेदक नहीं होता तथा किसी को बढ़ा घटा कर नहीं जोड़ता । किन्तु औपाधिक आकृति के द्वारा जो द्वैत भासमान है उसे तो इस प्रकार के सही ज्ञान रहते भी विद्वानों को रखना ही होगा उसका विरोध करना उचित नहीं[1] ।

सत् ब्रह्म जो सबसे निरपेक्ष है उसका भी अद्वयत्वेन ज्ञान, अविद्या मूलक अज्ञान से अन्यथा भासमान, अतथ्य प्रपंच में बाधित ज्ञान के उत्तर अध्यवसाय, निश्चयात्मक ज्ञान में ही प्रमाणित होता है । तात्पर्य यह है कि जैसे रज्जु में सर्पज्ञान भ्रमात्मक है उसी प्रकार अद्वितीय ब्रह्म में सारा द्वैत प्रपंच भ्रमात्मक है[2] । काव्य के दसवें सर्ग में पंचकोषात्मक ब्रह्म का निरूपण किया गया है - ये {किसान} जड़ अर्थात शास्त्रादि ज्ञान से शून्य होते हुए भी अपने कठिन परिश्रम से ब्रह्म सिद्धि के उपयोगी अन्नमय-कोष को प्रचुर मात्रा में उत्पन्न करते हैं[3] । चिद्रूप परमात्मा के बारे में बताते हुए कवि कहते हैं - ये सारे गुण या दोष बुद्धि में रहने वाले तथा बुद्धिगत विशेषण {भेदक, रजसत्व आदि} के विशेष को भोगने वाले है जिसमें कोई विशेषण भेदक है ही नहीं ऐसे, चित्त स्वरूप परमात्मा में तो वास्तविक विशेष विभाग ही नहीं है वह तो निर्लेप अद्वैत है[4] । पारिजातहरण महाकाव्य में अनादिसिद्ध चेतन निर्लिप्त पुरुष को ईश्वर कहा गया है - सांख्य शास्त्र

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 31

2 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तमसर्ग - 38

3 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 20

4 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 87

वालों के मत से अनादि सिद्ध चेतन निर्लिप्त पुरुष ईश्वर है । जडात्मिका, त्रिगुणमयी उसकी प्रकृति ईश्वरीय चैतन्य से बिम्बित हो संसार की गुण दोषमय सृष्टि करती है । शुद्ध ब्रह्म भी प्रकृति प्रतिच्छन्न हो बद्ध जीव बन जाता है[1] । पारिजातहरण महाकाव्य में कृष्ण को मायावी कहा गया है - कृष्ण तो मायावी है इनकी माया तो विख्यात ही है जिसके वशीभूत होकर आप ही अज्ञान परम्पर से अपनी चेतना को मलिन कर रहे हैं[2] । अखिलनायक भगवान के विषय में स्त्रैण बुद्धि करना भी आपका निजी स्वभाव को धोखा देना है क्योंकि वे तो उनकी सहज शक्ति रूप प्रकृतियाँ हैं, जिन्हें गुणों से रञ्जित करते हुए व्यवहारों का विधान करते हैं । अन्यथा इस निरंचन पुरुष को जगद्व्यवहार से क्या प्रयोजन[3] ।

पारिजातहरण महाकाव्य के एकादश सर्ग में नारद, इन्द्र से भगवान कृष्ण के कर्मयोग तथा ज्ञान योग के बारे में बताते हुए कहते हैं कि जो प्रभु दक्षित दृष्टि वाले तुम्हारे तथा हमारे भी अधिक उपकारार्थ तथा कर्मयोग तथा ज्ञान योगात्मक दोनों मार्गों की शिक्षा देने के लिए निजी माया से ही जन्मना मनुष्य बने हुए हैं, अज्ञान से ही, आप उस नारायण के ऊपर आक्षेप कर रहे हैं । उनकी निन्दा मूर्खता ही है[4] । जो अभिनय कर अपनी बहुरंगी प्रकृति तथा सारे जगत् को निजी कलाओं से नचाता है[5] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 72
2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादशसर्ग - 82
3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादशसर्ग - 83
4 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 85
5 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 86

काव्य में रुक्मिणी को भिन्न-भिन्न मतों में भिन्न-भिन्न रूपों से कहा गया है - मेरे (नारद के) मत से गुण लिंग आदि उपाधियों से रहित शुद्धज्ञान रूप परम ईश्वर स्वरूपिणी तुम्हीं हो तुम्हें कोई (सांख्यमत वाले) प्रकृति कहते हैं। वेदान्ती तुम्हें (चिद्ब्रह्म्मह बतलाते हैं जो स्त्री पुरुष सामान्य का बाधक है) वही तुम्हें माया कहकर भी प्रपंचित करते हैं। मीमांसक तुम्हें क्रिया कहते हैं। योगदर्शन वाले तुम्हें सिद्धि मानते हैं और तार्किक तुम्हें बुद्धि इच्छादि ईश्वर के गुणों में गिनकर गुणात्मक बुद्धिरूप में देखते हैं। पौराणिक तुम्हें परमेश महिषी पराम्बा कहते हैं। भाव यह है कि सर्वशक्तिशालिनी ईश्वर तुम्हीं हो[1]।

अवतार गणना पुराणों के दार्शनिक तत्त्व में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। वाराहवतार को प्रमुखता देने पर भी विष्णु पर्व में एकार्णव का प्रसंग मिलता है[2]। हरिवंश में विष्णु के पौष्कर अवतार को आदि अवतार माना गया है। विष्णु के नाभिकमल के प्रत्येक भाग में समस्त ब्रह्माण्ड की कल्पना पौष्करावतार के प्रतीकवाद की विशेषता है। इस नाभि कमल के प्रत्येक भाग की विशेषता है। इस नाभि कमल के मध्य केसरी दिव्य पर्वत[3]। भविष्यपर्व के अन्तर्गत विष्णु के पौष्कर प्रादुर्भाव के वर्णन में कर्मों से स्वतन्त्र, अव्यक्त कारण रूप, नित्यब्रह्मण से निष्कल पुरुष की उत्पत्ति बतलाई गई है[4]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 4।

2 विष्णुपुराण - 1.2.3

3 हरिवंश पुराण - 3.12.4

4 ब्रह्म्म सम्बन्धं संबद्धमबद्धं कर्मभिर्नृप।
पुरस्ताद् ब्रह्मण संपन्नं ब्रह्मणो यददक्षिणम्॥
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम्।
निष्फलः पुरुषः तस्मात् संबभूवात्मयोनिजः॥

हरिवंश पुराण 3-16.2-3

पारिजातहरण महाकाव्य में भी यथा स्थान भगवान् कृष्ण के अवतारों का वर्णन किया गया है - कहीं - कहीं लीला से जलराशि पान करते तथा उतावली उठती लहरों पर डूब-डूब कर खेलते हुए निर्भयता से मन्द-मन्द रेंगते हुये बड़े-बड़े मीन (मछलियाँ) अवतार भूत महामत्स्य की विडम्बना कर रहे है[1]। नारद जी श्रीकृष्ण से कहते हैं - हे भगवन् ! आपकी ऐहिक लीला भी प्राकृतिक नियमों से रहित सर्वथा स्वतन्त्र है। अतः आपका सर्वोत्तर प्रभुत्वलौकिक व्यवहारों में भी छिप नहीं सकता। आपने मछली बनकर वेदों का उद्धार किया। कछुआ हो पृथ्वी को पीठ पर धारण किया, सूकर हो पृथ्वी को फैलाया, सिंह कपटवामन बन त्रिलोक को दो पग में ही नाप लिया[2]। तपस्वी ब्राह्मण का अवतार धारण कर बहुत बढ़े हुए (क्षत्रिय) राज मण्डल को प्रमथित किया (21 बार उजाड़ डाला) फिर स्वयं क्षत्रिय राम होकर अपने ही अवतार उस परशुराम को पराजित कर ब्राह्मण कुलोत्पन्न लोक विजयी दशमुख रावण को समूल उखाड़ डाला[3]।

हे सर्वेश ! आज इस अवतार में भी, हाथ से उठाए छत्र के समान पर्वत (गोवर्द्धन) को धारण करने वाले आप बचपन में दावानल को जीते हुए यह प्रतीत करा चुके हैं कि आप किसी प्राकृत नियम के पराधीन नहीं अपितु सर्वथा स्वाधीन है फिर भी लौकिकता ही दिखा रहे हैं[4]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 76

2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 11

3 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 12

4 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 13

आपकी {भगवान् कृष्ण की} यह खुली प्रतिज्ञा या स्वभाव है कि मेरी शरण लेने वालों का बेड़ापार है किन्तु यह सन्देहास्पद ही रह जाता है जब तक कि आपका अनन्त ऐश्वर्य अत्यन्त अलक्ष्य है । यह सन्देह मेरी ओर से किसी को न रह जाए मानो इस अपने दोष से बचने के लिए आप बड़े-बड़े लोकोत्तर बलवान् हिरण्याक्ष आदि दैत्यों को गर्वित कर निजी अवतारों से खेलते हुए उन्हें मिटा देते हो । भाव यह है कि अवतार ऐश्वर्य अत्यन्त अलक्ष्य नहीं रहा । इतने पर भी यदि जीव, अपने उद्धारार्थ आपकी शरण न आएँ तो आपका क्या दोष है । यही आपके अवतारों का रहस्य है[1] ।

पारिजातहरण महाकाव्य के द्वादश सर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं । इस लक्ष्मी के द्वारा ही वश में किया गया है में विविध अवतारों को वहन करता हूँ । {धारण करता हूँ}[2] जब भगवान् कृष्ण का वाहन गरूड़ आकाश में उड़ रहा है तब लोग सोचते हैं - शैशव काल में वृज में असुरों को मारना इस दुर्घटना को कितनी बार सुना गया, आज भी क्या भगवान् उन्हीं राक्षसों को मार रहे हैं[3] ।

काव्य के 20 वें सर्ग में ऋषि कश्यप भगवान् कृष्ण की स्तुति करते हुए उनके अवतारों के रहस्य को बता रहे हैं - गदा, पद्म, शंख, चक्र से मीनादि अनेक अवतारों से क्रीड़ा करने के लिए न दिखाई पड़ने वाले भी दिखाई पड़ने वाले दृश्य स्वरूप होते हुए भी ज्ञान के धाम के रूप में तुम्हारी आत्मा होती है,

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 14

2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 10

3 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 34

तुम्हें नमस्कार हो[1] शेषनाग के फन पर शयन है जिसका अपनी नाभि से उत्पन्न कमल, कमल से उत्पन्न ब्रह्मा, ब्रह्मा से उत्पन्न जो तेज है वह तेज तुम्हारा है । अनवस्था रूपी ग्रह से ग्रस्त भू-भार की धारा के लिए कूर्मावतार धारण करने वाली माया के तुम आश्रय हो[2] ।

पाक विज्ञान
=========

रूक्मिणी के यज्ञ के प्रसंग में कवि ने अपनी पाकशास्त्र सम्बन्धिनी कुशलता का परिचय दिया है । पारिजातहरण महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में इसका वर्णन किया गया है ।

करुण, भयानक, वीभत्स इन रसों से रहित शेष छः काव्य के रसों के समान छः रस के अपूर्व यज्ञांगभूत भोजन से ब्राह्मणों को तृप्त किया । अपने प्रेमाधिक्य से बनाए दिव्य भोगों को भी अतिक्रमण करने वाले अनेक रूप में बने भिन्न-भिन्न उत्पन्न करने वाले इन्द्रियों के तर्पक रसों के समान गोरस (दूध, दही आदि) से बने हुये पदार्थों को भोजन में दिया[3] ।

पाक संस्कार विशेष से अगणित प्रकार वाले लेह्य, चोष्य, पेय आदि पदार्थों से युक्त असाधारण वस्तुएं भोजन में दी गई[4] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - विंश सर्ग - 30
2 पारिजातहरण महाकाव्य - विंश सर्ग - 31
3 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 60, 61
4 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 62

इस प्रकार ब्राह्मणों तथा अन्य सुहृदबान्धवों एवं अन्न चाहने वाले अन्य लोगों को भी उनकी इच्छानुसार भोजन दे तृप्त दिया[1]। उन रूक्मिणी जी ने, भोज्य-पदार्थों में क्या रहा जो भोजन में नहीं दिया तथा भोजन कराने योग्य कौन थे जिन्हें तृप्त नहीं किया। इसी प्रकार भोजन करने वाले वह कौन सी वस्तु थी जिसे अपूर्व नहीं माने अर्थात इस प्रकार सभी सन्तुष्ट थे[2]।

पक्षिविज्ञान :

गरूड़ वर्णन के प्रसंग में स्थान-स्थान पर कवि ने ऐसी सूक्ष्म बातों को उल्लेख किया है जो उनके पक्षि विज्ञान की विशेषताओं की द्योतक है।

बारहवें सर्ग में कवि गरूड़ के स्वभाव का पूर्णरूप से परिचय देते हैं। गरूड़ भगवान कृष्ण का वाहन है। बलपूर्वक इन्द्र के गौरव को निरस्त करके उन श्रीकृष्ण ने पारिजातहरण में उद्यम किया। हरि की रक्षा करने वाले अदभुत पराक्रमशाली गरूड़ को भगवान् अपनी स्मृति में लाए। याद करते ही श्रीकृष्ण के मन का अनुगमन करने वाले मार्ग से पंख के फड़फड़ाने की ध्वनि से निवेदित आकाश में उड़ता हुआ गरूड़ मेघ खण्ड के समान दिखाई दिया गरूड़ के पंखों का वर्णन चरणों का वर्णन, चोंच का वर्णन तथा पूरे शरीर का वर्णन भी किया गया है - वेग के कारण हिलते हुए पंखों से उत्पन्न वायु से गिरे हुए पंखों के समूह को नीचे गिराता हुआ आकाश में ओलों की वर्षा करता

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 63

2 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 64

हुआ मेघ जैसा दिखाई दिया । उड़ते समय प्रसारित विशाल पंखे के रूकने से सूर्य के प्रकाश के आधिक्य से अपने प्रकाश से व्याप्त दिशाओं से आकाश को उस गरूड़ ने पहले से भी अधिक प्रदीप्त कर दिया । अपने भारी पंखों से गरूड़ ने सूर्य, चन्द्रमा ताराओं संबको छिपा लिया[1] । चरणों की अंगुलियों को पंचिका के भीतर किए हुए बहुत बड़ी शाखा को पकड़े हुए चंचल चोंच में साँप के महान् शरीर को लटकाए हुए महान शरीर वाला वह गरूड़ भगवान के सामने उतरा । गरूड़ ने भगवान कृष्ण से मनुष्यों की वाणी में बोलने से पहले उनका चरणों में प्रणाम किया[2] । फिर मनुष्यों की वाणी में बोला - पुष्पक विमान के होते हुये भी मैंने पृथ्वी पर इस लोक में आपकी अनुकम्पा को आपके द्वारा बिखेरा है[3] । परमपूज्य ! वह मेरा शरीर और मेरा मन तुम्हारे चरण-कमलों से क्षण भर के लिए भी अलग नहीं[4] । गरूड़ भगवान कृष्ण की स्तुति करते हुए कहता है - हे निर्विकार ! तुम्हारी मानव के रूप में जो पद और चेष्टाएं हैं वह हम लोगों को प्रसन्नता देने वाली है। पवित्र और अनिर्मल होने पर भी समुद्र से अलग शरत्सरोवर सरोज सहित सुशोभित होता है[5] । गरूड़ भगवान कृष्ण के वेदान्तमय रूप को स्पष्ट करता हुआ कहता है- हे अनन्त ! नूतनता के व्यापार से नवीनता ही रमणीयता का आश्रय है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 25-31

2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 34,35,36

3 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 37

4 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 38

5 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 39

हे अनधीश ! {जो स्वयं ईश्वर है जिसका कोई ईश्वर नहीं है} तुम्हारे प्रकृति के पंचीकरण से आकाशादि पंचक इस प्रपंच से उत्पन्न हुए हैं । अलग-अलग करके लाखों अद्भुत जगत् अभिन्न लगता हुआ देखने वालों को भेद पैदा करता है[1] । दूर से गिरी हुई जल की बूँदे मिट्टी में, अनिल में या पृथ्वी में और कहीं लीन हो जाएं किन्तु परमार्थतः वह पृथक नहीं है उसी प्रकार तुम एक जगत् के रचयिता हो[2] । हे भुवनैकनाथ ! जिस भवन में तुम भ्रमण करना चाहते हो मुझे वहीं की आज्ञा दो क्या मैं अपने चरण चंचुओं से पृथ्वी को छेद डालूँगा या तुम्हारे चरणों का वाहन करने वाले स्वर्ग को आश्रय दूँ अर्थात स्वयं को जाऊँ[3] ।

इस पर भगवान गरूड़ से बोले - हे विहगेन्द्र ! तुम्हारा मुझसे अलग ऐश्वर्य नहीं है । मैं इन्द्र के नन्दनवन में विहार करने की इच्छा रखता हूँ[4] ।

धर्म नीतिशास्त्र ज्ञान :

नीतिशास्त्र तथा धर्मशास्त्र सम्बन्धी भावों का वर्णन पारिजातहरण महाकाव्य में अनेक स्थानों पर किया गया है । पारिजातहरण महाकाव्य में स्थान-स्थान पर नीतियों के बारे में कहा गया है । नारद भगवान् श्रीकृष्ण से कहते हैं - हे भगवान् ! बढ़े मान वाली विभूति, सामनीति से नहीं शान्त होती अर्थात् सम्मानीय ऐश्वर्य के द्वारा बड़े अभिमान वालों

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 40
2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 42
3 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 54
4 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 56

को समझाकर शान्त कर लेना कठिन है । इन्द्र भी ऐसे ही हैं, रहा दान द्वारा शान्त करना, वह धन चाहने वालों को प्रिय हैं, इन्द्र तो सकल कामना पूरक कल्पवृक्ष ही पाले हैं, वहाँ दान का क्या महत्त्व ! भेद नीति भी कठिन है, क्योंकि जिनका भेदन करना है वे आपसे भी भिन्न हैं जैसे असुर फिर आखण्डल में दण्डनीति भी कहाँ तक उचित है किसी भी नीति की वहाँ उपयोगिता नहीं है[1] ।

नीति वेदियों के नीति के यह चारों अंग अधिकतर शत्रुओं के प्रति प्रयोग योग्य होते हैं किन्तु जहाँ सौहार्द के द्वारा गुणान्तर (स्वार्थ लिप्सा आदि) छिपा रखे गए हैं ऐसे मित्र के विषय में कहीं भी इनका उपयोग गुणदायक नहीं है[2] ।

अपने अर्थ की सिद्धि को लक्ष्य बनाकर सुन्दर बुद्धि योग से जो -जो प्रयत्न किए जाते हैं, इससे भिन्न कोई नीति नहीं है । एतन्मूलक अर्थात् इसी के साधन शक्ति रूप तीन शक्तियां छः गुण, चार-साधन, तीन सिद्धियां एवं तीन उदय इत्यादि विषयों को एकस्थ करने वाली उक्तियों के संग्रह ग्रन्थ ही नीतिशास्त्र कहे जाते हैं । अच्छे लोग साम, दान, दण्ड, भेद रूप चार उपायों से ही सारे पारस्परिक जगद्व्यवहारों का पालन करते हैं, ऐसा नीतिशास्त्र में कहा गया है[3] । नीतिशास्त्र में कहे गए वाक्य को

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 42

2 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 43

3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 65

पारिजातहरण महाकाव्य में इस प्रकार कहा गया है - अपने अधिकार की सीमा के भीतर जो उद्योग करते हैं वे लोग तो प्रशंसनीय गुणों से उक्त सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं किन्तु जो अधिकार सीमा का लंघन करने वाले बुद्धि (विवेक) हीन है वे अर्थ (लौकिक) सम्पत्ति) तथा परमार्थ से भी च्युत हो जाते हैं[1]। पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त करके भी जिसने विवेक का अर्जन नहीं किया ऐसे पुरुष से क्या लाभ है (उसका जीवन व्यर्थ ही है) यदि समुद्र की क्षारता नहीं निकला तो वह भरा रहकर भी क्या किया। यह प्रभुता पुरुष को मत बना देती है, उसकी शान्ति के लिए विवेक बना हुआ है। उस विवेक के बिना नैतिक सिद्धि के लिए मानवों के उद्योग का केवल श्रम मात्र फल है या वह सर्वथा निष्फल है। विद्या (शास्त्र ज्ञान) प्रभुता तथा उपमा से नीतिज्ञों की सर्वतः कार्य सिद्धि मानी जाती है। सज्जनों की रक्षा करने वाली मानवता बुद्धि को भूषित करती है। इस बुद्धि को पूर्णरूप से परिशीलित (ज्ञात) शास्त्रशोभित करता है, उस शास्त्र ज्ञान को अलंकृत करने वाला जय, नैतिक व्यवहार है[2]। धर्मशास्त्र के बारे में बताते हैं इन्द्र नारद से कहते हैं- अमित प्रमाण वाले मुनि (महात्मा) नीच कहकर जिनके ग्रहण का निषेध करते हैं उनकी गिनती की सांख्यपूर्ति बिना विरोध स्त्री वशीभूत पुरुष करता है अर्थात स्त्री के वश में रहने वाले मनुष्यों के अन्न खाने में भी पाप धर्मशास्त्रकारों ने बताया है[3]। अतिथि के यथासत्कार की शिक्षा एक बड़ी शिक्षा है, जो इस पारिजातहरण महाकाव्य से मिलती है। भारतीय संस्कृति में अतिथि का बड़ा महत्त्व है " उत्तम से उत्तम वर्ण के यहां भी

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 65
2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 66-69
3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 73

कोई अतिथि वह चाहे कितना ही नीच हो यदि आए तो उसकी पूजा करनी चाहिए[1] । कहा भी है -- " अतिथि धर्म रूपो हि गृहस्थानां गृहे-गृहे ।" अतिथि की उपेक्षा करने से कितना हानि होता है, स्वयं कठोपनिषद में लिखा है :-

"आग के समान ब्राह्मण अतिथि घर में प्रवेश करता है, अच्छे लोग उस अतिथि की पूजा करते हैं, अतः हे यम! इस ब्राह्मण अतिथि की शान्ति के लिए जल लाइए ।"[2]

अतिथि की व्युत्पत्ति है - "नास्ति तिथिर्यस्य स अतिथिः जिसकी कोई तिथि नहीं है अर्थात जो किसी दिन भी घर आ सकता है । जिस प्रकार अग्नि को शान्त करने के लिए जल का प्रयोग होता है उसी प्रकार अतिथि रूप अग्नि को शान्त करने के लिए जल, आसन आदि आवश्यक है । अतिथि साक्षात्कार ईश्वर है । कहा भी है :- "अतिथि जिसके यहां से निराश चला जाता है वह उस घर वाले का पुण्य ले लेता है और पाप दे जाता है[3] ।

अतिथि सत्कार के विषय में धर्म शास्त्रकारों ने बहुत कुछ कहा है । भगवान् मनु ने तो यहां तक कहा है कि "तृण, भूमि जल तथा सत्य एवं प्रियवाणी ये चार वस्तुएं सज्जनों के घर से कभी नहीं जाती[4] ।

---

1 उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागतः ।
तस्य पूजा विधातव्य सर्वदेवमयो तिथि : ।।
-भारतीय संस्कृति

2 कठोपनिषद - प्रथमावल्ली - 17

3 एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राहम्णः स्मृतः ।
अनित्यं हि स्थितौ यस्मान्तस्मादतिथि रूच्यते" ।।
मनुस्मृति - 3-102

4 मनुस्मृति - 3/101

पारिजातहरण महाकाव्य में अतिथि सत्कार से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं माना गया है तथा नारद को गृहस्थी का पालन करने वाला बताया गया है ।

रूक्मिणी सहित भगवान कृष्ण ने स्वयं अपने हाथ से नारद के पाद-प्रक्षालन आदि किए । क्योंकि अतिथि से बढ़कर गृहस्थ का दूसरा धर्म ही नहीं है[1] ।

मनु ने गृहस्थाश्रम का सब आश्रमों का आश्रयदाता, ज्ञानदाता तथा अन्नदाता बताते हुए उसे सबसे श्रेष्ठ माना है और उसके सबसे प्रयत्नपूर्वक पालन को स्वर्गेच्छु.. का कर्तव्य बताया है[2] ।

हे मुनिवर (नारद) । अपने अभीष्ट वस्तु की उत्पत्ति ही सभी धर्मों का अन्तिम परिणाम है । गृहस्थी का पालन करने वाले हमारे सम्मुख आपने, अपने दर्शन से आज, वही उपस्थित कर दिया अभिप्राय यह है कि गार्हस्थ्य सम्बन्धी हमारे सभी धर्म आज आपके दर्शन से सफल हो गए । इससे बढ़कर हमारी अभीष्ट वस्तु क्या होगी[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 104

2 यथा वायु समाश्रित्यवर्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थाश्रमाश्रित्य वर्तन्ते सर्वाश्रमाः ।
यस्मात्त्रयोप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थे नैवधार्यन्ते तस्माज्जेष्ठाश्रमोगृही ।।
स सन्धार्य प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।
सुखं चेहेच्छता नित्यं यो धार्यो दुर्बलेन्द्रियैः
मनुस्मृति 3/77-79

3 पारिजातहरण महाकाव्य चतुर्थ सर्ग - 109

गृह शब्द का अर्थ गृहीत होने वाला या ग्रहण करने वाला होता है। जिसे सज्जन (महात्मा) अनुगृहीत करते हैं या अपनी सेवा सत्कारादि गुणों से जो स्वयं महात्माओं को अपनी ओर खींच लेता है वही वास्तव में गृह है। आपके आ जाने से वैसा ही गृह यह हो गया। अपने रहने के स्थान को गृह नहीं कहते[1]।

गृहस्थ से उत्तर कुछ भी अपेक्षा जिसे है वह अतिथि मात्र भिक्षु है। उनका कोष (सत्कारादि सामग्री भूमि सदाव्रत) आश्रम (गृहस्थी) की रक्षा करने वाले हम लोगों को महात्माओं का शुभ दर्शन इस अधिकारी को सौंपने वाले दैव का दिया (उन्नति का प्रमाण रूप) पुरस्कार है[2]।

जो मनुष्य इस गृहाश्रम के सभी सुख दूसरों को न भुगाकर अपने ही भोगते हैं। वे लोकोपरारिणी संस्था के सर्वस्व हड़प जाने वाली महान् पापी है[3]।

गृह की कृतार्थता प्रत्येक जीवों की सेवा से ही होती है, फिर आप जैसे निरपेक्ष महात्मा जिसकी अपेक्षा कर दर्शन दे, तब तो कहना ही क्या है[4]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य –चतुर्थ सर्ग – 112

2 पारिजातहरण महाकाव्य – चतुर्थ सर्ग – 113

3 पारिजातहरण महाकाव्य – चतुर्थ सर्ग – 114

4 पारिजातहरण महाकाव्य – चतुर्थ सर्ग – 115

इन्द्र, नारद से कृष्ण की नीतियों के बारे में बताते हुए कहते हैं : जिन कृष्ण का मन केवल स्वार्थ में ही सर्वथा डूबा है अपनी सिद्धि §उन्नति§ के लिए दूसरों को जो दबाने की ही ताक में रहता है, वह सन्धि विग्रह आदि नीति गुणों को व्यस्थित गुण मानकर नहीं प्रयुक्त करता अर्थात जिसकी उपयोगिता मान लेता है। कभी सन्धि कभी विग्रह, आदि का मनमाना अव्यवस्थित प्रयोग किया ही करता है[1]। जो अपने तीन प्रकार के उदय§वृद्धि, क्षय, स्थान रूप§ अथवा प्रभुत्व मंत्र, उत्साह शक्ति, से फलित अभ्युदय की चाह में रहने वाले कुटिल नीति परायण है, अपनी सिद्धि के लिए उनके व्यवसाय बिना किसी नियन्त्रण के उपर्युक्त तीनों शक्तियों के बढ़ाने या अन्यगत के विनष्ट करने के लिए ही हुआ करते है[2]। वह जो अपनी सहायता से नरकासुर को दबाने के लिए उद्योग करने का आदेश दे रहे हैं यह भी रहस्यपूर्ण है। अर्थात इसमें कुछ छिपी बात है। वह यह है कि अपनी शक्ति के उत्कर्ष को प्रधान रूप से रखते हुए छली[3], शत्रु को दूसरे प्रबल के साथ मुठभेड़ कराकर कुचलवा देते हैं यह भेद-नीति है। इस समय भौमासुर नामक शत्रु के साथ वैर हो जाने से विषाद में पड़ा मुझे सर्वथा असमर्थ मनन §नीति जैसी है कि जब शत्रु दुःख में पड़ा हो तो उस पर चढ़ाई कर देनी चाहिए § इसके अनुसार हठात् मुझे§ इन्द्र[4] को परास्त कर स्वर्ग का धन §पारिजात वृक्ष रूप रत्न§ लूट लेना चाहते हैं। नीति के अनुसार मुझ पर चढ़ाई कर देना चाहते हैं[5]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 53

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 54

3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 55

4 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 58

5 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 59

ज्योतिष शास्त्र ज्ञान :

पारिजातहरण महाकाव्य में ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्तों का भी कहीं-कहीं उल्लेख मिलता है । काव्य के द्वितीय सर्ग में बताया गया है जैसे कोई ज्योतिषी ब्राह्मण, किसी धनी व्यक्ति के यहाँ शकुनों (प्रश्नों) के द्वारा सत्पुत्र की उत्पत्ति बताकर रत्न आदि पारितोषिक प्राप्त करके जाता है, उसी प्रकार नक्षत्र मण्डल का शासक (ज्योतिष-शास्त्रज्ञ) चन्द्रमा प्रभात काल में शकुन (पक्षियों) के कलरव से सूर्योदय की सूचना दे विदाई के रूप में मिली हुई ताराओं को साथ लिए चला जा रहा है[1] । एकान्त नीरव कोपभवन के भीतर क्रोध से लाल तथा स्वेद के बूँदों से कलित आकार वाली वह सत्यभामा, चन्द्र ताराओं से मण्डित प्रदोष की रक्त प्रभा से अनुरंजित आकाश भूमि सी भीषण दिखाई पड़ रही थी[2] । काव्य के बारहवें सर्ग में जहाँ पर भीषण श्रीकृष्ण के पराक्रम का वर्णन किया गया है वहाँ पर बायीं आँख का फड़कना शुभ माना गया है । "क्रोध के कारण आँसुओं से भरी हुई श्रीकृष्ण की बायीं आँख फड़कने लगी और शुभदर्शी उनकी दाहिनी भुजा जिसमें सुदर्शन सुशोभित हो रहा था, फड़कने के बहाने विजय का अनुमोदन करने लगी[3] । भगवान् कृष्ण गरूड़ से कह रहे हैं कि रात्रि को क्षण भर में ही बिता दो । जब तक भगवान् सूर्य उदित होते हैं, वहीं शुभ समय है । जब अपना नक्षत्र सूर्य सुशोभित होता है, तुम्हारे उड़ने के लिए सूर्योदय तुम्हारा महोदय होगा[4] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 8

2 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तम सर्ग - 5

3 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 24

4 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादशसर्ग - 57

संगृहीत शोभा वाले श्रवण नक्षत्र, आद्यभि नक्षत्र आदि इस समय की अपेक्षा करके विलम्ब हो गई है (अर्थात् इस नक्षत्र में न जा सकने के कारण विलम्ब हो गई है । गिनती में चन्द्रमा अपने लिए (जाने के लिए) इस समय शुभ दसग्न आठवें सिद्धि से युक्त हैं[1] ।

चित्रात्मक ज्ञान :

काव्य में जहां-जहां वस्तु वर्णन मिलता है वहां कवि की चित्रात्मकता दृष्टिगोचर होती है । वस्तुओं का बिलकुल सजीव चित्र कवि ने अपने काव्य में खींच दिया है ।

द्वारिका वर्णन से :

चित्र रूप में तीनों लोकों की आकृति लिए समुद्र से घिरी यह पुरी सर्वजगदाश्रय भूत नारायण के शरीर को भी धारण करती हुई, उनके श्रीअंग से अपने आपको बढ़कर सिद्ध कर रही है । जगत् के कलाकौशल के सार से शोभित होने वाली यह पुरी मणियों से खचित तोरण मालाओं के किरण जालों से माना लक्ष्मी के द्वारा नीराजन प्राप्त कर रही है अर्थात इसके चारों ओर फैली हुई तोरणों की कान्तिमण्डली ऐसी प्रतीत होती है जैसे साक्षात शोभा इसकी आरती उतार रही हो[2] । इस पुरी के जलयन्त्रागार में चक्राकार नाचते हुए फव्वारों पर तनी हुई जल चादर रूप, शरत्कालीन बादलों के भीतर से टपकते

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 58

2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 7,8,9

हुए मोती के आकार के बिन्दुओं पर लुभाए हुए मयूर चातक आदि पक्षीगण बराबर इसे घेरे रहते हैं[1]।

इस पुरी के बाजार क्रय-विक्रयार्थ आने जाने वाले मनुष्यों के कोलाहल से युक्त है और धनी दुकानों में सजाई गई विविध प्रकार के बहुमूल्य रत्नराशियों को धारण करता हुआ अनेकों रत्नकरों को भी नीचा दिखाता है। जिस प्रकार शब्द शास्त्र के विद्वान सूत्रवृत्ति आदि के विशेष विधान रूप साधनों से पटादि शब्दों के नाना प्रकार के रूपों की कल्पना किया करते हैं इसी प्रकार इस पुरी के उत्कृष्ट कला मर्मज्ञ शिल्पी गणसूत करघा आदि के व्यवहारों और ताने बाने आदि प्रकार विशेष से विविध वस्त्रों का निर्माण करते हैं[2]। यह पुरी यन्त्रों के व्यवसाय से शोभित है। इस पुरी में कहीं राजनीति सम्बन्धी विशेष मन्त्रणार्थ अधिकारियों की बैठक विशेष रूप से सजायी गई है। कहीं योद्धाओं के युद्ध कला सम्बन्धी कौशल का प्रदर्शन हो रहा है। कहीं कुशल शिल्पियों की कलाओं की प्रदर्शनी सजायी जा रही है[3]।

द्वारिकापुरी के राजमहलों का वर्णन भी कवि उमापति द्विवेदी का चित्रात्मकता का प्रतीक है। इस राजमहल में कहीं तो युवक वृन्द की क्रीड़ा कौशलादि पूर्ण आनन्दमय व्यवहार चल रहा है। कहीं किसी एकान्त प्रान्त में पार्श्वचर समुद्र की लहरों का कोलाहल पूर्ण गान हो रहा है।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग -16

2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 24, 25

3 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 31

कहीं प्रत्येक दिशाओं की अप्सराएँ नाच रही हैं तथा कहीं परम निपुण यादवों की कौंसिल सजकर बैठी हुई है[1]। जो अन्तःपुर चन्दन और मोती के चूने से जिस पर चूना कली की गई है, जो विमानों से भरा तथा सप्तभौम प्रासादों से भासमान है तथा जो अष्टागन्ध की अधिक मात्रा से सम्पादित अनेक रंगों से चित्रित सर्वथा प्रिय हैं। कहीं आनन्द भवन मयूर नृत्य कर रहे हैं। कहीं कलाबाज चबूतरों की कलाबाजी करा-कराकर नवयुवतियाँ उल्लसित हो रही हैं[2]। जो राजभवन बहुत ऊँचा है तथा स्वच्छ शीशों से जड़ा है एवं देवताओं से सेवित है[3]। जो राजमहल रत्नमय वेदियों से भूषित तथा सुधर्मानामक देव सभा मण्डप से सज्जित है[4]।

पारिजातहरण महाकाव्य के तीसरे सर्ग में द्वारिका से रैवतक पर्वत की यात्रा का वर्णन किया गया है यद्यपि यह कोई विशेष यात्रा नहीं थी किन्तु यह रीति थी कि महाराजों की सपरिवार यात्रा ससैन्य ही होती रही। इस प्रकार कवि की इस यात्रा का सांगोपांग वर्णन उनकी चित्रात्मकता को प्रदर्शित करता है[5]।

काम के पिता भगवान कृष्ण का यह यात्रोत्सव असंख्य काबुली घोड़ों से अत्यधिक सुशोभित हो रहा था[6]। सोने की अमारी एवं जड़ाऊ

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 45

2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 48, 49

3 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 51

4 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 53

5 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - तृतीय सर्ग

6 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 8

रंग बिरंगे झूलों में जड़े मणिगणों की प्रभा ही जहाँ विद्युत और इन्द्र धनुष की छटा दिखा रही है मद की वर्षा करती हुई घन घटा के समान गजों की घटा चल पड़ी[1]। श्लेष के द्वारा भगवान कृष्ण के कारण शरीर में भी सभी विशेषण संघटित होते हैं जैसे - भगवान सहनशीलों में धुरन्धर अर्थात अग्रगामी है तथा श्री नामक लक्ष्मी से उल्लसित एवं चक्रधारण करने वाले नित्य है[2]। पर्वत पर बैठेसिंह के समान सजे रथ पर बैठे कृष्ण चंचल मृग के समान चपल चेष्टा वाले लोचनों से शोभित हो रहे थे[3]। भगवान् कृष्ण की रूपमहिमा का वर्णन करना भी उनकी कलात्मकता का प्रतीक है। भगवान के स्वभावत: श्याम-विशाल वक्षस्थल में श्वेतवर्ण कौस्तुभ मणि की छवि, श्याम रंग के नभस्थल में अत्यधिक प्रकाशमान भगवान भास्कर के प्रभा मण्डल का अनुकरण कर रही थी[4]। घने अन्धकार के भेदन कर, उदयाचल के शिखर पर आसीन सूर्य की भाँति भगवान के कर कमल को शोभित करने वाला यह चक्र सारे शत्रुओं को कँपाता हुआ भगवान की सौगुनी शोभा बढ़ा रहा है[5]। उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से कवि भगवान कृष्ण की रूप महिमा का वर्णन कर रहे हैं - दैदीप्यमान रत्न जाल से जड़ा हुआ कवच को धारण किए हुई भगवान की शरीर नाना प्रकार के फूलों से लदे लताओं के जाल से आच्छादित श्याम तमाल तरूवर सी दिखाई दे रही थी[6]। नाना प्रकार के रंग बिरंगे मणियों से जड़ा भगवान का मेघडम्बर छत्र सर्वथा अतुलनीय है[7]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 14
2 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 15
3 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 17
4 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 20
5 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 24
6 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 27
7 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 42
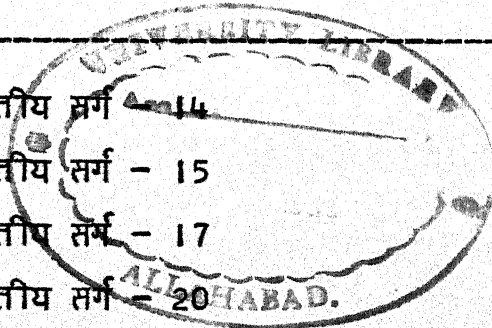
वह रैवतक पर्वत नाना प्रकार की आकृतिवाली शिलाओं के संघात से सजा गेरू आदि विविध धातुओं से रंजित थी[1]। पर्वत पर कहीं स्थान-स्थान पर छल-छल करते झरने बह रहे थे, तो कहीं स्वच्छन्द मद माती विहंगमण्डली चहचहा रही थीं, कहीं भांति भांति के वृक्षों की श्रेणियां थीं[2]। जिसकी उपत्यका नीचे की भूमि (समुद्र की ऊँची उछलती तरंगों से टक्कर लेती झलक रही है तथा अधित्यका (ऊपर की भूमि) से झर-झर झरने वाले झरने झर रहे हैं, ऐसा अत्यन्त दर्शनीय वह पर्वत देखते ही बनता था[3]। स्वभावतः प्रकाशित होने वाली महौषधियों की प्रभा से प्रदीप्त हुई इस पर्वत की गुफाएँ, कानों को प्रिय लगने वाले किन्नर, किन्नरियों के गीत भगवान के रथ की धुरी के शब्दों को रोक दे रहे थे[4]। काम को जगाने वाली पर झुक झुक कर उठती हुई प्रिय के आलिंगन की चेष्टा करती सी दिखाई दे रही थी[5]। रथ से उतर कर दोनों ओर से झुकी कोमल लताओं से पूजोपहाररूप बरसाए गये, रंग-बिरंगे पुष्पों से रंजित स्वच्छ शरीर वाले शोभमान उन कृष्ण ने प्राकृतिक पहाड़ की विषम भूमि को सुकोमल पांव से पार किया[6] गिरि शिखर से गिरती, अपनी झर्झर ध्वनि से झर्झर नामक बाजे को भी मात करती आनन्दोल्लास से ऊँचे उछलती लहरों में लहराती निर्झरिणियों को देख भगवान प्रसन्न हो रहे थे[7]। भगवान कृष्ण श्याम तथा विस्तीर्ण वक्षस्थल पर मोटे दानों वाली मोतियों की माला धारण

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग 42

2 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग 44

3 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग 45

4 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग 47

5 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग 48

6 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग 55

7 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग 59

किए हुए थे[1]। समुद्र वर्णन का प्रसंग भी कवि उमापति के चित्रात्मक ज्ञान को प्रदर्शित करता है। ताराओं के समान प्रस्फुट फेन भेगों को तथा उसी रूप श्रेष्ठ श्वेत शंखों एवं सुक्तिओं को धारण करता हुआ समुद्र ऐसा जान पड़ता था जैसे जल के ब्याज से पृथ्वी पर पड़ा आकाश का कोई एक भाग है[2]। वह समुद्र रंग बिरंगे रत्न एवं जल जन्तुओं से चित्रित आशय वाला था जैसे पृथ्वी रूप हथिनी के पीठ पर पड़ा रत्नादि से चित्रित झूल हो[3]।

यज्ञ की वेदियों का बड़ा ही चित्रात्मक वर्णन कवि ने अपने पारिजातहरण महाकाव्य में किया है - कारीगरों द्वारा अनेक सुन्दर विभिन्न रंगशाली चांदनियां सजायी गई तथा चारों ओर सुवर्ण के बने केले के खम्भे खड़े कर दिये गये[4] शंख, गदा, चक्र, पद्म, से चिह्नित, चार तोरणद्वार जिसके आगे बने हुए है ऐसे चारों ओर खुले सुन्दर चार दरवाजों से विराजमान, मुक्ता तथा मणियों की झालरों वाली यवनिकाओं (पर्दों) से ढका हुआ वह यज्ञ मण्डप था[5]। उस मण्डप में सोने के पूर्ण कलश स्थान-स्थान पर स्थापित किए गये थे। नाना प्रकार के नील दूर्वांकुरों, पल्लवों पर शोभित दीपकों की श्रेणियाँ नीले आकाश में ताराओं के समान शोभा पा रही थी। प्रवाल मूँगे से बने पल्लवों तथा रत्नों से कल्पित पुष्पों से सजे बन्दनवारों से घिरे तथा सुवर्ण कल्पित पट्टिकाओं से लहलहाती ध्वजाओं से शोभित घने ऊँचे वितान तम्बू थे। उन परमण्डपों की कतारें भिन्न-भिन्न रंग की शोभित हो रही थी[6]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 64
2 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 68
3 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 5
4 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 15
5 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 16, 17
6 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 18-20

प्रयाग भूमि का चित्रात्मक वर्णन काव्य के पंचम सर्ग में किया गया है – इस प्रयाग भूमि में सूर्य पुत्री यमुना की घनी नील तरंगों से आक्रान्त तथा लाल रंग में तरंगित सरस्वती को अंक में लिए स्वभाव से ही श्वेत वर्णवाली गंगा शोभित हो रही है[1]। इन तीन रंग वाली तीनों नदियों का मिला रंगा प्रवाह रूप त्रिवेणी, राधा रूपिणी लता से कलित कल्पतरु स्वरूप आपकी खिले फूलों की लाल कान्ति से लसित श्याम छाया के समान ज्ञात होती है[2]। वह त्रिवेणी भौंरों के झुण्डों की नील प्रभा से प्रतिबिम्बित, गजबदन बालगणेश के स्वभावत: लाल मुख में प्रवेश करती पयोनिधि की दुग्धधारा है[3]। नीलमणि मूंगे तथा मोतियों की यह माला प्रयाग भूमि को सर्वत: शोभित कर रही है[4]।

इन्द्र का भवन अर्थात स्वर्ग का वर्णन कवि के चित्रात्मक ज्ञान को प्रकट करता है। इस इन्द्र के भवन के बीच मणिमय भित्ति पर रत्नों की पच्चीकारी द्वारा कढ़ी लता पुष्पादि से अंकित नाना प्रकार के प्रतिबिम्बमय सुन्दर चित्रकारी से चित्रित कल्पनातीत सजावटों से सजी देवसभा सुधर्मा को देखा। जिसके चारों ओर सुन्दर फाटक लगे हैं। भिन्न-भिन्न अनेकों कक्षाओं से जो शोभित है। रत्नों से जड़े खम्भों तथा तोरणों से सजी जिसमें पताकाएं फहरा रही है। बीच में बने मणिमय वेदिका पर देवराज का सिंहासन जिसमें सजा हुआ है। आस-पास चारों ओर जिसके सर्वसाधारण के पीठ (कुर्सियां)

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य – पंचम सर्ग – 42
2 पारिजातहरण महाकाव्य – पंचम सर्ग – 46
3 पारिजातहरण महाकाव्य – पंचम सर्ग – 53
4 पारिजातहरण महाकाव्य – पंचम सर्ग – 54

सजे रखे हैं । दाहिनी ओर देवगुरु का तदन्तर देवर्षियों के और बांयी ओर देवताओं के आसन सजे हुए है । उत्तम आस्तरणों से सजी चारों ओर विलासोपयोगी नाना विधान की कक्षाओं से जो बिलसित है अत्यन्त सर्वोत्तर मधुर बोले वाले सुवर्ण-सार से बने पिंजरों में टंगे शुक सारिका आदि पक्षियों से जो गूँज रही थी, चित्र में कढ़े भी सत्य के समान अनेक रंगों वाले कोकिल कबूतर आदि पालतू दिव्य विहंगमों से शोभमान थी । नाना वर्ण के सूर्य चन्द्र के किरण जालों से जो चारों ओर से चमक रही थी, कहीं जिसमें घन घटा सी घिरी हुई थी, कहीं चन्द्रकान्त मणियों के पिंघले जलों से शीतल सार वाली थी । जिसके भीतर ही कल्प लता के कुंजों से शोभित तट्वाली पीयूष पुष्करिणी बनी शोभित हो रही है, कहीं क्रीड़ा शैल के शिखर पर बने महलों की चोटियों से झरने गिर कर बह रहे हैं[1] । मनोहर मरकत मणियों की चित्रित सब्ज भूमि में जो सजी है तथा स्वतस्तिक, अर्द्धचन्द्र, कमल वृत्त आदि विभिन्न आकार में बने छोटे-छोटे जलाशय तथा चबूतरों से विशेष रूप से शोभमान है । सैकड़ों फव्वारों से जो मन को मुग्धकर रही है[2] कतारों में कल्पित, रंग, बिरंगे रत्नों से रचित पादपों से जो भरी है । जिसमें कही लतामण्डपों के झूले लगे हुए है[3] ।

बाहर से जिसमें चारों ओर कुवरक आदि की वृत्ति(घेरे) तथा अत्यधिक प्रकाशमान रत्नों की कल्पित चित्रों से सजी दीवारें एवं मनोहर अंकुर

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 4
2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 12, 13
3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 14

कलशी आदि बनी हुई है । आइने के मध्य भाग के समान स्वच्छ समतल चिकने तथा चमकदार चित्रों से चित्रित चौराहे चौक चबूतरों से जो विलसित है ।[1]

मोतियों की झालरों वाली जवनिकाओं से जिसका मध्य भाग ढका हुआ है तथा छायामय शरीरधारी सूर्य, मेघ, चन्द्रमा, वायुरूप देवताओं से जो अनुक्षण रक्षित है । कहीं जिसमें सुन्दर फर्श है । कहीं गेंद आदि खेलने का सजा मैदान है तो कहीं भीतर ही शिकार के उपयोगी बन बना हुआ है । कहीं पर उपासना के उपर्युक्त मन्दिरों जैसे उपनिवेश है, कहीं खिले फूलों में या प्रगट कामदेव के द्वारा जो हँस सी रही है । सुगन्ध से आकृष्ट भ्रमर श्रेणियों की मादक झंकार में जो निरन्तर गायी जा रही है । वे झीलों में उबक चुभक कर खेलते हुए जल-जन्तुओं तथा सारस आदि पक्षियों एवं दिव्य कमल आदि पुष्पों से जो मन को लुभा रही है । पुष्पों के समूह से भरी सजी घनी शोभा से युक्त किंच सुन्दर मनोभाव से भरी भली जघन की शोभा वाली अच्छे पक्षियों के गुंजना से युक्त पुष्प गुच्छकों से शोभित या नई अवस्था तथा स्तन रूप गुच्छक से लसित चित्रों से सजी स्वर्गीय श्रेष्ठ भूमि की अलंकृत करती हुई, और भी रंग बिरंगी साड़ी गहनों से शोभित रक्षा योग्य रमणी के समान जो रमणीय है । सोने की लरों के रचना विशेष से जो शोभित है तथा देव ललनायें जिसके सुभग पदों {प्रति सुन्दर स्थानों} में विहर रही हैं, पूरे पुण्य फल अर्जन न करने वालों को जो सदा दुर्लभ रहे हैं । जिसके शिखर पर दिव्यगज{ऐरावत} के चिह्न से चिह्नत महाध्वज फहरा रहा है ।[1]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 16-21

कामशास्त्रज्ञान :-
==========

कवि के लिए नायक-नायिकाओं के भावों के घात-प्रतिघात से परिचित होना, इनके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में सहायक होता है । विलास लीला वर्णन में इस शास्त्र की सहायता कवि को अपेक्षित होती है । कवि की अपनी प्रतिभा भी इसमें सहयोग देकर अपूर्व कुतूहल उत्पन्न करती है ।

द्वारिकापुरी की जो बावड़ियां तथा सरोवर हैं वह नायक तथा नायिका की भांति परस्पर रमण करने से प्रतीत होते हैं । प्रस्तुत श्लोकों की यह उपमा कवि के कामशास्त्र ज्ञान को बताने में सहायक प्रतीत होती है । वायु के आघात से क्षुब्ध हुए इन जलाशयों में जो जल की तरंगे उठती है, उन्हीं के ब्याज से मानों नायक-नायिकाओं के अन्त:करण में बढ़े हुए काम-विकार के कारण इसकी लहरें उठ रही हैं । सारस पक्षी के कलरव के बहाने वे रसमग्न प्रेमी मानों वार्तालाप सा कर रहे हं । प्रफुल्ल पंकजों के रूप में उनके चंचल नेत्र ही कटाक्षपात आदि की चेष्टाओं में निरत है । भ्रमरों के गुंजारव के ब्याज से उन मधुमत्त रसिकों के असंबद्ध प्रेमालाप ही चिरकाल तक श्रवण गोचर होते है[1] ।

फुदकते हुए मीनरूपी मनोहर एवं चंचल नेत्रों वाली क्षण-क्षण में खिसकते हुए वस्त्र रूप शैवाल से सुशोभित होने वाली तथा चिरकाल तक ऊँची जलराशि को उन्नत उरोजों के रूप में धारण करने वाली बावड़िया नायिकाओं की भांति किसके मन को नहीं हर लेती[2] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 18, 19

2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 20

पारिजातहरण महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में रात्रि की उपमा गर्भवती स्त्री से दी गई है जो कवि के कामशास्त्र ज्ञान को प्रकट करती है ।

रात्रि गर्भवती स्त्री के समान प्रतीत होती थी, उसका चन्द्रमा रूपी मुख पीला पड़ गया था । उसने अपने भीतर बाल रूपी सूर्य को धारण कर रखा था[1]।

वह शीघ्र ही प्रसव करना चाहती थी, अतः उसकी काम वासना शिथिल हो गयी थी तथा वह मान भी छोड़ चुकी थी, उसकी यह अवस्था देख मानो निशापति चन्द्रमा ने अपनी विलास वासना को विरत करके उसे सहवास से मुक्त कर दिया[2]।

यह रात्रि एक ऐसे ज्योतिर्मय शिशु को जन्म देना चाहती है जो आनन्द का धाम है - कबूतरों के कलरव के बहाने मानों यही प्रसव की पीड़ा से कराह रही है[3]।

प्रकृति की दूसरी विडम्बना देखिए सारी रात काम विनोद में बिताकर स्त्रियां प्रिय के वाम भाग में ही सोई हुई है[4]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 4
2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 5
3 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 7
4 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 9

कितनी रमणियाँ अपने प्रियतम को बाहुपाश में बाँधकर अपने स्तनों का उनके वक्ष का पीड़क अस्त्र बनाकर सोई हुई वे रतिक्रीड़ा के समय प्रियतम द्वारा किए हुए अपने मर्दन का मानों इसी रूप में बदला ले रही हैं[1]।

गाढ़ी नींद के श्वास से जिसका अग्रभाग थिरक रहा है वह थकी-मादी सोयी स्त्रियों के मुख पर बिखरा केश ऐसा जान पड़ता है मानों आनन्द से पूँछ हिला-हिला कर सर्पिणी मुखचन्द्र सुधा का पान कर रहा है[2]।

प्रभात के कारण दीप के प्रभा मलिन ही जाती है किन्तु कवि ने प्रस्तुत श्लोक में उसका (दीप का) लज्जित होना बताया है जिसका तात्पर्य यह निकलता है कि दीप की प्रभा मलिन हो गई है ।

रात्रि भर की सुरत क्रीड़ा में साक्षी बनकर जो दीपक युवक युवतियों का लालन करता है वह उषः काल में उन्हें सोए देख मानो लज्जित हो रहा है[3]।

रात्रि में छिपी पान अनुराग जन्म लाली का लेखा सूर्य दे रहा है - रात्रि में काम क्रीड़ा परायण दम्पत्तियों के रतराग पानादि से उत्पन्न जो लाली रही, उसे पूर्ण दिशा में उदित हुआ सूर्य अभी एक करके दिखाएगा[4]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग 10

2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग 14

3 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग 20

4 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 38

प्रभात हो गया है, प्राभातिक वायु का संचार प्रत्येक स्थान में हो गया है इसी की उपमा कवि ने अपने काम विषयक ज्ञान को प्रकट करके दी है -

सम्भोग के अनन्तर लौटी हुई अभिसारिकाओं के कपोल स्थल में प्रस्वेद रूप मधु-द्रव को चाटता हुआ पवन, मानों उन्हीं को ढूंढ़ता हुआ घर-घर में घूम रहा है[1]।

श्रुतिज्ञान :-

वेद ज्ञान-द्वारा प्रतिपादित यज्ञीय परिपाटी का संकेत पारिजातहरण महाकाव्य में विस्तार के साथ मिलता है ।

वैदिक धर्म को यज्ञों का धर्म कहा जाता है । प्राय: सभी विद्वानों की मान्यता है कि वेदों का प्रतिपाद्य विषय यज्ञ है । पश्चिमी विद्वानों ने वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार सायण को "यज्ञिक-भाष्यकार" नाम दिया । सामान्यत: अग्नि जलाकर हवन करने और उसमें आहुतियाँ देने को यज्ञ कहा गया था । परन्तु यज्ञ के और भी अर्थ है । ब्रह्म यज्ञ, द्रव्य यज्ञ, तपोयज्ञ, योग यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ, दान यज्ञ, आदि का उल्लेख परवर्ती साहित्य में मिलता है । अनेक ऋषियों ने यज्ञ का अर्थ परोपकार किया है ।

---

1 शुक्ल यजुर्वेद - 11-18 अध्याय

यजुर्वेद में यज्ञों का बहुत विस्तार के साथ वर्णन मिलता है । शुक्ल यजुर्वेद के आरम्भ के दोनों अध्यायों में दर्श तथा पौर्णमास इष्टियों से सम्बद्ध मन्त्रों का वर्णन है । तृतीय अध्याय में अग्निहोत्र तथा चातुर्मास्य ﴾चार महीनों पर होने वाला यज्ञ﴿ के लिये उपयोगी मन्त्रों का विवरण है । इसके अनन्तर आठ अध्यायों तक यज्ञीय होमाग्नि के लिए वेदिनिर्माण का वर्णन बड़े ही विस्तार के साथ किया गया है[1]। सोमयागों तथा राजसूय यज्ञों का भी बड़े विस्तार के साथ इसमें वर्णन किया गया है । ब्राह्मण युग में यज्ञ का सम्पादन ही धर्म का मुख्य उद्देश्य था । समस्त कर्मों में यज्ञ ही श्रेष्ठतम माना जाता था । "यज्ञों वै श्रेष्ठतम कर्म"[2] ब्राह्मणों में यज्ञ की इतनी महिमा तथा आदर है कि विश्व का सबसे श्रेष्ठ देवता प्रजापति भी यज्ञ का ही रूप है - "एष वै प्रत्यक्षं यज्ञों यत् प्रजापतिः"[3] विष्णु का प्रतीक यही यज्ञ है "यज्ञों वै विष्णुः।" आकाश में दीप्यमान भी आदित्य यज्ञ रूप है" - सयः यज्ञोऽसौ आदित्य : ।"[4]

समस्त कर्मों में श्रेष्ठतम होने के कारण इस विश्व में यज्ञ ही परम आराध्य वस्तु है । जगत् के जितने पदार्थ हैं यहाँ तक कि देवों का जनक रूप प्रजापति भी, यज्ञ के ही आध्यात्मिक प्रतीक है । यज्ञ से ही सृष्टि हुई, इस वैदिक तत्व का परिचय हमें पुरुष सूक्त में ही मिल जाता है । अग्निहोत्र के अनुष्ठान से प्राणी अपने सब पापों से छूट जाता है[5]। अश्वमेध से यज्ञ करने वाला यजमान अपने समग्र पाप कर्मों को, समस्त ब्रह्म हत्या को दूर भगा देता है[6]।

---

1 शुक्ल यजुर्वेद - 11-18 अध्याय
2 शतपथ ब्राह्मण - 4/3/4/3/
3 शतपथ ब्राह्मण - 4/3/4/3/
4 शतपथ ब्राह्मण - 14/1/1/16
5 सर्वस्मात् पाप्मनो निर्मुच्यते य एवं विद्वानग्नि होत्रं जुहोति"
शतपथ ब्राह्मण 2/3/1/16
6 शतपथ ब्राह्मण - 13/5/4/1

यज्ञ कर्म के भीतर नाना कर्मों का अनुष्ठान पाया जाता है और वह भी एक विशिष्ट क्रम से सम्पन्न होता है । ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञीय अनुष्ठान के छोटे से छोटे विधि-विधानों का विशद वर्णन किया गया है ।

पारिजातहरण महाकाव्य में यज्ञ तथा यज्ञकर्मों का वर्णन किया गया है। परम योग्य वैदिकों के प्रतिपादित विधान एवं मन्त्र पाठ से सर्वाधिक ऐश्वर्य से शोभित तथा अवर्णनीय प्रीति को उत्पन्न करने वाले इस पर्वत पर यज्ञ स्वरूप भगवान् के द्वारा अधिकार प्राप्त कर दक्षिणा स्वरूप दक्षिण स्वभाव वाली रूक्मिणी यज्ञ करने के हेतु प्रस्तुत हुईं[1]। यज्ञ की इतिकर्तव्या का विशद - वर्णन इस महाकाव्य में किया गया है - मर्त्यलोकवासी मानव-गण पृथ्वी से उपजने वाले अन्न रसादि रूप सम्पत्ति से तृप्ति पाते हैं किन्तु स्वर्ग लोकीय अदृष्ट देवगण की तृप्ति के लिए नियम रूप यज्ञ ही है, जो वेदों के द्वारा शिक्षित हैं । यह यज्ञ वेदों से अनुशासित एक कर्म विशेष है । सत्पुरुषों ने सतत् इसका अनुष्ठान किया है इसलिए इसकी सफलता सिद्धि है तो फिर कौन इसको न करे । अतः रूक्मिणी जी का यज्ञ प्रस्ताव सहेतु है । कैसा भी कर्म हो बिना किसी परिणाम के शान्त नहीं होता । यह अनुभूत और सर्वसम्मत है । फिर यज्ञ रूप कर्म की सफलता भी स्वतः सिद्ध है[2]।

इस महाकाव्य में यज्ञ रूप कर्म की प्रामाणिकता भी सिद्ध की गई है- अनन्त कर्मों के होते हुए भी ये तीन राशियों में बंटे हुए हैं जैसे - द्विष्ट (अनिष्ट), इष्ट (हितकर), उदासीन (दोनों से भिन्न) सिद्धान्ततः इनके फल भी वैसे ही होते हैं[3]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 29, 30

2 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 31, 32

3 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 33, 34

शास्त्र और लोक से भी जिसका विधान अनुशासित है अर्थात् सत्फल के विचार से जिसके करने की आज्ञा प्राप्त है वही इष्टकर्म है तथा कुफल के अनुसन्धान से जिसके करने की मनाही की गई है उसे दिष्ट कहते हैं । हित, हानि दोनों से रहित फल की भावना से जिसे करने की कोई आज्ञा या निषेध कुछ नहीं है वह अनियन्त्रित कर्म ही तीसरा उदासीन कहा जाता है । यज्ञों को ही इष्ट कहते हैं । अतः यह इष्ट कर्म मनमाने ढंग से नहीं होने चाहिए अपितु उसके विधान साधन शास्त्रोक्त है । शास्त्र भी हमारे कल्पित मान्य नहीं है । जिन ऋषियों ने अध्यात्म बोध के लिए बड़ी-बड़ी आयु में समय लगाकर कठिन तपः क्लेश उठाया है साथ ही इसी विवेक में सारा जीवन व्यतीत किया है, जिनकी शक्ति संसार प्रसिद्ध है, ऐसे ही महात्माओं के लिखे व्यवहार प्रबन्धों को शास्त्र कहा जाता है । इच्छा विषय होने से सुख को भी इष्ट कहते हैं । उन शत-शत सुखों को यह यज्ञ ही फलते हैं तथा दिष्ट कर्म जो निषिद्ध है, वह अनिष्ट फल देते हैं । अन्य विधि निषेध से रहित कर्मों की स्थिति साधारण है । विधि होते हुए भी मन की प्रेरणा से ही इन कर्मों में प्रवृत्ति होती है क्योंकि प्रथम भोग्य को लक्ष्य करके ही उसकी सिद्धि के लिए कोई भी कर्म में प्रवृत होता है । यह विहिताविहित साधारण कर्म जैसे अनन्त है, उसी प्रकार उनके फल स्वरूप भोगों की भागणना नहीं है । किन्तु इन्हीं कर्मों के प्रयोजनीभूत फल रूप भोगों के विषय में जिनकी बुद्धि पूरा काम नहीं देती ऐसे लोग निषिद्ध कर्मों को भी कर बैठते है । किन्तु कर्मों के परिणाम तक ठीक पहुँचने वाली जिन विद्वानों की बुद्धि होती है वे इष्ट सुख प्राप्ति के लिए इन यज्ञों का ही अपनाते है, क्योंकि अन्ततः कर्मों के ही द्वारा संसार की गति नियमित है[1] । कर्म स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार के हैं । स्थूल कर्म लोक धन्धे जिनका भोज्य फल यही प्राप्त हो जाता है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 35 से 40

जैसे भोजन बनाया खाया क्षुधा निवृत्त हो गई । सूक्ष्म कर्मों का फल प्रत्यक्ष नहीं ज्ञात होता । मानस व्यापार रूप, जप, तप, उपासना आदि अनेक हैं । दृष्ट फल साधक तथा अदृष्ट फल साधक, इस प्रकार यह कर्म ऐहिक, आमुष्मिक नाम से भी दो है । इस शरीर के लिए ऐहिक तथा अमर आत्मा की उपर स्थिति के लिए आमुष्मिक (पारलौकिक) कर्म है । यह कर्म स्वभाव से ही शरीर, मन, वाणी के द्वारा किसी न किसी रूप में होते ही रहते हैं । (नहि कश्चित क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् कार्यतेह्यवशो जन्तुः सर्वःप्रकृतिजैर्गुणैः) किन्तु उन्हीं की व्यवस्था के लिए अर्थात वह उच्छृंखल रहकर, प्रतिकूल न पड़े अपितु अनुकूल सफल हो इसके लिए शास्त्रों में अनेक प्रकार से विवेक किया गया है[1] । पृथ्वीजल, वायु, अग्नि, आकाश इन पांचों तत्वों के सूक्ष्म अंशों से सम्पन्न हुआ यह यागांग हवन से उत्पन्न धूम रस रूप जल देने वाला मेघ बन जाता है । इन्हीं निजी रसों को बरसाकर भूमि रसादि रूप में परिणत हो औषधि रूप खाद्य पदार्थों (अन्ना) को उत्पन्न कर प्राणी के दीर्घ जीवन को बढ़ाता यह यज्ञ, प्रत्यक्ष ही सुखद लक्षित होता है । व्यापार परम्परा स्वरूप कर्मों की एकत्रित स्थिति नहीं होती । न तो वह भोग के बिना कभी क्षीण होते हैं और न कर्मों के बिना कोई रह ही सकता है । इसलिए उसके विवेकार्थ अपने उत्तर दायित्वभार को मिटा रखने के लिए बुद्धि के द्वारा , शास्त्रगत विधियों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । उनके आधार पर चलना ही श्रेयस्कर है । जिन यज्ञों की फल प्राप्ति जन्मान्तर या कालान्तर में निर्धारित है । यज्ञ से ही उत्पन्न अपूर्व (अदृष्ट) रूप व्यापार, उसकी उस समय तक रक्षा करता है और समय पर फल प्राप्ति होती है । केवल प्रत्यक्ष फल पर ही विश्वास रखने वाले मूढ़ जो इहलौकिक फल मात्र के लिप्सु संसार में बड़े-बड़े व्यापार करते हुए

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 41-42

भी सार्वदिक कल्याण के भागी नहीं होते[1]। ऐसा जानकर ही शास्त्रीय विधि वाक्यों द्वारा बोधित देवताओं की तृप्ति चाहती हुई रूक्मिणी यज्ञ में तत्पर हुई। क्योंकि उसी को अमृत कहा गया है।
{अमृतन्नामयत्सन्तोमन्त्रजिह्वेषु जुह्वति}[2]

यज्ञ करने की विधि का भी उल्लेख इस महाकाव्य में मिलता है - यज्ञ में प्रवृत्त हुई रूक्मिणी जी ने सभी वेदों के ज्ञाता ऋत्विक् गणों की बतलाई विधियाँ अंग पूजा आदि के साथ आरम्भ कर दी। संकल्प पूजन आदि के समय कुंकुम से रंगे अक्षतों को छोड़ता रूक्मिणी जी का कर कमल पुष्परस से रंगे निकलते भंवरों से युक्त कमल पुष्प के समान शोभित हो रहा था। सर्वथा कल्याण भागिनी यह रूक्मिणी होताओं के द्वारा अग्नि आहुतियां दिलाने लगी श्री रूक्मिणी जी ने किसी भी अ. अप्रिय वस्तु का समर्पण नहीं किया और न ही कोई प्रिय वस्तु किसी को देने के लिए बाकी रखा, देवताओं की प्रसन्नता के हेतु अग्निदेव को सबसे अधिक तृप्त किया[3] करूण, भयानक, वीभत्स इन तीन रसों से रहित शेष छः काव्य रसों के समान छः रस के अपूर्व यज्ञांगभूत भोजन से ब्राह्मणों को तृप्त किया[4]।

वेद की ऋचा के बारे में इस महाकाव्य के दूसरे सर्ग में कहा गया है - स्वर मूल, भेद, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित से युक्त ऋचा को पढ़ता आहु ताम्रचूड़ {मुर्गे रूप ऋत्विजों} का वृन्द शुभ सम्पत्ति के लिए जगत् के सारे व्यसनों का तेजस्वी सूर्य में हवन कर देना चाहता है {मुर्गों का बोलना प्राकृतिक है} ताम्रचूड़ {मुर्गे} अग्निहोत्र का समय हो गया है ऐसा जानकर

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 44-50
2 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 51
3 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 53-58
4 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 60

अग्निहोत्रियों को जगाते हुए यह आदेश दे रहे हैं कि हाथ में जुहू ‡हवन साधन पात्र विशेष‡ उठाओ " कु कु हू कू" नही अपितु करें जुहू ऐसा कह रहें हैं । हे देव । अग्नि को दीप्त करने वाली ऋचाओं को पढ़ते हुए अग्निहोत्री ब्राह्मणगण, कुशकण्डिका आदि विधि से शोभित कुण्ड वाले मण्डप में बैठे स्वाहाकार आलापते हवन कर रहे हैं[1]।

मर्त्यविहित यज्ञों से ही देवताओं की तृप्ति होती है । ऐसा बताते हुये नारद जी कहते हैं - वे ‡इन्द्र‡ देवलोक के स्वामी होते हुए भी पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले औषधि रस, आदि हविष्य विशेष जो देवमुख अग्नि में हवन रूप से दिया जाता है, उससे तृप्त होते है अर्थात् मर्त्यविहित यज्ञों से ही उनकी तृप्ति होती है[2]।

पारिजातहरण महाकाव्य में सृष्टि की वैदिक प्रक्रिया का निरूपण किया गया है - यह संसार अग्नि स्थली है जिसमें सोमरस रूपी चेतना की आहूति दी गई है । यह संसार अग्निवेदी है रजोगुण अग्नि है विधियुक्त अपना पराक्रम सोमरस इस अग्नि में हुत है ‡हवन किया गया है‡ पहले यज्ञ में अधिष्ठित विराट् पुरुष प्रजा के लिए उत्पन्न किया गया । अब पुत्र बनकर नरकभित् के परिणाम को प्राप्त होता है[3]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 43-45

2 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 78

3 पारिजातहरण महाकाव्य - विंश सर्ग - 11, 12

दार्शनिक सिद्धान्त :-

श्री उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाव्य में विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का उल्लेख हुआ है जिसमें सांख्य सिद्धान्तों का उल्लेख कुछ अधिक हुआ है ।

सांख्य :-

पारिजातहरण महाकाव्य में सांख्य सिद्धान्तों का उल्लेख हुआ है । प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द प्रमाण में ही सभी प्रमाणों के अन्तर्भूत होने के कारण सांख्य को ये तीन ही प्रमाण मान्य प्रमाण से ही प्रमेयों का ज्ञान होता है[1] ।

प्रमाण प्रमा या यथार्थज्ञान का मुख्य साधन है । यह (प्रमाण) वह चित्तवृति है जिसका विषय निश्चित रूप से ज्ञात हो रहा हो, बाधित होने वाला न हो तथा पूर्व से ज्ञान न रहा हो । ऐसी चित्तवृत्ति से उत्पन्न, अतएव उसका फलभूत पुरुषवर्ती बोध प्रमा है । इसी के साधन को प्रमाण कहते हैं ।

ये तीन प्रकार कौन है यह कहते है - प्रत्यक्ष अनुमान तथा शब्द या आगम । यह त्रिविधत्व कथन लौकिक प्रमाणों के ही अभिप्राय से कहा गया है, (अर्थात् साधारण जनों के ज्ञानोत्पादन में उपयोगी प्रमाण तीन ही है

---

1 सांख्यकारिका - 4

क्योंकि शास्त्र साधारण जनों के ही ज्ञानार्थ होता है और इस कारण से लौकिक प्रमाण ही यहाँ निरूपण के विषय है[1] पारिजातहरण महाकाव्य में सांख्य सिद्धान्तों के इन प्रमाणों के विषय में कहा गया है :-

प्रत्यक्ष, अनुमान, तथा आगम प्रमाण से भी इसकी तथ्यता पर विश्वास कर बुद्धिमान पुरुष इष्ट सिद्धि के कारणीभूत अनुशासन वाले उन शास्त्रों में किए गए विवेक का अनुसरण करते हैं[2]।

तेईस अवान्तर तत्वों के रूप में परिणत होने वाली सांख्य की यह प्रकृति "अजा" अर्थात् अनादि और अनन्त अर्थात् अविनाशिनी है इसमें सत्व, रजस्, तथा तमस् तीन गुण हैं इसलिए यह त्रिगुणा[3] कहलाती है । इन सत्व इत्यादि तीनों की "गुण" संज्ञा इनके "परार्थ"[4] अर्थात पुरुष के भोगापवर्ग के लिए होने के कारण है । जिसकी स्थिति दूसरे के लिए होती है, अपने लिए नहीं, उसका उस दूसरे की अपेक्षा अप्रधान भाव - गुणभाव कहता है । इसी से सत्व इत्यादि गुण कहे जाते हैं । ये तीन गुण प्रकृति के धर्म या स्वभाव भी महत् अहंकार, तन्मात्र इत्यादि प्रकृति के कार्यों में भी आ जाते हैं, क्योंकि यह तो नियम ही है कि कारण के गुणों या धर्मों से ही कार्य में गुण या धर्म आते हैं । इस प्रकार इनसे उत्पन्न सारा जगत् ही त्रिगुणात्मक तथा सुख-दुःख मोह-स्वरूप है[5]।

---

1 सांख्यतत्वकौमुदी , पृ० - 101

2 पारिजातहरण महाकाव्य चतुर्थ सर्ग - 43

3 त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि ।
व्यक्तं, तथा प्रधानं,तद्विपरीतस्तथा च पुमान् ।।
सांख्यकारिका-11

4 सांख्यकारिका - 12, 17

5 "सत्वादीनामतद्धर्मत्वंतद्रूपत्वात् । सांख्यसूत्र 6/31

6 "एते गुणाः प्रधान शब्द वाच्या भवन्ति"-योगसूत्र 2/10 का व्यासभाष्य

पारिजातहरण महाकाव्य में बताया गया है तीनों गुणों को प्रकृति धारण किए हुए है – सत्वगुण से युक्त स्वच्छ जलों में सरजा अर्थात् रजोगुण से युक्त किंच परागो से भरे तमः कण(तमोगुण के कणों (किंच अन्धकार कणों के समान भ्रमरों की श्रेणियों से घिरी लाली ललित कमलों की मालायें मानों, शोभामय प्रकार से बनाकर अपने तीनों गुणों को प्रगट करके प्रकृति धारण किए हुई है[1]।

पारिजातहरण महाकाव्य में सांख्य की इस प्रकृति के बारे में कहा गया है।

भगवान्! यह तत्वात्मिका (सांख्यमतानुसार 24 तत्व रूप में फैली हुई) अन्य मतों में तद्धर्म, तत् शक्ति आदि रूपों में मानी जाने वाली जड़ा प्रकृति या माया आपके दर्शनार्थ आपकी अधिष्ठित भूमिका में प्रवेश करते हुए लोगों का उन-उन सत्व, रज, तम, रूप गुणों का दरवाजा ढँककर सम्मुख निजी विलासों से छला करती है[2]। जिन्होंने उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए यदि प्रकृति सम्पन्न शरीर धारण किया है तो प्रकृति के गुणों का अनुरोध भी बलात् उनको (कृष्ण को) करना ही पड़ता है। किन्तु अपने भावानुसार उनके दोषमय या गुण मय रन्जन (उपयोग) समय तथा करने वाले भेद से स्थान विशेष में सम्पन्न है। संक्षेपतः तात्पर्य यह है कि काम, क्रोधादि विकार युक्त त्रिगुणात्मक प्राकृतिक शरीरधारी जितने हैं सबमें यह विकार रहते ही है[3]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य – दशम सर्ग – 13
2 पारिजातहरण महाकाव्य – पंचम सर्ग – 10
3 पारिजातहरण महाकाव्य – दशम सर्ग – 62

प्रकृति से महत् या बुद्धि तत्त्व, महत् से अहंकार और अहंकार से पांच तन्मात्र तथा ग्यारह इन्द्रियां इन सोलह तत्वों का समूह उत्पन्न होता है। इन सोलहों के समूह में अन्तर्भूत पांच तन्मात्रों से पांच महाभूत (आकाश इत्यादि) उत्पन्न होते हैं[1]। पारिजातहरण महाकाव्य के पंचम सर्ग में कहा गया है - भगवन् ! आपके प्रभाव से संसार के मूलभूत जो परमार्थतः सत् नहीं है ऐसे पृथ्वी आदि पंच भूतों के रहते भी प्रपंच के विचित्रता का जो भान होता है इसका निदान (आदि कारण) आपकी असाधारण इच्छा ही बतलाई गई है[2]।

सांख्य के प्रमेय या पदार्थ मुख्यतः दो ही है एक तो जड़ प्रकृति और दूसरा चेतन पुरुष और सारा जड़ जगत् इसी जड़ प्रकृति का परिणाम है और इसी परिणाम का नाम सर्ग या सृष्टि है। वह परिणाम त्रिगुणात्मक प्रकृति का प्रकृति रूप ही परिणाम है। इसे ही सदृश परिणाम भी कहा गया है जो प्रलय काल में होता रहता है। इस सदृश परिणाम में प्रकृति के गुणों का पारस्परिक साम्य नष्ट नहीं होता उसी से कोई अभिनव सृष्टि नहीं होती[3]।

स्वयं अनुत्पन्न होकर भी महत् इत्यादि कार्यों को उत्पन्न करने वाली एक होकर भी रजस्सत्वतमोरूप त्रिगुणात्मिक मूल प्रकृति को हम नमस्कार करते है[4]।

---

1 सांख्य तत्त्व कौमुदी - सांख्य कारिका - 22

2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 15

3 सांख्य तत्त्व कौमुदी पृ0 56

4 सांख्य कारिका - 1" 1"

पारिजातहरण महाकाव्य में सांख्य की इस प्रकृति के बारे में इस प्रकार कहा गया है - यह एक ही त्रिदेव की त्रिगुणात्मिका शक्ति जो जगत् का अन्त करने वाला अपना सार लेकर रुद्र शक्ति या जगत् के अस्त करने वाला यम की बहन यमुना का लेकर तमोमय श्याम भेद धारण करती ब्रह्म शक्तिरूपिणी किंच स्वभाव से सत्वगुण का श्वेत रूप धारण करने वाली जो त्रिगुणात्मिका प्रकृति है, जिसके वर्णन में {एकामजां लोहित शुक्ल कृष्णामुइत्यादि वाक्य है}[1] वही त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित हो रही है[2]।

प्रकृति के दर्शन द्वारा पुरुष की कैवल्य सिद्धि के लिए प्रकृति और पुरुष का संयोग होता है जिससे सृष्टि होती है । स्पष्ट है कि पुरुषार्थ सिद्धि के लिए प्रकृति और पुरुष का परस्पर संयोग होता है । पुरुष के द्वारा प्रधान का दर्शन तथा प्रधान के द्वारा पुरुष का कैवल्य सम्पन्न होने के लिए पंड॰गु और अन्ध के समान दोनों का संयोग होता है जिससे सृष्टि होती है[3]।

पारिजातहरण महाकाव्य में प्रकृति पुरुष के संयोग के बारे में इस प्रकार कहा गया है - ऐसा ज्ञात होता है कि यह एक ओर संसार की प्रकृति जन्म मलिनता ही यमुना है और दूसरी ओर उस परम पुरुष की श्वेत विभूति {ऐश्वर्य} ही गंगा है उनके पदारविन्द की प्रेमिका यह सरस्वती कवि वाणी या सरस्वती नामक नदी इन दोनों को संहित कर एक में मिला रही है अर्थात् प्रकृति पुरुष के संयोग को अनुराग भरी कवि सरस्वती जैसे बखान रही है[4]।

---

1 सांख्य कारिका - 1
श्वेताश्वतरोपनिषद् 4/5
2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 45

3 सांख्य कारिका - 21
4 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 44

सारा जड जगत् इसी प्रकृति का परिणाम है इसी को पारिजातहरण महाकाव्य के बीसवें सर्ग में इस प्रकार कहा गया है - पुरुष की अगम्य चेतना को आत्मगत करके उपलक्षित (दिखाई देने वाले) विश्व की आधारशक्ति (प्रकृति) है अथवा सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाली वह परा प्रकृति है, उसका कौन अतिक्रमण करें[1] ।

सांख्य शास्त्र में कहा गया है कि मूल प्रकृति किसी का विकार अथवा कार्य नही है । महत् इत्यादि (बाद के) सात तत्त्व कारण और कार्य दोनों ही है । सांख्य शास्त्र में यह समस्त विश्व 25 तत्वों का खेल माना गया है इनके दो मुख्य विभाग है - पुरुष और प्रकृति । इनमें से पुरुष अथवा आत्मा तो चैतन्य स्वरूप है वह न तो किसी तत्त्व से बनता है और न उससे कुछ बनता है । प्रकृति के आठ विभाग माने गए है और उसमें सोलह विकारों की उत्पत्ति कही गई है, आठ प्रकृतियां ये है - (1) मूल प्रकृति (2) महतत्त्व(बुद्धि) (3) अहंकार (4) शब्द (5) स्पर्श (6) रूप (7) रस (गन्ध) । सांख्य में प्रकृति उसको कहते है जिससे आगे चलकर कोई अन्य तत्व उत्पन्न हो[2] ।

प्रकृति विकृति रूप जो सात महत्तत्वादिक है उनका मूल कारण होने से उनको मूल प्रकृति कहते है उसका नाम प्रधान भी है, वह मूल प्रकृति जो है, वह अविकृति है अर्थात् वह किसी का भी कार्य नहीं है[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - विंश सर्ग - 14

2 सांख्य दर्शन - महर्षि कपिल

3 मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृति विकृतयः
षोडशकस्तु विकारो नप्रकृतिर्नविकृतिः पुरुषः ।।
"सांख्य तत्वसुबोधिनी कारिका"3"

पारिजातहरण महाकाव्य के छठे सर्ग में इसी मूल प्रकृति के बारे में इस प्रकार कहा गया है – नारायण की आठ पटरानियाँ जो सांख्य शास्त्र प्रतिपादित आठ प्रकृतियों के समान है उनमें प्रधान मूल प्रकृति आप ही हो इस निश्चय को आज भगवान् ने सत्य कर दिखाया[1]।

इस प्रकार प्रकृति विकृति रूप जो सात महतत्वादिक हैं उनका मूल कारण प्रकृति है। प्रकृति के आठ विभाग माने गए है और इसमें सोलह विकारों की उत्पत्ति कही गई है।

पारिजातहरण महाकाव्य में प्रकृतिविकृति के बारे में बीसवें सर्ग में इस प्रकार कहा है – हे राक्षस ! इस संसार का मूल "प्रकृति" है उनकी सात विकृतियां है उसमें सोलह हजार "भूत-भौतिक" विकारों को कैद कर रखा गया है तुम उन सोलह हजार विकारों रूपी राज कन्याओं को दुःखी कर रहे हो[2]।

गुणवती एवं उपकारिणी प्रकृति बिना किसी स्वार्थ के ही इस निर्गुण एवं प्रत्युपकार विहीन पुरुष का अनेक उपायों द्वारा कार्य साधन करती है। जैसे सर्वगुण सम्पन्न एवं उपकारी होने पर भी सेवक निर्गुण एवं प्रत्युपकार विहीन स्वामी से अपनी सेवा का कुछ भी फल नहीं पाता उसी प्रकार यह गुणवती एवं उपकारिणी उदार प्रकृति अनुपकारी पुरुष के लिए प्रयत्न या कार्य करने पर भी स्वयं निष्फल ही रहती है। इस प्रकार पुरुष के लिए ही यह प्रवृत्त होती है, अपने लिए नहीं[3]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य – षष्ठ सर्ग

2 पारिजातहरण महाकाव्य – विंश सर्ग – 48

3 सांख्यकारिका – 60

सम्पूर्ण जड जगत् इसी जड प्रकृति का परिणाम है और इसी परिणाम का नाम सृष्टि है । वह परिणाम त्रिगुणात्मक प्रकृति का प्रकृति रूप ही परिणाम है ।

गुणों वाली और उपकार करने वाली प्रकृति नाना प्रकार के उपायों को करके अनुपकारि पुरुष के लिए चेष्टा करती है, अर्थात देव मनुष्य तिर्यगादियोनियों के सम्बन्धों को कराके और सुख दुख मोहभाव को पुरुष को प्राप्त कराके तथा शब्दादिक विषयों को प्राप्त कराके, नाना प्रकार के उपायों को कराके अपने को प्रकाश्य करके पश्चात् पुरुष को ऐसा ज्ञान कराती है " मैं अन्य हूँ" "तुम अन्य हो" फिर पुरुष से हट जाती है । नित्य जो पुरुष है उसके लिए व्यर्थ ही प्रकृति चेष्टा करती है जैसे कोई परोपकारी सबपर उपकार करता है । परन्तु अपने प्रत्युपकारी की अर्थात् बदले की इच्छा नहीं करता है एवं प्रकृति भी पुरुष के लिए उपकार को करती है, पश्चात् आत्मा का अपने स्वरूप का प्रकाश करके निवृत्त हो जाती है[1] । पारिजातहरण महाकाव्य में सांख्य शास्त्र के इस मत का इस प्रकार से निरूपण किया गया है - सांख्य शास्त्रवालों के मत से अनादि सिद्ध चेतन निर्लिप्त पुरुष ईश्वर है, जडात्मिका, त्रिगुणमयी उसकी प्रकृति ईश्वरीय चैतन्य से विम्बित हो संसार की गुण दोषमय सृष्टि करती है । इसी प्रकार प्रकृति के विशेष अंशों से जायमान स्त्रियां है अतः कारणगत जड़ता को पाकर उसके अनेक विकारों से भरी होती है । इसलिए निर्लिप्त चेतन पुरुष के अंशों से उत्पन्न हम पुरुषों का उन स्त्रियों के अधीन विलास बन्धन ही होता है, क्योंकि शुद्ध ब्रह्म ही प्रकृति प्रतिच्छन्न हो बद्ध जीव बन जाता है[2] ।

---

1 सांख्य तत्वसुबोधिनी

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादशसर्ग - 72

पारिजातहरण महाकाव्य में नारद जी इन्द्र से कहते है - हे देव ! अखिल नायक भगवान् कृष्ण के विषय में, स्त्रैण बुद्धि करना भी आपका निजी स्वभाव को धोखा देना है । वे तो उनकी सहजशक्ति रूप प्रकृतियां है - जिन्हे [गुणों से] रञ्जित करते हुए व्यवहारों का विधान करते है, अन्यथा इस निरंजन पुरुष को जगह व्यवहार से क्या प्रयोजन[1] ।

न्याय :-

पारिजातहरण महाकाव्य में न्याय वैशेषिक सिद्धान्तों का यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है । न्याय सिद्धान्तों में कहा गया है - जिसका कार्य से पहले होना नियत हो और जो अन्यथा सिद्ध नहीं होता वह कारण कहलाता है जैसे - तन्तु तथा वेमा इत्यादि पट के कारण होते है[2] । यह सर्वसम्मत है कि कारणों के होने पर ही कोई कार्य होता है, अतः कारण को कार्य से पूर्वभावी कहा गया है । उदाहरणार्थ - पट एक कार्य है, उसके कारण हैं तन्तुवाय, तुन्तु, तुरी, वेम इत्यादि । वे पट से पूर्व ही विद्यमान रहते हैं ।

उसी प्रकार जो नियमरूप से कारण के बाद में [पश्चाद् भावी] हो तथा जिसकी सत्ता अनावश्यक एवं आकस्मिक न [अनन्यथासिद्ध] हो उसे कार्य कहते हैं[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 83

2 अनन्यथासिद्ध नियत पूर्वभावित्वकारणत्वम्[तर्कभाषा] पृ० 13 कारणमिति-ज्ञानेतरे कार्यनियतपूर्ववर्तितातीयवृति पदार्थविभाजकोपाधिमत्वम् । वै०सू०1/1/8 पर उपस्कार

3 अनन्यथासिद्धनियत पश्चाद्भावित्वं कार्यत्वम्[तर्क-भाषा पृ०13] कार्यमिति प्रागभाव प्रति योग्विृति पदार्थ विभाजकोपाधिमत्वं/ वै०सू० 1/1/8 पर उपस्कार

पारिजातहरण महाकाव्य के पंचम सर्ग में कहा गया है - हे भगवन् ! जाति (जन्म) आकृति क्रिया गुणों से आपका कोई वर्णन नहीं कर सकता । क्योंकि नित्य शुद्ध आत्मा के ये सभी असत्य उपाधिमात्र है । अतः इन परिचायक चिह्नों के द्वारा आपका ठीक-ठीक स्वरूप ज्ञान सर्वथा असम्भव है । फिर भी संसार की सभी शक्तियों से असाध्य संसार के अद्भुत सुविधानउत्पत्ति, विनाश, कार्य बिना कारण नहीं हो सकते, कार्य से कारण का अनुमान होता है जैसे घड़े से कुम्हार का इस अनुमान से कारणीभूत आपकी चेतनात्मक सत्ता की प्रतीति कैसे मिटाई जा सकती है[1] ।

अव्याकृत अवस्था में अज्ञान में सत्वादि गुणों का जो क्रम(तारतम्य) होता है, उसी क्रम से कार्यों में भी गुण उत्पन्न हो जाते जैसे-जैसे कार्य वैसे-वैसे उनके कारणों में रहने वाले सत्वादिगुण उन कार्यों में कार्यों की उत्पत्ति के साथ ही उत्पन्न हो जाते हैं[2] ।

नृसिंह सरस्वती के कारण गुण प्रक्रम की व्याख्या करते हुये वैशेषिक के "कारणगुणा हि कार्यगुणानारभन्ते"[3] इस सिद्धान्त को उद्धृत किया है" । कारणगुण प्रक्रमन्याय की व्याख्या इस प्रकार की गई है । कारणगुणाः सजातीयगुणान् कार्य आरभन्ते यथा तन्तुरूपादयः स्वकार्ये पटे सजातीय रूपादीनारभन्ते न विजातीयानेवं यत्रकारणगुणानुगमस्तत्रास्य प्रवृत्तिः[4]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 7

2 "कारणस्याव्याकृतस्य ये गुणाः सत्वादयस्तेषां प्रक्रमेण, तान्गुणानारभ्य यथा कार्यक्रमं सत्वादिगुणाः सहैव कार्येस्तेषूत्पद्यन्त इत्यर्थः
-विद्वन्मनोरंजनी"

3 तर्कभाषा

4 वाचस्पत्यम् में वैशेषिक दर्शन के अनुसार लिखी गई व्याख्या

(3) न्याय दर्शन के अनुसार कार्य की उत्पत्ति में तीन कारण होते हैं -1- समवायि अथवा उपादान कारण (2) असमवायि (3) निमित्त कारण ।

दण्ड चक्रसूत्र आदि असमवायि कारण तथा कुम्भकार अथवा अन्य कोई अदृष्ट वस्तु निमित्त कारण है । समवायि कारण के गुण, कार्य में समवेत नित्य-सम्बन्ध रूप(समवाय से प्राप्त) होते हैं किन्तु असमवायि तथा निमित्त कारण के गुण समवेत नहीं होते । दण्डचक्र आदि के हरित या पीत होने का तथा कुम्भकार के गौर या श्याम होने का घट के रंग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा[1] ।

पारिजातहरण महाकाव्य में न्याय के इस कार्यकारण सम्बन्ध को इस प्रकार कहा गया है - जो कुछ भी मनुष्य करते या कराते है, उस कार्य के कारण प्रकृतिगत गुणों, सत्व, रजः तमो रूप से, सर्वथा-प्रसूत, बुद्धि विकारमय निजी भाव(मानस भाव) मय होते हैं । उसी प्रकार के अनुसार प्राप्त परिणाम से चित्त को विकसित करते हैं । कारणगुणानुरूप ही कार्यसिद्धि प्रसिद्ध है[2] ।

---

1 न्याय सूत्र 3/1/25 पर वात्स्यायन भाष्य कारण भावात्कार्य भावः
वैशेषिक सूत्र-4/1/3 पृथिव्यां रूप रसगन्धस्पर्शाः कारण गुणपूर्वका इति रूपाश्रयस्य घटोदेर्यत्समवायि कारणं कपालादि तदेगुणपूर्वकाः तथाचकपाल रूपं कारणेकार्य समवाय प्रत्यासत्याघटरूपाद्यसमवायिकारणम् एवं रसादीवपि।
वैशेषिक सूत्र 7/1/6 पर उपस्कार

2 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 63

कारण व्यापाकर के पूर्व भी कार्य (कारण में) विद्यमान रहता है क्योंकि असत् या अविद्यमान होने पर कार्य की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती[1]। सांख्य की ही भाँति न्याय भी कार्य को सत् ही मानता है। पारिजातहरण महाकाव्य के दशम सर्ग में कहा गया हहै - इसलिए आपने जो कहा, छोटे कारण से बड़ी प्रतिज्ञा सा क्यों हुई तो उपर्युक्त कारणों से किसी भी कार्य के कारणों की लघुता या गुरुताजीव के चित्तगत बोध का अनुसरण करती है अतः सबकी गति समान नहीं होती है[2]।

(घट की उत्पत्ति में) तन्तु के रूप को नियत पूर्वभाव (नियम पूर्वक पहले रहना) तो है ही, किन्तु वह (तन्तु-रूप) अन्यथा सिद्ध है क्योंकि पहले के रूप के उत्पादन में ही वह चरितार्थ हो चुका है[3]। भाव यह है कि किसी कारण में कार्य के उत्पादन की कोई शक्ति होती है वह शक्ति जब किसी एक कार्य के प्रति उपयुक्त हो चुकती है तो वह कारण(जनक) के प्रति पूर्वभाव जाने बिना जिस पदार्थ का व प्रस्तुत कार्य के प्रति पूर्वभाव नहीं जाना जाता (अर्थात कारण का भी कारण) वह अन्य सिद्ध है जैसे कुम्भकार के प्रति पूर्वभाव जाने बिना कुम्भकार के पिता का घट के प्रति पूर्वभाव नहीं जाना जाता अतः कुम्भकार का पिता घट के प्रति अन्यथा सिद्ध है (कुलाल जनकोऽपर)

पारिजातहरण महाकाव्य में ब्रह्मा जी को जगत् का कारण बताते हुए कहा गया है --

---

1 सांख्य तत्व कौमुदी - सांख्य कारिका - 9

2 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 64

3 तर्कभाषा - पृष्ठ - 20

सबके उत्पादन तथा रक्षा में दक्ष होने के कारण अपने ही जात का पितृत्व प्राप्त कर लिया है §सबके पिता हो चुके हो§ इसलिए ब्रह्माव जी जगत्कारण होते भी §घर के प्रति कुलाल की अपेक्षा जैसे उसका पिता अन्यथा सिद्ध कारण है§ आपके द्वारा अन्यथा सिद्धि प्राप्त कर सही संसार के "पितामह" पद को धारणा करते हैं ।

इसलिए "पितामह" ऐसा उनका नाम है[1] ।

न्याय वैशेषिक में अनुभव दो प्रकार का माना गया है - §1§ यथार्थ §2§ अयथार्थ ।

§1§ वस्तु के सत्यरूप का ज्ञान यथार्थ अनुभव प्रमा या प्रमिति कहा जाता है जैसे रजत में "यह रजत है" यह ज्ञान §2§ किसी वस्तु को कोई दूसरी वस्तु जो वह नहीं है समझ लेना अयथार्थ अनुभव है । इसी को अप्रमा या विभ्रम कहते हैं । जैसे सीपी में "यह रजत है" यह ज्ञान[2] ।

अयथार्थ अनुभव या विभ्रम तीन प्रकार का होता है §1§ संशय §विकल्पात्मक ज्ञान §2§ विपर्यय §मिथ्याज्ञान §3§ तर्क[2] । अयथार्थ अनभव विपयर्य है । जो वस्तु जैसे न हो उसे उस रूप में जान लेना विपर्यय कहलाता है - "विपर्ययस्तु अतस्मिन् तद्ग्रहः[3] इस भ्रम या भ्रान्ति भी कहते हैं । उदाहरणार्थ कोई दूर से चमकती हुई सीधी §शुक्तिका§ को देखता है, उसे चाँदी §रजत§ समझ लेता है । वहां जो चाँदी नहीं है, उसमें "यह चाँदी है" इस प्रकार का अनुभव हो रहा है । अतः यह विपर्यय या भ्रान्ति ज्ञान है[4] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 54
2. तर्क संग्रहः, प्रत्यक्ष परिच्छेद पृ050-53 चौ0 सं0 सी0 1934
3 तर्कसंग्रह - पृ0 173-139
4 तर्कभाषा - पृष्ठ 14
5 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 76

पारिजातहरण महाकाव्य में विपर्यय ज्ञान को बताया गया है कि इन्द्र से नारद जी कहते हैं कि एकाएक ज्ञात हो पड़ी समता के कारण रस्सी में उदित हुई सर्पबुद्धि किसी की भी हो सबके लिए भ्रान्ति ही है[1]।

उत्तर मीमांसा वेदान्त --

वेदान्तियों के सिद्धान्तों का उल्लेख पारिजातहरण महाकाव्य में किया गया है। सन्निकृष्ट पदार्थों में जो अपने धर्मों का आधान {आरोप} कर देता है उसे उपाधि कहते हैं[2]। भारतीय दर्शनों से प्रयुक्त होने वाला यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पद है। केशवमिश्र ने प्रयोजक को उपाधि कहा है[3]। वाचस्पत्यम् में इसका लक्षण इस प्रकार दिया गया है - अन्यथा स्थितस्य वस्तुनोऽन्यथाप्रकाशनरूपे।[4]

जब कोई वस्तु अपने स्वरूप से भिन्न रूप में प्रकाशित हो, तो भिन्न रूप में प्रकाशित होने का जो प्रयोजक हेतु होता है, उसे उपाधि कहते हैं। अतः अज्ञान ही उपाधि है। जब सच्चिदानन्द ब्रह्म, ईश्वर याजीव के रूप में प्रकाशित होता है तो ईश्वरत्व का प्रयोजक समष्टयज्ञान और जीवत्व का प्रयोजक व्यष्टयज्ञान उपाधि बनता है। पाश्चात्य विद्वानों ने उपाधि का अनुवाद प्रायः इन शब्दों में किया है — 1. Associate, 2. Limiting adjunct, 3. Environment.

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादशसर्ग - 76
2 उपसमीपवर्तिनि पदार्थे आदधाति स्वकीयं धर्ममित्युपाधिः वेदान्तसार पृ047
3 प्रयोजकश्चोपाधिः इत्युच्यते - तर्कभाषा
4 "वाचस्पत्यम्"

प्राज्ञ (जीव) की अपेक्षा ईश्वर इसलिए उत्कृष्ट है क्योंकि वह माया का स्वामी होता है ।

पारिजातहरण महाकाव्य के षष्ठ सर्ग में कहा गया है - ब्रह्म पर्यन्त सारे जगत् के व्यवहारों को जड़, तथ्य न होता हुआ भी सत्य के जैसा यह एक दूसरे को जोड़ता है । यद्यपि यह सम्बन्ध बहुत से औपाधिक नामों से कहा जाने वाला स्वस्वामि गुरु, शिष्य पितृ-पुत्र-पति-पत्नी भावादि भेदों से विभिन्न प्रकार का है[1] । यह सम्बन्ध यद्यपि दो आश्रमों में रहता है किन्तु उन दोनों को तादात्म्य सत्ता का भेदक नहीं होता तथा किसी को बढ़ा घटाकर नहीं जोड़ता किन्तु औपाधिक आकृति के द्वारा जो द्वैत भासमान है उसे तो इस प्रकार के सही ज्ञान रहते भी विद्वानों को रखना ही होगा[2] ।

अद्वैत वेदान्त के अनुसार जगत् की सृष्टि वास्तविक नहीं है । जैसे सीपी में भ्रम के कारण चाँदी भासित होने लगती है अथवा रस्सी में साँप दिखाई पड़ने लगता है, उसी प्रकार अद्वैत आत्मतत्व पर अज्ञान के कारण जगत् की भ्रमात्मक प्रतीति हो रही है । इसी को अध्यारोप कहते हैं । शारीरिक भाष्य के प्रारम्भ में अध्यास का लक्षण इस प्रकार दिया है -- "स्मृति रूपः परत्र पूर्व दृष्टावभासः[3] । कभी भी सर्पभाव को न प्राप्त होने वाली रस्सी पर सर्प के आरोप के समान वस्तु पर अवस्तु का आरोप करना ही अध्यारोप है[4] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 30
2 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 31
3 शारीरिक भाष्य में अध्यास भाष्य
4 असर्पभूतायां रज्जौ सर्पारोपवद् वस्तुन्यवस्त्वारोपोअध्यारोपः:वेदान्तसार-1।

अध्यारोप के विषय में Dr. Fitgeddward Hall लिखते हैं —

"When the Vedantins speak of the origin of the world, for instance, they do not believe its origin to be true. This mode of expression they call false imputation. §अध्यारोप§[1]

पारिजातहरण महाकाव्य में अद्वैतता को सिद्ध करने के लिए बताया गया है कि अविचल प्रेम में, अतात्त्विक बाहरी व्यवहारों का क्या सम्बन्ध है तो हे नारद । ऐसे प्रेम में भी व्यवहार की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि व्यवहार से तो यह जाना जा सकता है । सत् ब्रह्म जो सबसे निरपेक्ष है, उसका भी अद्वयत्वेन ज्ञान, अविद्या मूलक अज्ञान से अन्यथा भासमान, अतथ्य प्रपंच में बाधित ज्ञान के उत्तर अध्यवसाय, निश्चयात्मक ज्ञान में ही प्रमाणित होता है । तात्पर्य यह है कि जैसे रज्जु में सर्प-ज्ञान भ्रमात्मक है, इसी प्रकार अद्वितीय ब्रह्म में सारा द्वैत प्रपंच भ्रमात्मक है । मूलतः सत्य एक ही है । इस प्रकार का दृष्टान्त जो दिया जाता है इसमें यदि रज्जु ज्ञान भी अध्य ब्रह्म में असत्य है तो विषम उदाहरण है किन्तु असत्य ज्ञान के बल, दृष्टान्त में पुष्ट कर यथार्थ का बोध करा देने मात्र में इस व्यावहारिक उदाहरण की आवश्यकता है । अन्यथा उसकी अद्वैतता कैसे सिद्ध होगी[2] ।

---

1 Rational Refutation, Page 209

2 पारिजातहरण महाकाव्य-सप्तम सर्ग - 38

स्थूल शरीरों की व्यष्टि § अर्थात एक स्थूलशरीर§ से उपहित चैतन्य, सूक्ष्म शरीर के अभिमान का बिना परित्याग किए हुए स्थूलशरीर आदि में प्रविष्ट होने के कारण "विश्व" कहा जाता है । इस विश्व की भी उपाधिभूता यह व्यष्टि इसका स्थूल शरीर है अन्न का विकार होने के कारण § और कोश के समान आत्मा का आच्छादक होने के कारण§ ही इसे अन्नमयकोष कहा जाता है[1] ।

पारिजातहरण महाकाव्य में कहा गया है - ये, जड़ अर्थात शास्त्रादि ज्ञान से शून्य होते हुए भी अपने कठिन परिश्रम से ब्रह्म सिद्धि के उपयोगी §पंचकोषात्मक ब्रह्म निरूपण में प्रतिपादित§ अन्नमयकोष को प्रचुर मात्रा में उत्पन्न करते हैं[2] । जिस प्रकार रज्जु का विवर्त § अर्थात रज्जु में भ्रान्ति के कारण प्रतीत होने वाला§ सर्प रज्जुमात्र ही होता है । उसी प्रकार §ब्रह्मरूप§ वस्तु का विवर्त§ अर्थात ब्रह्म रूप वस्तु में अज्ञान के कारण भासित होने वाला§ जो अवस्तुभूत अज्ञानादि प्रपंच है, उसका वस्तु मात्र ही रह जाना अपवाद कहलाता है[3] ।

समस्त कार्यवर्ग की कारणस्वरूप से भिन्न कोई भी सत्ता नहीं है ऐसा निश्चय करना ही अपवाद है[4] ।

---

1 वेदान्तसार - 32

2 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 20

3 वेदान्तसार - 47

4 कार्यस्य कारणमात्रसत्ता विशेषणं,
कारणस्वरूपव्यतिरेकेण कार्यस्यासत्तावधारणमपवादः-विद्वन्मनोरंजनी

"तत्वतोऽन्यथाभावः परिणामः, अतत्वतोऽन्यथा भावो विवर्तः[1]

पूर्वावस्था का परित्याग किए बिना ही दूसरी अवस्था का भासित होना उस वस्तु का विवर्त है, जैसे रज्जु का रज्जु रूप में रहने पर भी सर्परूप से भासित होना[2] ।

वेदान्तियों को माया के कारण जगत् में बाह्यतः भेद दिखाई पड़ता है । जैसे रज्जु में सर्पज्ञान भ्रमात्मक है इसी प्रकार अद्वितीय ब्रह्म में सारा द्वैत प्रपंच भ्रमात्मक है ।

पारिजातहरण महाकाव्य में इन्द्र से नारद जी कहते हैं कि एकाएक ज्ञात हो पड़ी समता के कारण रस्सी में उदित हुई सर्प बुद्धि किसी की भी हो, सबके लिए भ्रान्ति ही है[3] । जो सर्वथा परिपूर्ण आत्मा वाला नहीं है जो सभी विषयों में प्रतिबुद्ध नहीं है अर्थात् जो सर्वज्ञ नहीं है तथ्यज्ञान से गिरे पुरुष की पद-पद पर भ्रान्तियाँ होती है ।

जिस प्रकार मकड़ी अपना जाला बनाने के लिए रुई, लकड़ी और यन्त्र आदि लोक प्रसिद्ध वस्तुओं की अपेक्षा नहीं रखती उसी प्रकार ईश्वर सृष्टि के पूर्व अकेला ही बिना किसी की सहायता की अपेक्षा केवल अपनी माया शक्ति के द्वारा सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि कर देता है । वेदान्त का यह सिद्धान्त मायावाद[4] कहलाता है ।

---

1 ब्रह्म सूत्र 1/2/21 पर वेदान्त कल्पतरूपरिमल

2 अवस्थान्तरभानं तु विवर्तो रज्जुसर्पवत् - पंचदशी 13/8-9

3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 76,77

4 वेदान्त सार पृ0 63

पारिजातहरण महाकाव्य में कृष्ण को मायावी बताया गया है । कृष्ण की माया तो विख्यात ही है जिसके वशीभूत होकर आप भी अज्ञान परम्परा से अपनी चेतना को मलिन कर रहे हैं[1] ।

भगवान् श्रीकृष्ण ही इस सारी सृष्टि के रचयिता हैं ऐसा बताते हुए कवि कहते हैं कि -- दूषित दृष्टि वाले तुम्हारे ﴾इन्द्र के तथा हमारे ﴾नारद के﴿ भी अधिक उपकारार्थ तथा कर्मयोग और ज्ञानयोगात्मक दोनों मार्गों की शिक्षा देने के लिये निजी माया से ही जन्मना मनुष्य बने हुए है, अज्ञान से ही आप ﴾इन्द्र﴿ उस नारायण के ऊपर आक्षेप कर रहे हैं । उनकी निन्दा मूर्खता ही है, जो अभिनय कर अपनी बहुरंगी प्रकृति तथा सारे जगत् को निजी कलाओं से नचाता है[2] ।

जिस प्रकार एक ही महाकाश आम, पलाश आदि के वनों से अविच्छिन्न होने पर विभक्त जैसा प्रतीत होता है अथवा जिस प्रकार एक ही महाकाश अलग-अलग तालाबों में प्रतिबिम्बित होने पर विभक्त हुआ जैसा प्रतीत होता है परन्तु वस्तुतः अलग-अलग वनों से अविच्छिन्न होने के कारण अथवा अलग-अलग तालाबों में प्रतिबिम्बित होने के कारण आकाश में किसी प्रकार का पार्थक्य नहीं होता, उसी प्रकार एक ही चैतन्य कारण सृष्टि की उपाधि से उपहित होने पर ईश्वर और प्राज्ञ, सूक्ष्मसृष्टि की उपाधि से उपहित होने पर हिरण्यगर्भ और तैजस् तथा स्थूल सृष्टि की उपाधि से उपहित होने पर वैश्वानर और विश्व कहलाने के कारण विभक्त हुआ जैसा प्रतीत होता है,

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य एकादश सर्ग - 82

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 85

परन्तु आकाश के समान निर्लेप होने के कारण उपाधि भेद से चैतन्य में किसी प्रकार का भेद या पार्थक्य उत्पन्न नहीं होता । अतः तात्त्विक दृष्टि से ईश्वर हिरण्यगर्भ और वैश्वानर तथा प्राज्ञ तैजस् और विश्व सब एक ही हैं[1] ।

इस महाप्रपंच और उससे उपहित चैतन्य से, तप्त लौहपिण्ड के समान अलग न प्रतीत होता हुआ अनुपहित चैतन्य "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" अर्थात् यह समस्त प्रपंच ब्रह्म ही है[2] ।

यह सम्पूर्ण विश्व इस चैतन्य पुरुष की महिमा अर्थात् विभूति है[3] ।

इस सम्पूर्ण जगत् को मैं एक अंश से व्याप्त करके स्थित हूँ - इस प्रकार कृष्ण ने अर्जुन से ब्रह्म के एक अंश में जगत् की स्थिति बताई है[4] । पारिजातहरण महाकाव्य के द्वादश सर्ग में भगवान् कृष्ण को शुद्ध चैतन्य बताया गया है - प्रकृष्ट ज्ञान (शुद्ध चैतन्य) द्वारा जड़ जगत् को परिमार्जित करता हुआ इस जड़ जगत् को विभिन्न जन्मों में प्रकाशित करते हो (अर्थात विभिन्न जन्म लेकर तुम इस संसार को प्रकाशित करते हो) तुममें प्रणम होने पर वह व्यापक वाङ्मय तुम्हारे गुण, जाति, कर्म की शुद्धता से प्राप्त है[5] । हे अनन्त ! प्रतिदिन नए जगत् का निर्माण करते हो । जैसे सद् और अमूर्त को विस्तृत करते हो वैसे ही इस वाङ्मय जगत् को विस्तृत करते हो[6] ।

---

1 वेदान्तसार - 34
2 छान्दोग्य 3/14/1
3 ऋग्वेदसंहिता 10/90/3
4 पंचदशी 2/56
5 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 45
6 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 46

काव्य में कृष्ण को निर्लेप अद्वैत बताया गया है । ये सारे गुण या दोष बुद्धि में रहने वाले तथा बुद्धिगत विशेषण (भेदक, रज, सत्व आदि) के विशेष को भोगने वाले हैं जिसमें कोई विशेषण भेदक है ही नहीं ऐसे चित्तस्वरूप परमात्मा में तो वास्तविक विशेष विभाग ही नहीं है वह तो निर्लेप अद्वैत है[1] । आकाशादि स्थूलभूत पंचीकृत होते हैं । आकाशादि पाँच सूक्ष्मभूतों में प्रत्येक दो समान भागों में विभक्त करके इस प्रकार प्राप्त होने वाले उन दश भागों में जो प्राथमिक पाँच भाग हैं, उनमें प्रत्येक के चार समान भाग करके, उन चार भागों को अपने-अपने द्वितीय अर्धभाग को छोड़कर अन्य भूतों के द्वितीय अर्धभागों में जोड़ देना ही पंचीकरण है ।

"प्रत्येक भूत को दो भागों में विभक्त करके, फिर प्रथम भाग को चतुर्धा विभक्त करके अपने - अपने से भिन्न चार भूतों के द्वितीय भाग में जोड़ देने से वे आकाशादि पंचीकृत हो जाते हैं[2] ।

पाँच महाभूतों के, समान रूप से पंचात्मक होने पर भी उनमें अपने-अपने भाग का विशेष भाव होने के कारण उस-उस नाम से व्यवहार होता है[3] ।

"त्रिवृत्करण की श्रुति पंचीकरण को भी उपलक्षित करती है[4] ।

"पंचीकरण के पश्चात भौतिक सृष्टि होती है । चार प्रकार के समस्त स्थूल शरीर क्रमशः एकत्व और अनेकत्व की बुद्धि के विषय होने से, वन या जलाशय के समान समष्टि होते हैं तथा वृक्ष या जलविन्दु के समान व्यष्टि भी होते हैं[5] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 87
2 (क) पंचदशी - 1/26
(ख) शंकराचार्य की पंचीकरण प्रक्रिया
3 ब्रह्मसूत्र - 2/4/22
4 छान्दोग्य - 6/3/2
5 वेदान्तसार - (31)

पारिजातहरण महाकाव्य में वेदान्त की इस पंचीकरण प्रक्रिया तथा उसके बाद होने वाली भौतिक सृष्टि का वर्णन किया गया है -

"हे अनधीश [अर्थात् जो स्वयं ईश्वर है जिसका कोई ईश्वर नहीं है] तुम्हारे [भगवान् कृष्ण के] पंचीकरण से आकाशादि पंचक इस प्रपंच से उत्पन्न हुए हैं। अलग-अलग करके अद्भुत जगत् अभिन्न होता हुआ भी देखने वालों में भेद पैदा करता है[1]।

"दूर से गिरी हुई जल की बूँदे मिट्टी में अग्नि में या पृथ्वी में और कहीं लीन हो जाएं किन्तु परमार्थतः वह पृथक नहीं है उसी प्रकार तुम एक ही जगत् के रचयिता हो[2]। कवि ने पारिजातहरण महाकाव्य के षष्ठ सर्ग में सांख्य, वेदान्त तथा न्याय आदि अन्य सभी दर्शनों के सिद्धान्त का वर्णन एक कवि ने पारिजातहरण महाकाव्य के षष्ठ सर्ग में सांख्य, वेदान्त तथा न्याय आदि अन्य सभी दर्शनों के सिद्धान्त का वर्णन एक ही श्लोक में करके अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है।

"मेरे मत से गुण, लिंग आदि उपाधियों से रहित शुद्ध ज्ञान रूप परम ईश्वर स्वरूपिणी तुम्हीं [रूक्मिणी] हो, तुम्हें कोई कोई [सांख्यमत वाले] प्रकृति कहते हैं। वेदान्ती तुम्हें चिद्ब्रह्म बतलाते हो, वही तुम्हें माया कहकर भी प्रपंचित करते है। मीमांसक तुम्हें क्रिया कहते हैं। योग दर्शन वाले तुम्हें सिद्धि मानते हैं और तार्किक तुम्हें बुद्धि इच्छादि ईश्वर के गुणों गिनकर गुणात्मक बुद्धि रूप में देखते हैं। पौराणिक तुम्हें परमेश महिषी पराम्बा कहते हैं[3]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य

2 पारिजातहरण महाकाव्य

3 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 4।

भाव यह है कि विभिन्न मतान्तरों से देखी जाने वाली सर्वशक्तिशालिनी ईश्वरी तुम्ही (रूक्मिणी) हो ।

उपनिषद् ज्ञान

पारिजातहरण महाकाव्य के चतुर्दश सर्ग में योगक्षेम का वर्णन मिलता है, जो कवि-उमापति के उपनिषद् ज्ञान को प्रकट करता है । कठोपनिषद् में कहा गया है श्रेय और प्रेय जब दोनों मनुष्य के पास आते हैं तो विद्वान् उन दोनों की अच्छी तरह परीक्षा करके विवेचन करता है । धीर व्यक्ति प्रेय की अपेक्षा श्रेय का वरण करता है और मूर्ख योगक्षेम के कारण प्रेय का वरण करता है ।

योगक्षेम का तात्पर्य है - लालच और आसक्ति के कारण । "बिना पाई वस्तु का पाना योग है तथा पाई हुई वस्तु की रक्षा करना क्षेम है"[1] ।

योगक्षेम की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है :-

योगेश्च क्षेमश्च तयो समाहारः इति योगक्षेमम्, तस्मात् योग क्षेमात् ।
इसमें "हेतौ" पंचमी है ।

---

1 "अप्राप्तस्य प्राप्ति योगः, प्राप्तस्य रक्षणम् क्षेमः ।
कठोपनिषद् - दूसरी वल्ली - 2

पारिजातहरण महाकाव्य में भगवान् कृष्ण गरूड़ पर बैठकर नन्दन वन जाते हैं । मार्ग में उन्हें यम की नगरी भी मिलती है, उसी नगरी का वर्णन करते हुए कवि कहता है - स्वधा का आचरण करते हुए अर्थात्स्वधा से तृप्त करते हुएवही यह यम की नगरी है जहाँ देव लोग पिता लोगों का भरण करते हैं । कर्म के द्वारा प्राप्त उन-उन विशेष जनों के योग्य ‡जैसे-जैसे कर्म के लिए‡ योगक्षेम से ‡असाक्ति के कारण‡ उन-उन पितरों की प्रतिभावना करते हैं[1] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्दश सर्ग - 20
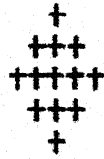
पंचम अध्याय

"पारिजातहरण महाकाव्य में काव्यात्मक सौन्दर्य"

वस्तु वर्णन तथा प्रकृति चित्रण :

प्रकृति मानव की सहचरी है । जब से मानव ने आँखे खोली है, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, वृक्ष, पक्षी आदि विभिन्न रूपों में प्रकृति सदैव उनके साथ रही है । जीवन पर्यन्त प्रकृति रहने के कारण मनुष्य का प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है । संस्कृत काव्यों में प्रकृति उभय रूपेण चित्रित की गई है - आम्बन रूप से तथा उद्दीपन रूप से आलम्बन रूप वाले वर्णनों में प्रकृति स्वयं वर्ण्य विषय रहती है । तथा उद्दीपन रूप में उसका मानव प्रकृति के ऊपर उत्पन्न प्रभाव ही वर्ण्य विषय रहता है । काव्य के जीवित तत्त्व रस के उपनिबन्धन में तत्पर कवि को अपने काव्य में उद्दीपन-विभाग के रूप में प्राकृतिक दृश्यों का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है ।

कवि अपनी सहृदयता तथा वर्णन कौशल के द्वारा काव्य में आए हुए इतिवृत्तात्मक अंशों को भी सरस बना देता है । संस्कृति कवियों की यह विशेषता रही है कि वे अपने काव्य में एक अत्यन्त नगण्य वस्तु को भी अपनी सूक्ष्मदर्शिता के आधार पर श्रोता के सम्मुख एक अत्यन्त आकर्षक चित्र उपस्थित कर देते हैं । काव्य में आलम्बन ही मुख्य होता है । कवि अपने काव्य में जिन वस्तुओं का वर्णन करता है, वे किसी न किसी रूप में आलम्बन ही मानी जाएगी । काव्य में वर्णित प्रत्येक वस्तु किसी न किसी पात्र के किसी भाव की आलम्बन होती है जो किसी पात्र के किसी भाव की आलम्बन नहीं होती वह कवि या पाठक के भाव की आलम्बन होती है ।

कवि अपनी सहृदयता से उस वस्तु का किसी भाव के साथ ग्रहण करता है और उसी रूप में पाठक के सम्मुख रखने का प्रयास करता है जिससे पाठक को भी उस वस्तु का उसी रूप में ग्रहण हो । यदि कवि ने अपने शब्द-चित्र द्वारा उस वस्तु का वह अभिप्रेत रूप उपस्थिति कर दिया जो पाठक के भी उसी भाव को उद्बुद्ध कर दे तो मानों उसे अपने काव्य में बड़ी सफलता मिल गई । उसे उस वस्तु में स्वयं रमना पड़ता है तथा साथ ही पाठक को रमाना पड़ता है । वन, पर्वत, नदी, ऋतुओं पुरी विवाह, यात्रा प्रभा, सन्ध्या, रजनी, चन्द्र, रूप-सौन्दर्य आदि वस्तुए ऐसी है जिसमें मनुष्य की रागात्मक वृत्ति रमती है । ये उसमें रागात्मक भावों के आलम्बन है अतः उन वस्तुओं का वर्णन भी रसात्मक ही माना जाएगा ।

प्रकृति के नाना रूप जैसे वन, उपवन, नदी, शैल, सूर्योदय, चन्द्रोदय, वसन्त, कोकिलस्वर एवं मेघमाला, आदि मनुष्य के विविध भावों को उद्दीप्त करने वाले होते हैं । संस्कृत महाकवियों द्वारा चित्रित प्राकृतिक दृश्यों में प्रकृति के मंजूल तथा भयावह रोमांचकारी स्वरूप का दर्शन होता है । प्रकृति के मंजुल रूप से आशय उसके सुकुमार रूप जैसे - उपवन, बसन्त, चन्द्रोदय एवं तपोवन आदि से है तथा भयावह रूप से आशय उसके भीम रूप जैसे अटवी, गीष्म आदि से है । इस प्रकार वर्ण्य विषय के आधार पर प्रकृति के दो रूप होते हैं - §1§ सुकुमार रूप एवं §2§ भीमरूप । कवियों ने सौन्दर्य का मूल अधिष्ठान प्रकृति को स्वीकार किया है और प्रकृति का रूपात्मक एवं आलंकारिक चित्रण किया है । प्रकृति के पदार्थों का चेतनीकरण और प्रतीकात्मक पद्धति पर स्वतन्त्र चित्रण इन कवियों की विशेषता रही है । कवियों ने प्रकृति और प्राकृतिक वातावरण को चेतन स्वरूप में स्वीकार किया है जिस पर मानवीय - भावनाओं विचारों और क्रियाओं का स्थायी प्रभाव पड़ता है ।

सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानव हृदय प्रकृति-सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होता है । वृक्ष, पर्वत, नद, नदी, सर, वादी, पुष्प, तुहिन, तुषार पशु, पक्षी, जीव, जन्तु, आकाश, चन्द्र, चाँदनी, उषा, प्रभात, प्रदोष, सन्ध्या, निशीथ, तारे, सभी में उसके सौन्दर्य के दर्शन किए है । पहले आश्चर्य मिश्रित आह्लाद से और फिर परिचय जन्य प्रीति एवं अनुराग से प्रभावित हो मानव मन उनकी ओर बार-बार झुका है और जब भी जगत के संघर्षमय कोलाहल से श्रान्त हो उसकी आत्मा बेचैन हो उठी है तब-तब उसने प्रकृति की मनोरम रंगस्थली में दो चार क्षण बैठकर विश्रान्ति लाभ किया है । वेदों के हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे" में जो आनन्दोल्लास मिश्रित श्रद्धा का स्वर है वह {पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति" जैसे ऋचाओं में और स्पष्ट हो गया है । और यह देव का काव्य क्या है । समस्त निसर्ग । इसलिये वेदों में ब्रह्म को कवि कहा है । फिर भला लोक में उस दायित्व का उत्तराधिकारी कवि प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर क्यों न आकृष्ट होता । हमारा सम्पूर्ण काव्य ऐसे रमणीय वर्णनां से भरा पड़ा है । कवि उमापति द्विवेदी ने अपने पारिजातहरण महाकाव्य में प्रकृति के आलम्बन तथा उद्दीपन दोनों रूपों को अपनाया है । कवि ने अपने रूपकों में द्वारिकावर्णन, प्रभात वर्णन, शरद्-वर्णन, प्रयाग गंगा वर्णन, वसन्तवर्णन, नन्दनवन वर्णन आदि प्रसंगों में प्रकृति के सुकुमार रूपों का चित्रण किया है । सन्ध्या वर्णन, समुद्र वर्णन तथा युद्ध-वर्णन आदि प्रसंगों में प्रकृति के भीम रूपों को प्रदर्शित किया है । कुछ स्थलों पर प्रकृति चित्रण बड़ा भव्य है । कहीं-कहीं प्रकृति का ऐसा वर्णन किया है मानों हृदय के सामने सम्पूर्ण दृश्य अंकित हो गया हो । पारिजातहरण महाकाव्य में कई प्रकार से प्रकृति का वर्णन किया गया है । आलंकारिक रूप में उनका प्रकृति का चित्रण तो बहुत ही मनोहर है । विभिन्न अलंकारों के माध्यम से

कवि ने प्रकृति का वर्णन किया है जिसमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार मुख्य हैं । चित्रात्मक रूप के प्रकृति चित्रण में उन्होंने प्रकृति का चित्र सा उपस्थित कर दिया है । मानवीकरण के रूप में प्रकृति मानव का रूप ग्रहण कर लेती है । विभिन्न दर्शनों के माध्यम से भी कवि ने प्रकृति का वर्णन किया है ।

कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाव्य के रूपकों में चित्रित प्रकृति के नाना उपादानों की झाँकी विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है ।

द्वारिकापुरी वर्णन :-

कवि ने अपने पारिजातहरण महाकाव्य में द्वारिकापुरी का वर्णन विभिन्न रूपों में किया है । इनके द्वारिकापुरी के वर्णन में विभिन्न अलंकारों की छटा दिखाई पड़ती है । विभिन्न अलंकारों के माध्यम से उन्होंने इस पुरी का वर्णन किया है । रूपक अलंकार के माध्यम से द्वारिका का वर्णन प्रस्तुत है - वे भगवान् श्रीकृष्ण समुद्ररूपी अपने वस्त्रों को संवारती एवं दैदीप्यमान भूषण रूप रत्नों को धारण कर, मेघों को अपना केशपाश बनाए, एक असाधारण नायिका के वेश को धारण करती हुई उस द्वारिकापुरी का शासन करते थे।[1] उपमा तथा रूपक के माध्यम से द्वारिका का बहुत ही मनोरम चित्रण काव्य में किया गया है । द्वारिकापुरी की बावड़ियों की तुलना नायिकाओं से

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 2

की गई है - फुदकते हुए मीनरूपी मनोहर एवं चंचल नेत्रों वाली क्षण-क्षण में खिसकते हुए वस्त्र रूप शैवाल से सुशोभित होने वाली तथा चिरकाल तक ऊंची जलराशि को उन्नत उरोजों के रूप में धारण करने वाली बावडियां नायिकाओं की भांति किसके मन का नहीं हर लेती[1]। यह पुरी कहीं पथिकों के गमनागमन से उठी हुई धूलियों से किंचिन्मात्र भी मलिन हो उसके लिए समय-समय पर चन्द्रकान्त मणि के द्रव से निकलते हुए जल के व्याज से चन्द्रमा ही मानो सुधाकर होने के नाते सुधा (चूने) के माध्यम से यहां से लीप जाया करता है[2]। उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से यहां द्वारिका का बड़ा ही मनोरम चित्र उपस्थित किया गया है।

शब्दालंकारों के माध्यम से श्री द्वारिकापुरी का वर्णन इस काव्य में किया गया है। अनुप्रास का उदाहरण प्रस्तुत है -

"पदे पदेऽस्यास्तु मिथो मनोहरौ सदारमेते सरसी सरोवरौ[3]।

द्वारिकापुरी के वर्णन में प्रकृति का उद्दीपन रूप भी मिलता है। कवि के इस द्वारिका वर्णन में श्रृंगारिक भावनाओं का समावेश पाया जाता है। द्वारिकापुरी में स्थित मनोहर बावड़ी और सरोवर नायक नायिका के भाव को उद्दीप्त करने वाले है। जलाशयों में जो जल की तरंगे उठती है वह मानों नायक नायिकाओं के बढ़े हुए काम विकार है[4]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 20
2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 11
3 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 19
4 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 18, 19

मानवीकरण के रूप में भी द्वारिका का वर्णन किया गया है । वह द्वारिका पुरी समुद्र रूपी अपने वस्त्रों का संवारती एवं दैदीप्यमान भूषण रूप रत्नों को धारण करती है तथा मेघों को अपना केशपाश बनाती है[1] । इसकी मनोहर बावड़ी को नायिका तथा सरोवर को नायक की उपमा दी गई है । इसके जलाशय की जल की तरंगों को नायक नायिका के बढ़े हुए काम विकार से तथा सारस पक्षी के कलरव को रसमग्न प्रेमी के वार्तालाप से उपमा दी गई जिस प्रकार मनोहर एवं चंचल नेत्रों वाली खिसकते हुए वस्त्र से सुशोभित होने वाली तथा उन्नत उरोजों को धारण करने वाली नायिकाएं सबका मन हर लेती है उसी प्रकार द्वारिकापुरी की बावडिया सबका मन हर लेती है जिसमें फुदकती हुई मीन है, जो शैवाल से सुशोभित है तथा जिसमें ऊँची ऊँची जलराशि है[2] । इस प्रकार बावड़ियों का मानवीकरण नायिकाओं के रूप में किया गया है ।

चित्र रूप में तो द्वारिकापुरी का सजीवचित्र ही कवि ने अपने काव्य में अंकित कर दिया है :-

इस पुरी में शुभ्र एवं दैदीप्यमान गगन चुम्बिनी अट्टालिकाएं हैं[3] । इस पुरी में जहां मरकतमणि विभूषित महल है वहां वर्षाकाल का आनन्द है जो सूर्यकान्तमणि जटित है वहां दिन के समान प्रकाश है नीलम जटित महलों पर अमारात्रि की शोभा है तथा चन्द्रकान्तमणि जटित भवनों पर पूर्ण ज्योत्सना बिहार कर रही है । ऐसे विविध रत्नों की विचित्र प्रभा से द्वारिकापुरी की अपूर्व छटा दिखा रही है[4] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 2

2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 20

3 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 3

4 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 6

चित्ररूप में तीनों लोकों की आकृति लिए समुद्र से घिरी यह पुरी सर्वजगदाश्रय भूत नारायण के शरीर को भी धारण करती हुई उनके श्री अंग से अपने आपको बढ़कर सिद्ध कर रही है[1] इस पुरी की दीवारें बहुत ही प्रकाशमान है जिससे यह भ्रम हो जाता है कौन प्रतिबिम्ब है तथा कौन प्रतिबिम्बी ?

इसके चरणप्रान्त में सदा सरिताओं का स्वामी समुद्र लहराता रहता है तथा अट्टालिकाओं के शिखर पर जटित चन्द्रकान्त मणि प्रत्येक चन्द्रोदय के समय पिघलती रहती है[2]।

यह पुरी सदैव बिजली के पंखों से वीजित होती हुई अपने लिए वायु की भी अपेक्षा नहीं करती फिर भी इसके आदर से प्रसन्न चित्त हो वायुदेव शीतल मन्द सुगन्ध आदि गुणों से इसकी सेवा में लगे रहते है इस पुरी की भित्तियों पर जड़े हुये सूर्यकान्तमणियों को अधिक से अधिक अपनी किरणों द्वारा चमकाने के लिए सूर्य ही इसका आश्रय लेते हैं[3]। दैदीप्यमान सुवर्णमय गवाक्षों की माला से सुशोभित, सुन्दर सोने के बने कलश-कंगूरों से अलंकृत तथा उचित विभाग पूर्वक बनाए गए राजमार्ग, विश्रामस्थल एवं चौराहों से युक्त अथवा राजाओं के यज्ञ स्थल एवं प्रांगण से सम्पन्न यह पुरी ऐसी जान पड़ती है मानों इस पृथ्वी की मूर्तिमती चिरंतन प्रतिष्ठा हो। इसके जलयन्त्रागार में चक्कार नाचते हुए फव्वारों पर तनी हुई जल चाँदररूप,

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 7, 8

2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 10

3 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 12, 13

शरत्कालीन बादलों के भीतर से टपकते हुए मोती के आकार के बिन्दुओं पर लुभाये हुए मयूर, चातक आदि पक्षीगण बराबर इसे घेरे रहते हैं । इस पुरी का वारियन्त्र निरन्तर नाचता रहता है[1] ।

इस पुरी में कहीं क्रीड़ापर्वत सुशोभित हो रहा है,जो अपनी ऊँचाई के कारण आकाश को लाँघता सा जान पड़ता है । वह ऊँचे तक फैले हुए प्रकाश से दीप्तिमान् है, विविध प्रकार के फूले हुए वृक्षों और लताओं से उल्लसित है तथा विलासिनी ललनाओं के धारण किए हुए सुरतकालीन मनोहर सुगन्धयुक्त अंगराग आदि के द्वारा अत्यन्त सौरभ का भार सा ढो रहा है[2] ।

द्वारिकापुरी पाषाणनिर्मित घनी ग्रहणक्तियों से मेघों की घटा सी प्रतीत होती है । योद्धाओं के चमचमाते हुए आयुध ही वहाँ बिजली सी चमका रहे हैं । उच्चस्वर से बजने वाली मंगलसूचक दुन्दिभियों की ध्वनि ही उन मेघों की गर्जना सी जान पड़ती है और[3] रंग बिरंगे छज्जों के रूप में मानों इस परी ने इन्द्र धनुष धारण कर रखा है ।

यहाँ के घरों में फहराती हुई ध्वजाएँ मानों, हाथ हिलाकर काल को मनमानी करने से रोकती और अपने को स्वाधीनता की स्थापना का संकेत करती हुई आकाश को भी ऊपर उठाए हुए है[4] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 15,16

2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 21

3 पारिजातहरण महाकाव्य प्रथम सर्ग - 23

4 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 28

यहाँ की विशाल सड़कों पर नाना प्रकार के रथ निरन्तर इधर से उधर दौड़ते हैं, जिनकी घरघराहट मेघ गर्जना को मात करती तथा मनस्वी कुशल सारथियों का हाँकना और सुशिक्षित घोड़ों की लीला ललित गति देखते ही बनती है[1]।

इस पुरी के स्थान-स्थान पर टिकाई गई यादवों की सेनाएं, चमकते चोखे अस्त्र-शस्त्र रूप मीन, मकर आदि जल जन्तुओं से भरी, निजी पराक्रम से सारे जगत् को भी बहा देने में समर्थ, पारस्परिक साहंकार कोलाहल करती दूसरे महासमुद्र, सी दिखाई देती है[2]।

कुलक रीति से द्वारिका पुरी के राजमहल का वर्णन किया गया है । राजमहल के वर्णन में कवि ने चित्रात्मक शैली को अपनाया है तथा राजमहल का चित्र पाठकों के सामने उपस्थित कर दिया है । इसी द्वारिका पुरी में विशाल परिधि से युक्त खूब चमकते हुए मणिगण से जटित, एवं प्रभा से प्रज्जवलित विशेष शालाओं से जो सुशोभित है । शास्त्रास्त्रों से सज्जित प्रहरीगण स्थान-स्थान पर जिसकी रक्षा के लिए खड़े है[3]।

जिस राजमहल में कहीं तो युवक वृन्द का क्रीड़ा कौशलादि पूर्ण आनन्दमय व्यवहार चल रहा है, कहीं प्रत्येक दिशाओं की अप्सराएं नाच रही हैं, कहीं परम निपुण यादवों की कौंसिल सजकर बैठी हुई है । कहीं यज्ञ हो रहे हैं, कहीं प्रजाओं के व्यवहार निर्णय के लिए विशेषाधिकारियों की दरबार लगा हुआ है[4]। कहीं आनन्दमग्नमयूर नृत्य कर रहे हैं, कहीं कलाबाज कबूतरों

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 32

2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 35

3 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 44

4 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 45, 46

की कलाबाजी करा कराकर नवयुवतियां उल्लसित हो रही हैं । ऊँची अट्टालिकाओं पर लीला-विलास में लगी ललनाओं के द्वारा हजारों चन्द्रमा की जैसी कान्तियों से जो राजमहल प्रकाशमान है । जो बहुत ऊँचा है तथा स्वच्छ शीशों से जड़ा है एवं देवताओं से सेवित है, जिसमें व्यवहार की रीति संशय रहित है । कार्य के सम्पादन में लगी लोगों की भीड़ जिसके मार्ग तथा द्वार पर लगी है तथा अनेक सामन्तों की मोटर आदि विभिन्न सवारियों से जिसका प्रांगण भरा हुआ है[1] ।

स्वर्ग-वर्णन :-
=======

पारिजातहरण महाकाव्य के एकादश सर्ग में स्वर्ग सौन्दर्य के वर्णन में कवि ने अपनी अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया है । कवि ने इस वर्णन में स्वर्ग का चित्र सा अंकित कर दिया है । कवि ने स्वर्ग के मणिमय और सुवर्ण होने की चर्चा बार-बार की है । सम्भवतः यह कवि परम्परावश ही किया गया है । दिव्य रत्नों से जटिल होने के कारण बढ़ी शोभा से भासित दोनों तटवाली स्वर्गपुरी की परिखा के समान देव नदी को पार कर एक कनक पर्वत (सुमेरू) के शिखर के बीच इन्द्र नील मणि के बने प्राकार के भीतर विशाल प्रांगण वाले जिसमें सभी दिग्पाल घूम रहते थे, ऐसे इन्द्र के भवन में प्रवेश किया । इस इन्द्र के भवन के बीच मणिमय भित्ति पर रत्नों की पंच्चीकारी द्वारा कढ़ी, लता पुष्पादि से अंकित नाना प्रकार के प्रतिबिम्बमय सुन्दर चित्रकारी को चित्रित कल्पनातीत सजावटों से सजी सुधर्मा सभा को देखा[2] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 49,53

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 2-4

कवि ने चित्रात्मक शैली से सुधर्मा सभा का चित्र सा उपस्थित कर दिया है। जिसके चारों ओर से सुन्दर फाटक लगे हैं। भिन्न-भिन्न कक्षाओं से जो शोभित है जिसमें रत्नों से जड़े खम्भे हैं। बीच में बने मणिमय बेदिकापर देवराज का सिंहासन जिसमें सजा हुआ है[1]। चित्र में कढ़े भी सत्य की समान अथवा आश्चर्यमय अनेक रंगों वाले सत्यरूप के पालतू विहंगमों से जो शोभमान थी[2]। नानावर्ण के सूर्यचन्द्र के किरण जालों से जो चारों ओर से चमक रही थी कहीं जिसमें घन घटा सी घिरी, हुई थी कहीं चन्द्रकान्त मणियों के पिघले जलों से शीतल सार वाली थी। जिसके भीतर ही कल्प लता के कुंजों से शोभित तट वाली पीयूष पुष्कारिणी बनी शोभित हो रही है, कहीं कीड़ा शैल के शिखर पर बने महलों की चोटियों से झरने गिर कर बह रहे थे[3]।

सुधर्मा सभा के सामने रमणभूमि {रमना} थी, उसका भी कई श्लोकों में वर्णन किया गया है। मनोहर मरकत मणियों की चित्रित सब्जभूमि में जो सजी है तथा स्वस्तिक, अर्द्धचन्द्र कमलवृत्त आदि विभिन्न आकार में बने छोटे-छोटे जलाशय तथा चबूतरों से विशेष रूप से शोभमान है[4]। कतारों में कल्पित रंग-बिरंगे रत्नों से रचित क्यारियों से सुरक्षित पुष्पों, लता, पादपों से जो भरी है, जिसमें कही केलि पर्वत बने हैं, कहीं चन्द्रशालाएं शोभित हो रही है, कहीं सजे

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 5, 6

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादशसर्ग - 8

3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 9, 10

4 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 12

लता मण्डलों में झूले लगे हुए है । जिसमें चारों ओर अत्यधिक प्रकाशमान रत्नों की कल्पित चित्रों से सजी दीवारें हैं एवं मनोहर अंकुर कलशी आदि बनी हुई है । चिकने, समतल तथा चमकदार चित्रों से चित्रित चौराहे चौक चबूतरों से जो विकसित है । मोतियों की झालरों वाली जवनिकाओं से जिसका मध्य भाग ढका हुआ है[1] । कहीं जिसमें सुन्दर फर्श है, कहीं गेंद आदि खेलने का सजा मैदान है तो कहीं भीतर ही शिकार के उपयोगी वन बना हुआ है । कहीं पर उपासना के उपर्युक्त मन्दिरों जैसे उपनिवेश है, कहीं खिले फूलों में या प्रगठ कामदेव के द्वारा जो हँस सी रही है[2] ।

पुष्पों के समूह से भरी सजी घनी शोभा से युक्त सुन्दर मनोभाव से भरी भली जघन की शोभावाली अच्छे पक्षियों की गुंजना से युक्त पुष्प गुच्छकों से शोभित या नई अवस्था तथा स्तन रूप गुच्छक से ललित चित्रों से सजी स्वर्गीय श्रेष्ठ भूमि को अलंकृत करती, रंग बिरंगी, साड़ी गहनों से शोभित रक्षा योग्य रमणी के समान जो रमणीय है ।सोने की लरों के रचना विशेष से जो शोभित है तथा देव ललनायें जिसके प्रत्येक सुन्दर स्थानों में विहर रही हैं । जिसके शिखर पर दिव्यगज {ऐरावत} के चिह्न से चिह्नत महाध्वज फहरा रही है, ऐसी सभा के फाटक पर पहुँचे[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 14, 16

2 पारिजातह महाकाव्य - एकादश सर्ग - 17

3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 19, 21

यात्रा का वर्णन

तीसरे सर्ग में द्वारिका से रैवतक-पर्वत की यात्रा का वर्णन किया गया है यद्यपि यह कोई विशेष यात्रा न थी किन्तु यह रीतिथी कि महाराजाओं की सपरिवार यात्रा ससैन्य ही होती रही । अतः कवि ने पारिजातहरण महाकाव्य में भगवान् कृष्ण की यात्रा का सांगोपांग वर्णन किया है ।

कवि ने क गजों की उपमा घनघटा से दी है । सोने की अमारी एवं जड़ाऊ रंग विरंगे झूलों में पड़े मणिगणों की प्रभा ही जहां विद्युत और इन्द्र धनुष की छटा दिखा रही है । मद की वर्षा करती हुई घटा के समान, जो शत्रुओं की घटना को विघटित करने वाली है ऐसी गजों की घटा चल पड़ी[1] ।

रथ के घोड़े ऐसे चलते थे मानों पृथ्वी पर पांव ही नहीं पड़ते ऊपर ही ऊपर उड़े चले जा रहे हो इसे उत्प्रेक्षित करते हुए कह रहा है । मेरी वेग शालिनी गति में यह भी कुछ प्रतिबन्धक न हो जाए मानों, यही सोचकर पृथ्वी पर पैर न जमाते हुए घोड़े हिलती गर्दन के जड़ाऊ वालों से छिटकती प्रभा को फैलाते हुए रथ को खींच रहे थे[2] ।

श्लेष के द्वारा कवि भगवान के रथ का तथा भगवान के कारण शरीर के सभी विशेषणों का वर्णन कर रहे हैं :-

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 10
2 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 13

दृढ़ धुरी को धारण करने वाला शोभा भार से उल्लसित होता हुआ चक्के, युग (जुये) एवं ऊपर की बैठकों से शोभित वह जगत के प्रभु का पुष्य नामक रथ, उनके कारण शरीर का अनुकरण कर रहा था । श्लेष के द्वारा भगवान के कारण शरीर का अनुकरण कर रहा था । श्लेष के द्वारा भगवान के कारण शरीर में भी सभी विशेषण संघटित होते है जैसे - भगवान सहन शीलों में धुरन्धर अर्थात अग्रगामी हैं तथा श्री नामक लक्ष्मी से उल्लसित एवं चक्र धारण करने वाले सत्ययुग आदि सभी युगों के उत्तरकाल तक रहने वाले नित्य है[1] । इस विशेष यात्रा का वर्णन करते समय कवि यात्रा में उपलब्ध सभी वस्तुओं का चित्र सा उपस्थित कर देते हैं - यात्रा काल की विशेष मांगलिक सामग्रिओं को सम्मुखकर जगत् के कारण भगवान कृष्ण क्रम से दलबन्दी के साथ सजे सैनिकों से युक्त सारथी के साथ चल पड़े । नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों को फेरते फरकाते वीर सैनिकों का दल चल पड़ा । भगवान् रथ युद्धों की सरसराहट में पटह, भेरी, मृदंग आदि बाजों की ध्वनि खण्डित करते से चले । सैनिक गति से चलने वाले, पैदल, घोड़े, रथ, हाथियों से युक्त सेना के साथ भगवान चल पड़ें । काम के पिता भगवान् कृष्ण का यह यात्रोत्सव अत्यन्त तीव्र गतिशाली वायु के समान वेग वाले, मुख में पड़ी वल्गा से सज, असंख्य काबुली घोड़ों से अत्यधिक शोभित हो रहा था । अपनी भीमकाय से पर्वतों को भी जो जीते हुऐ हैं, ऐसे पहाड़ी श्रेष्ठ हाथियों से भगवान की वह दल वद्ध सेना, अधिक उल्लसित हो रही थी[2] । जिसके आस पास चंवर झल रहे हैं । ऊपर से देव मण्डल फूलों की वर्षा कर रहा है, सारे जगत् का अभिनन्दन प्राप्त करता हुआ पुष्य नामक रथ, भगवान यदुनन्दन श्रीकृष्ण

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 14

2 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 9

को ले चल पड़ा[1] इस प्रकार सजे हुए रथ पर भगवान ऐसे बैठे हुए थे जैसे पर्वत पर सिंह बैठा हो । पर्वत पर जल्दी पहुँचने की इच्छा से भगवान् कृष्ण सारथी को रथ के घोड़ों को तेज हांकने की आज्ञा देते हैं इसी का वर्णन कवि यहां पर कर रहे हैं --

बाग ढीली कर देने पर, वेग से पथरीले मार्ग को भी अपने खुरों से खोदते हुए सूर्य के रथ की खींचने वाले दिव्य घोड़ों का अभिमान चूर करते हुए से मानों सारी पृथ्वी को एक बार में ही लांघने की इच्छा रखने वाले वे घोड़े बढ़े[3] । जैसे आगे के मार्ग को निकलता और पीछे को उगलता जा रहा हो इस प्रकार वह रथ जो खड़खड़ाता एवं उचकता नहीं उस अगाध गुणों से शोभित भगवान को बिना रोक टोक दुर्गम पर्वत पर शीघ्र पहुँचा दिया[4]

रूपमहिमा का वर्णन --

पारिजातहरण महाकाव्य में कवि ने भगवान् कृष्ण की रूप महिमा का बहुत मनोहारी चित्रण किया है । इस वर्णन में भगवान के एक-एक उपकरणों का पृथक-पृथक वर्णन कवि ने किया है । भगवान् के स्वभावतः श्याम विशाल वक्षस्थल में श्वेत-वर्ण कौस्तुभ मार्ग की छवि, श्यामरंग के नभस्थल में अत्यधिक प्रकाशमान भगवान भास्कर के प्रभा मण्डल का अनुकरण कर रही थी । गले से लटकती वनमाला से, अतुलनीय शोभायुक्त शरीर वाले भगवान् कृष्ण ऐसे जान

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 12
2 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 15
3 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 32
4 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 34

पड़ते थे, जैसे - सर्वोत्कृष्ट शोभा रूप रमादेवी अपनी दोनों बाहुलताओं को गले में डाल बाँध रखी हो । संसार के रोगों को समन करने वाली कौमोदकी नामक गदा रथासीन भगवान् की शोभा को अत्यधिक बढ़ा रही थी[1] ।

विभिन्न अलंकारों के माध्यम से भी कवि ने भगवान् के उपकरणों का वर्णन किया है ।

भगवान् के चक्र की तुलना कवि उपमा के माध्यम से सूर्य से कर रहे हैं --

घने अन्धकार का भेदन कर उदयाचल के शिखर पर आसीन सूर्य की भाँति, भगवान् के कर कमल को शोभित करने वाला वह चक्र सारे शत्रुओं को कँपाता हुआ भगवान् की सौगुनी शोभा बढ़ा रहा था[2] ।

भगवान् के कर कमल में शोभमान शंख की तुलना कवि ने रक्त कमल पर बैठे हुए हंस से की है । भगवान कृष्ण के कर कमल में शोभमान शंख, कान्तिहीनों को अपूर्व कान्ति शील बना रहा था । भगवान के कर कमल पर शोभमान कमल को देखकर किसका हृदय अधिकाधिक मोद से नहीं भर आता भगवान के हाथ पर स्थित वह कमल लक्ष्मी के आवास स्थान होने के कारण हस्तगत किया गया योगियों के हृत् कमल के समान प्रतीत हो रहा था[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग 17, 19

2 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 20

3 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 21, 22

भगवान की ललाट पर स्थित मुकुट की शोभा को उत्प्रेक्षा करता हुआ कवि कह रहा है। पापियों के दल को कंपाने वाला, ललाट पर स्फुरित होते हुए केशों के ऊपर मुकुट ऐसा शोभित होता था मानों अपनी पुत्री यमुना को साथ लिए सूर्य ही भगवान के मुख कमल पर बैठे है ﴾कमल सूर्य का प्रिय है।﴿[1] यहां पर उपमेय ﴾मुकुट﴿ का उपमान ﴾सूर्य﴿ के साथ तादात्म्य स्थापित हो रहा है अतः यहां उत्प्रेक्षालंकार है।

दैदीप्यमान रत्नजाल से जड़ा हुआ कवच को धारण करने वाले भगवान के श्यामल शरीर को नाना प्रकार के फूलों से लदे लताओं के जाल से आच्छादित तमाल तरूवर से कवि ने उत्प्रेक्षित किया है[2]। तथा उत्प्रेक्षा के माध्यम से कवि ने भगवान के कानों में हिलते मकर के आकार के कुण्डल की तुलना काम का वाहन मकर ध्वज से की है[3]।

और भी उत्प्रेक्षालंकार के माध्यम से भगवान की रूप महिमा का वर्णन देखिए। प्रभाशाली रथ पर आरूढ़ दोनों ओर चलते अमल चामरों के बीच वह श्याम सुन्दर, ऐसी शोभित हो रहे थे जैसे सर्पों की फूत्कार से फरकती दो जटाफलकों के बीच व्योमकेश भगवान के भालचन्द्र का श्याम अंक हो[3]।

और भी भगवान सोने की कड़ियों पर चढ़ा नाना प्रकार के रंग विरंगे मणियों से जड़ा भगवान का मेघडम्बर छत्र सर्वथा अतुलनीय है। अत्यन्त विमल

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 23

2 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 25

3 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 26

तथा बहुमूल्य पीताम्बर से ढकी भगवान की तेजस्विनी तथा सर्वहित श्याम शरीर, स्थिर हो उगी बिजलियों से युक्त मेघों से ढके आकाश को शोभा पा रही थी[1]।

इस काव्य में भगवान कृष्ण को अद्वितीय चन्द्र कहा गया है। भगवान कृष्ण अपनी शरीर की प्रभा से परम शान्ति प्रदान करने वाली अमृतमयी कान्ति सबकी आँखों में बरसा रहे थे[2]।

रैवतक पर्वत का वर्णन :-
================

संस्कृत के रीत-ग्रन्थों में ऋतु, वन, सरिता और पर्वत के वर्णन महाकाव्य के अनिवार्य अंग माने गये हैं। प्रकृति वर्णन को महाकाव्य में आवश्यक मानने के कारण संस्कृत साहित्य में इनका प्राचुर्य होना स्वाभाविक है। यह सत्य है कि सौन्दर्य दृष्टि जन्मजात होती है फिर भी "काव्यज्ञशिक्षाया भ्यास" के अनुसार यह विकसित की जा सकती है और कभी-कभी तो यह विकास प्रथम श्रेणी की प्रतिज्ञा का छोर छू लेता है।

पारिजातहरण महाकाव्य के रचयिता कवि उमापति द्विवेदी ने तृतीय सर्ग में रैवतक के सौन्दर्य के वर्णन में अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया है।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 27, 28

2 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 29

अपने शीतल, भिन्न-भिन्न गन्धवाली मनोहर वायु से हमारे श्रम को दूर कर उस पर्वत ने भगवान-कृष्ण के हृदय को आकर्षित कर लिया[1]। नाना प्रकार की आकृति वाली शिलाओं के संघात से सजा, गेरू आदि विविध धातुओं से रंजित वह शैलराज इस समय के पके भिन्न-भिन्न पहाड़ी फलों को भगवान् के उपहार स्वरूप उपस्थित करके उनके चित्र को हर लिया अर्थात उसकी शोभा पर भगवान मुग्ध हो गए। भगवान् के आने पर जन कोलाहल से जगे, उस पर्वत की ऊपरी गुफाओं में निर्भय सोए सिंह की गर्जना के बहाने तेजशाली रूप राशि भगवान के हृदय को हर्षाने वाली अपनी हर्षध्वनि की हुँकार कर उठा[2]।

कवि उमापति ने अपने काव्य में रैवतक पर्वत का चित्र सा अंकित कर दिया है। कहीं स्थान-स्थान पर छल-छल करते झरते बह रहे है तो, कहीं स्वच्छन्द मदमाती विहंग मण्डली चहचहा रही है, कहीं भाँति-भाँति के वृक्षों की श्रेणियाँ हैं। इस प्रकार विभिन्न प्राकृतिक उपकरणों से सजा वह पर्वत माधव को अत्यन्त सुखद प्रतीत हुआ[3]।

जिसकी उपत्यका समुद्र की ऊँची उछलती तरंगों से टक्कर लेती झलक रही है तथा अधित्यका से झर-झर झरने झर रहे हैं। ऐसा अत्यन्त दर्शनीय वह पर्वत देखते ही बनता था। अपनी उत्साह भरी उभरी गति से सैन्य की निपुर्णता को बढ़ाने वाले पर्वतारोहण गति से चतुर शिक्षित घोड़ों के सहारे दोनों ओर सुन्दर फूले लता वृक्षों से सुसज्जित चारों ओर से आती सुगन्ध से भरी पर्वत की चक्करदार कटी उस सड़क पर भगवान् कृष्ण चढ़ चले। पर्वत की गुफाओं में सानन्द गाते

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 40

2 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 42, 43

3 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 44

हुए किन्नर गण के आनन्ददायी गानों के सुनने की इच्छा से भगवान का रथ रोक-रोक कर चलाया जा रहा थी[1]। कवि ने रैवतक के मणिमय और सुवर्णमत् होने की चर्चा की है। सम्भवत: यह कवि परम्परा वश किया गया है। ऊपर छाए सघन बादलों से लदे, देदीप्यमान सुवर्णमय शिखरों से वह पर्वत ऐसा जान पड़ता है जैसे भगवान शंकर अपने प्रशस्त हाथों पर हाथी का चमड़ा उठाए नाचने को तैयार हो। कहीं-कहीं पर पड़े सुन्दर शिला खण्डों से वह पर्वत बहुत ही रमणीय प्रतीत हो रहा है[2]।

देवताओं की क्रीड़ा स्थली होने से सुमेरूपर्वत सर्वथा अतुलनीय ही है[3]। पर्वत पर पहुँच कर भगवान कृष्ण गिरिशिखर की स्फटिक मणि की अड़ानी वाली स्वच्छ शिला पर बैठ गए[4]।

और भी उस पर्वत की शोभा देखिए - भगवान के निवास योग्य परिचारकों द्वारा भली-भांति तोरण ध्वजा-पताका आदि से सजाएगए तने तम्बू वाले उस शोभा सम्पन्न पर्वत शिखर पर भगवान सपरिवार आ पहुँचे[5]। इस गिरि शिखर से गिरे गिरती झर्झर ध्वनि से झर्झर नामक बाजे का भी मात करती निर्झरिणियों को देख भगवान प्रसन्न हो रहे हैं। घने वृक्षों से भरे फूलों से लदा यह पर्वत मार्ग भगवान के स्वागत के लिए तैयार किया गया था।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 45,47

2 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 49,50

3 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 51

4 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 62

5 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 52

इस प्रकार भगवान बिना प्रयास विशाल गिरि शिखर पर पहुँच गए[1]।

त्रिवेणी वर्णन :-
=========

पारिजातहरण महाकाव्य के पंचम सर्ग में कवि ने पथि प्रसंग में त्रिवेणी का वर्णन सातों विभक्तियों में किया गया है । त्रिवेणी के रूप महिमा का विशेष वर्णन कवि ने अपने काव्य में किया है । विभिन्न अलंकारों के माध्यम से त्रिवेणी के रूप का विशेष वर्णन कवि के पाण्डित्य को प्रदर्शित करता है । वह गंगा शंख के समान उज्जवल वर्ण वाली है । यहाँ उपमेय गंगा को शंख (उपमान) के समान बताया गया है । अतः उपमालंकार है । विलीन हो गए हैं चन्द्रमा जिसमें प्रभात काल के आकाश की नील कान्ति से प्रतिभासित, किरणों से रंजित अहिधाम(सूर्य) के तेजों की आनन्ददायिनी परम शोभा सी शंख के समान उज्जवल वर्णवाली यह भगवती गंगा शोभित होती है[2]। अविलीन ऐसा पदच्छेद करने से चन्द्रताराओं के पूर्ण अस्त न होने तक प्रभात काल में हिमधाम चन्द्रमा की कान्ति से भी तुलना की गई है ।

उत्प्रेक्षा के माध्यम से त्रिवेणी का वर्णन कितना सुन्दर है - फैले हुए क्रोधयुक्त विष की जंभाई से अंगड़ाती चलती अंगों के ऐठने से तरंगों के समान लक्षित होते उदर की कान्ति से श्वेत वर्णवाली तथा उमड़े मूर्धस्थ लाल मणिप्रभा से युक्त कृष्ण (काली)सर्पिणी जैसे पापों को डसने के लिए दाढ़ों के साथ जीभ

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 47

फरफराती चली जा रही है, ऐसी प्रतीत हो रही थी[1]।

यहां त्रिवेणी (उपमेय) का काली सर्पिणी (उपमान) के साथ तादात्म्य हो रहा है त्रिवेणी वास्तव में काली सर्पिण नहीं है। परन्तु सम्भावना की जा रही है कि जैसे अंगों के ऐठने से तरंगों के समान लक्षित होते उदर की कान्ति श्वेत वर्ण वाली गंगा है, उसके मूर्धस्थ लाल मणि प्रभा से युक्त यमुना है।

वह त्रिवेणी ऐसी प्रतीत हो रही थी मानों खिले पुष्पों की माला से सजे सिर पर झुकते भौरों के झुण्डों की नील प्रभा से प्रतिबिम्बित, गजबदन बालगणेश के स्वभावतः लाल मुख में प्रवेश करती जगदम्बा के पयोधर रूप, पयोनिधि की दुग्ध धारा है[2]। यहां त्रिवेणी (उपमेय) का पयोनिधि की दुग्ध धारा (उपमान) के साथ तादात्म्य स्थापित हो रहा है अतः उत्प्रेक्षा है। हे भगवान। हंसलोने मुख्य के स्वाभाविक लाल ओठो की आभा से चमकते दांतों के किरणों से रंजित खिले तीसी फूल के समान नील वर्ण वाले आपकी शरीर कान्ति सी जो शोभित होती है या आपकी शरीर की नीलमणि मूंगे तथा मोतियों की यह माला प्रयागभूमि को सर्वतः शोभित कर रही है[3]।

उपमेय में उपमान के संशय को सन्देहालंकार कहते हैं। उस त्रिवेणी को देखकर ऐसा सन्देह हो गया है कि क्या यह दुष्ट से आक्रान्त भारत भूमि की शोभा से अरूण तथा अंजन की कृष्ण कांति से मिली श्वेत अश्रुकी धारा है अथवा श्वेत भाल स्थल की प्रभा से भासित केशपाश के बीच(मांग में)भरी सुभग सिंदूर रूपराग की रेखा है[4]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 48
2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 53
3 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 54
4 पारिजातहरण महाकाव्य - 51

त्रिवेणी की अपूर्व शोभा का वर्णन कवि ने अपने काव्य में किया है – इस प्रयाग भूमि में सूर्य पुत्री यमुना की घनी नील तरंगों से आक्रान्त तथा लाल रंग में तरंगित सरस्वती को अंग में लिए स्वभाव से ही श्वेत वर्ण वाला गंगा सुशोभित हो रही है । यह सकल कल्याणों को देने वालीसत्व, रज, तम रूप त्रिगुणमय त्रिदेवों (ब्रह्मा), विष्णु, महेश) की एकता मय शक्ति की तादात्म्य भागिनी है । सकल शोभाओं की उत्तर पूर्ति (अन्तिम सीमा) की मूर्ति इस त्रिवेणी की कोई अमिश्रित प्रभा जगत् में नहीं है[1] । महावर से रंगे पैरों पर पड़ती देवांगनाओं के केश भार की कान्ति से भरे अम्बिका के श्वेत चरण कमलों की कान्ति के समान त्रिवेणी को नमस्कार है । काले दाग वाली चन्द्रमा से भूषित लाल चन्दन से चर्चित भगवान् शंकर की श्वेत भालस्थली सी, कस्तूरी मिले केशर के पंक रूप अंग राग से भीगा भूमि का पयोधर पट, (उरोजों पर पड़ा श्वेत वस्त्रांचल) के समान शोभमान इसकी वन्दना करता हूँ[2]।

और भी इसका रूप सौन्दर्य देखिए गज क्रीड़ा में तोड़े हुए पर्वतों के गेरू के रंग में रंगे दांतों की प्रभा से अनुविम्बित देव गज के कपोल पर आधारित उत्कट स्राववाली मद की धारा जैसी हो ऐसी इन्द्र धनुष के समान मनोहर कान्ति वाली त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है[3] ।

यह त्रिवेणी काले सीगों की छवि से व्याप्त शिरोभाग वाली तथा लालधनों से युक्त शोभा वाली श्वेत रंग वाली कामधेनु के समान भव्य रूप धारण कर रही है[4] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य पंचम सर्ग – 42, 43
2 पारिजातहरण महाकाव्य – पंचम सर्ग – 49, 50
3 पारिजातहरण महाकाव्य – पंचम सर्ग – 51
4 पारिजातहरण महाकाव्य – पंचम सर्ग – 55

त्रिवेणी के विषय में कहा गया है कि जिसने नारायण के नील चरणों का क्षालन किया जिसने पितामह ब्रह्मा के पवित्र कमण्डलु को भरा, जो वि शिव के जटा मण्डित सिर पर सवार हुई मानों यह इस त्रिदेव के गुण गाकर पिघली वेदों की त्रयी है । जिसके लिए सारे देवता स्पृहा करते है, जिसके लिए भगवान् शंकर भी पार्वती कृत अवमान का सहन करते तथा सगर की सन्तानें जिसके लिए कर्तव्य का आदेश दती हैं । वही गंगा यह तरणि तनुजा यमुना और सरस्वती से युक्त शोभित हो रही है । जिसके पृथक् कोई पावन वस्तु नहीं है, जिससे बढ़कर अपूर्व रूप वाली दूसरी शक्ति नहीं है । जिसके अतिरिक्त कोई मनोहारी नहीं । वही यह ईश्वर के अनुकम्पा पात्र जगत की भाग्य विभूति है । जिसका शुभ दर्शन समस्त पापों का नाश करने वाला है । वही यह त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की देने वाली विधाता की सुविधा है[1] । यहां पर त्रिवेणी के ईश्वरीय रूप का वर्णन किया गया है । त्रिवेणी का शुभ दर्शन अखिल अनर्थ को हरने वाला है तथा संसार के जन्म-मरणादि दुःखों को छुड़ा देने वाला है ।

प्रयागस्थ गंगा को सारे विरोधी का निरोध करने वाली स्वर्ग का राज्य कहा गया है[2] ।

कवि उमापति न अपने पारिजातहरण महाकाव्य में कुलक रीति से गंगा का प्राकृतिक वर्णन भी किया है । उन्मत्त हो कूजते पक्षियों से लदे छाया वृक्ष लताओं से मनोहर तट भूमि वाली मन्द वायु की प्रेरणा से उछलती लहरों पर हिलते मधु वर्षी कमलों से छायी । कहीं उज्जवल कान्ति से विलसित, कहीं मूंगे समान कान्ति वाली, कहीं तरूण तमाल की सी नील शोभायुक्त,

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 56, 59

2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 60

खेलते हंसों से शोभित, टेढ़ी रेखा वाले शैवाल जालों से जटिल अन्तर्जलराशि वाली । प्रौढ़ कान्ति ज्वाला की चिनगारियों की भांति उछलती मछलियों से सजी, दिक्पालों की बाल वनिताओं के विशाल उरोजों के आघात से फैलती जलराशि वाली यह त्रिवेणी मेरे पाप पुंजों को प्रशान्त करें[1] ।

कवि उमापति सांख्य सिद्धान्त में पण्डित थे । उन्होंने विभिन्न दर्शनों का अध्ययन किया था । काव्य में सांख्य की प्रकृति को यमुना तथा पुरूष को गंगा बताया गया है तथा सरस्वती इस प्रकृति और पुरुष को मिलाने वाली बतायी गयी है । यह एक ओर संसार की प्रकृति जन्य मलिनता ही यमुना है तथा दूसरी ओर उस परम पुरुष की श्वेत विभूति {ऐश्वर्य} ही गंगा है । इनके पदारविन्द की प्रेमिका यह सरस्वती नदी इन दोनों को संहित कर रही है अर्थात प्रकृति पुरुष के संयोग का अनुराग भरी कवि सरस्वती जैसे बखान रही है[2] ।

सांख्य की त्रिगुणात्मिका प्रकृति को त्रिवेणी कहा है । संसार के उद्‌भव स्थित प्रलय को करने वाली जो त्रिगुणात्मिका प्रकृति है जिसके वर्णन में "एकामजां लोहित शुक्ल कृष्णाम्" इत्यादि वाक्य है वही त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित हो रही है । यह एक ही त्रिदेव की त्रिगुणात्मिका शक्ति जो जगत् का अन्त करने वाला अपना सार लेकर रूद्र शक्ति जया जगत् के अन्त करने वाले यम की बहन यमुना को लेकर तमोमय श्याम भेद धारण करती तथा संसार की उत्पत्ति में लगी, सरस्वती को साथ ले, रजोगुणमयलाल रूप धारण करती

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 61, 63

2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 44

तथा संसार की उत्पत्ति में लगी, सरस्वती को साथ ले, रजोगुणमय लाल रूप धारण करती ब्रह्मशक्तिरूपिणी, स्वभाव के सत्वगुण का श्वेत रूप धारण करने वाली विष्णु शक्ति रूपिणी गंगा है[1]।

समुद्र वर्णन :-
=======

पारिजातहरण महाकाव्य के तृतीय सर्ग तथा चतुर्थ सर्ग में समुद्र का वर्णन किया गया है । विभिन्न अलंकारों के माध्यम से इन्होंने समुद्र का वर्णन किया है । भगवान् कृष्ण की उपमा समुद्र से निकलते चन्द्रमा से की है । समुद्र की गोद में हिडोले के समान खेलती लहरों का विगाहन करते हुए भगवान कृष्णचन्द्र {उपमेय} इस समुद्र से निकलते चन्द्रमा {उपमान} के समान दिखाई दिए[2]।

उत्प्रेक्षा के माध्यम से समुद्र का वर्णन करके कवि ने प्रकृति के भीम-रूपों को दिखाया है । अपने भीतर उबते-डूबते जल जन्तुओं के द्वारा अपनी स्थिति से मानों विधाता के उत्पत्ति प्रलय का अभिनय कर रहा हो, जो समुद्र ऐसा प्रतीत होता था[3]। यहां प्रकृत {समुद्र} की उसके समान अप्रकृत {विधाता} के साथ तादात्म्य स्थापित हो रहा है अतः उत्प्रेक्षालंकार है ।

प्रकृति के भीम रूप का बड़ा ही सजीव वर्णन प्रस्तुत श्लोक में किया गया है जो तटवर्ती वनों की घनी छाया से आच्छादित दोनोंप्रान्तों के बीच आस-पास दोनों ओर छाए घने बादलों से घिरे प्रशस्त आकाश के समान दिखाई दे रहा है,

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 45

2 पारिजातहरण महाकाव्य चतुर्थ सर्ग - 12

3 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 6

जिनका कोलाहल अनुक्षण बढता जा रहा है, ऐसी लहरों की परम्परा से शोभित तथा भ्रान्तिशील के समान जल में उठी भंवरों के रूप में चक्कर काट रहा है[1]। प्रकृति के मानवीकरण के रूप में भी समुद्र का वर्णन इस काव्य में किया गया है । वह समुद्र स्वच्छन्द धीर एवं गम्भीर रूप में सारी पृथ्वी को चारों ओर से घेरकर स्थित है । जो समुद्र अपना असीम गौरव रखता हुआ भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करता एवं परस्पर टकराती लहरों के कोलाहल से सारी दिशाओं के मुख को भर के वर्तमान है[2]। सारी सृष्टि को आदिभूत महान् आशय वाला अधिक सम्मान के योग्य पूर्वजों की भी पूजा प्राप्त करने वाला यह (समुद्र) विशेष रूप से श्लाघनीय है[3]। भगवान् कृष्ण ने भक्ति पूर्वक उस समुद्र का हृदय तथा सिर से आलिंगन किया ।

चित्रात्मक रूप में समुद्र का वर्णन करते समय कवि उसके चित्रकों ही अंकित कर देते हैं:-

रंग-बिरंगे रत्न एवं जल जन्तुओं से चित्रित आशय वाला वह समुद्र ऐसा लग रहा था जैसे पृथ्वी रूप हथिनी के पीठ पर पड़ा रत्नादि से चित्रित झूल हो । उस समुद्र के आन्तरिक उल्लास को तौलते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उसकी तरंग रूप उठी भुजाओं के भीतर हो रहे उसकी लहर लेने लगें[4]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 3,4

2 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 1,2

3 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 8

4 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 10

एक पौराणिक आख्यान के द्वारा कवि ने समुद्र का वर्णन किया है । चन्द्रवंश के भूषण भगवान कृष्ण को गिरि शिखर पर बैठे देख जोरों में लहराता हुआ समुद्र मानों लहरों के बहाने बढ़े आनन्दोल्लास में उछलने लगा इसलिए कि भगवान के वंश के आदि पुरुष चन्द्रमा समुद्र के ही पुत्र है फिर अपने वंश के भूषणीभूत भगवान को देख समुद्र क्यों न तरंगित हो[1] ।

समुद्र के सौन्दर्य के वर्णन करके में कवि ने अपनी अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया है । ताराओं के समान प्रस्फुट फेन भंगों को तथा उसी रूप श्रेष्ठ श्वेत शंखों एवं सूक्तियों को धारण करता हुआ समुद्र ऐसा जान पड़ता है जैसे जल के व्याज से पृथ्वी पर पड़ा आकाश का कोई एक भाग है । यहां उपमेय समुद्र में उपमान आकाश की सम्भावना की जा रही है अतः उत्प्रेक्षालंकार है ।

आ मिलने वाली नदियों को अपनी गोद में लेते समुद्र में कामिनी कामुक का रूपक बांधता हुआ कवि किंचित श्लेष के द्वारा वर्णन कर रहा है । रस के आधिक्य से गर्वित हो बहने वाली तथा राग के आधिक्य से गर्वित गिरती लड़खड़ाती समीप में आई उत्सुकता से भरी नदियों का भुजाओं के समान तरंगों से अपनी गोद में भरते हुए से समुद्र को देखा है[3] ।

भगवान के करारों के ऊपर तक उठती लहरों से भय खा-खाकर अपनी रक्षा के निमित्त, अंचलों से दिए गये अर्घ्य के समान शतमुख आ गिरती हुई नदियों से तृप्त होते अर्थात भरे जाते हुए समुद्र को देखा[4] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 66

2 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 68

3 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 71

4 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 69

समुद्र में बडवानल को उत्प्रेक्षित करता हुआ कवि कह रहा है - कहीं भंवर राशि में चक्कर खाते जल के बीच जलता हुआ बडवानल ऐसा जान पड़ता था जैसे आकाश मण्डल में चमचमाती किरणों के जाल से युक्त अनेकों सूर्य नाच रहे हो । जलते बडवानल की ज्वालाओं से जटिल अनन्त जलराशि से भासमान समुद्र को भगवान ने देखा[1] ।

विभिन्न अवतारों के रहस्य को बताते हुए कवि समुद्र का वर्णन कर रहे हैं यह कवि के दार्शनिक तथ्य की ओर संकेत करता है । उस समुद्र में अति विशाल कछुओं की पीठ पर फण फैलाकर बैठे, बड़े बड़े भुजंग पृथ्वी को धारण करने वाले कच्छप की पीठ पर बैठे भगवान शेष का वेष बना अभिनय करते हुए शोभित हो रहे थे । कहीं कहीं लीला से जलराशि पान करते तथा उतावली उठती लहरों पर डूब डूब खेलते हुए निर्भयता से मन्द - मन्द रेंगते हुए बड़े बड़े मीन अवतार भूत महामत्स्य की विडम्बना कर रहे हैं[2] ।

समुद्र का मानवीकरण करते हुए कवि यह बताते हैं कि तरंग रूप भुजाओं को फैलाए गम्भीर ध्वनि के बहाने स्तुति पाठ करता समुद्र भगवान कृष्ण के प्रति साष्टांग प्रणत सा दिखाई दे रहा था । भगवान कृष्ण को हर्षोल्लास की अधिकता से उनके उचित पुरस्कार पूर्ति की इच्छा से, चंचल तरंगों से छिटकते निर्मल जल की बड़ी बूंदों के वृन्द व्याज से हाथों से अगणित मोतियों की राशि लुटाता हुआ घनी जलराशि से भरा भासमान यह समुद्र सौ-सौ हर्ष ध्वनि के साथ मानों उछल रहा है[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 73,

2 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 75, 76

3 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 79, 80

प्रभात वर्णन :-
=========

पारिजातहरण महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में प्रभात का बड़ा ही वास्तविक वर्णन किया गया है । रूपक, उपमा, अप्रस्तुत प्रशंसा, अनुप्रास आदि अलंकारों के माध्यम से कवि ने रात्रि के बीत जाने का वर्णन किया है । प्रकृति के मानवीकरण के माध्यम से भी प्रभात का वर्णन किया है । उनके इस वर्णन में श्रृंगारिक भावनाओं का समावेश भी पाया जाता है ।

उपमेय और उपमान का जो काल्पनिक अभेद है वह रूपक कहलाता है - उस समय रात्रि गर्भवती स्त्री के समान प्रतीत होती थी । उसका चन्द्रमारूपी मुख {चन्द्रमा और मुख का काल्पनिक अभेद} पीला पड़ गया था उसके अंगों पर नक्षत्र रूपी आभूषण {नक्षत्र रूपी आभूषण का अभेद शेष} इने गिने ही रह गए थे और इसने अपने भीतर बाल रूपी सूर्य को धारण कर रखा था[1] । यहाँ पर रूपक के माध्यम से वर्णन है ।

जहाँ उपमेय की उसके समान उपमान के साथ तादात्म्य सम्भावना होती है वहाँ उत्प्रेक्षालंकार होता है । स्त्री के केशपाश उपमेय का, सर्पिणी उपमान के साथ तादात्म्य सम्भावना है मानों वह केश ऐसा लग रहा है जैसे सर्पिणी । अतः यहाँ उत्प्रेक्षा के माध्यम से प्रभात का वर्णन किया गया है । अप्रस्तुत-प्रशंसा तथा विप्रलम्भ श्रृंगार के माध्यम से कवि रात्रि के बीत जाने का बड़ा ही मार्मिक वर्णन करते हैं :-

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 4

नायक - प्रिये तुम्हारा यह मुख मण्डल उदास क्यों है ।
नायिका - चन्द्रमा के अन्तिम आशा (दिशा में डूब जाने से)
(भाव यह है कि अन्तिम आशा के भंग हो जाने से)
नायक - प्रिये । चन्द्रमा तो फिर नूतन रूप धारण करके उदित होगा ।
(अर्थात अब ऐसा नहीं होगा)
नायिका - जो गया वह उस रूप में नहीं लौटता[1] ।

अप्रस्तुत प्रशंसा वह अलंकार है जिसे अप्रस्तुत की ऐसी वर्णना कहते हैं जो कि प्रस्तुत अर्थ की प्रतिपत्ति के आश्रय (निमित्त) हुआ करती है ।"जो गया वह उस रूप में नहीं लौटता यह तो अप्रस्तुत की वर्णना है परन्तु प्रस्तुत अर्थ "चन्द्रमा के चले जाने के निमित्त हुई है ।

अनुप्रास के माध्यम से प्रभात की छटा दर्शनीय है - "भभानूद्वभाति भावुकम्[2] ।"

कवि ने रात्रि के समाप्त होने का वर्णन इस प्रकार किया है - रूक्मिणी श्रीकृष्ण को जगाते हुए कहती हैं कि हे नाथ ! निद्रा का परित्याग कीजिए और देखिए, यह रात्रि एक ऐसे ज्योतिर्मय शिशु को जन्म देना चाहती है जो आनन्द का धाम है कबूतरों के कलरव के बहाने मानों यह प्रसव की पीड़ा से कराह रही है[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 15
2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 23
3 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 7

उपमा के माध्यम से रात्रि के बीतने का वर्णन कवि ने किया है । ज्योतिषी ब्राह्म्मण की उपमा चन्द्रामा से दी है । जैसे कोई ज्योतिषी ब्राह्मण किसी धनी व्यक्ति के यहाँ शकुनों ॥प्रश्नों के द्वारा सत्पुत्र की उत्पत्ति बताकर रत्न आदि पारितोषिक प्राप्त करके जाता है, उसी प्रकार नक्षत्र मण्डल का शासक ॥ज्योतिष-शास्त्रज्ञ॥ चन्द्रमा प्रभात काल में शकुन॥पक्षियों॥ के कलरव से सूर्योदय की सूचना दे विदाई के रूप में मिली हुई ताराओं का साथ लिए चला जा रहा है[1] ।

उद्दीपन विभाव के रूप में रात्रि बीतने का वर्णन भी किया है । यह रात्रि स्त्रियों के भाव को उद्दीप्त करने वाली है ।

प्रकृति की यह दूसरी विडम्बना देखिए सारी रात काम विनोद में बिताकर स्त्रियाँ प्रिय के वाम भाग में ही सोई है[2] । टूटे हार के बिखरे हुए मोती के दानों में प्रातःकाल जो शीतलता आ जाती है, उसके स्पर्श के अनुभव से अचानक जगी हुई कितनी ही कामनियाँ, प्रियतम के जग जाने की आशंका से उनके आलस्य को बढ़ाने वाले वशीकरण प्रभात गोपनादि ॥ सवेरे को छिपाने वाले॥ उपचार कर रही है[3] । लीलाकलह में कुपित हुई कितनी ही कामनियाँ आलसी और अरसिक पति को घोरे निद्रा में निमग्न देख, रतीच्छा की आन्तरिक प्रेरणा से, करवटें बदल रही है । अभिसारिकाएं अपने संकेत स्थान से अब लौटी जा रही है[4] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 8

2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 9

3 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 12

4 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 13

उत्प्रेक्षा के माध्यम से प्रभात का वर्णन प्रस्तुत है -- भगवान् भास्कर से भयभीत सी होकर मानो आकाश से भूमि पर छिपने के लिए आई हुई ताराओं जैसी कितनी अभिसारिकाएं यहां भीसूर्य के पुनः आगमन की आशंका से मानों अन्यत्र छिपने के लिये भागी जा रही है[1]। यहां अभिसारिका (उपमेय) का ताराओं (उपमान का तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित किया गया है ।

चित्रात्मक-शैली के द्वारा कवि ने प्रभात का चित्र सा अंकित कर दिया है ।

उषःकाल की प्राप्ति से प्रसन्न पक्षिमण्डल श्रवण सुखकारी मंगलगान कर रहा है एवं अरूण(सूर्य सारथी) अंशुओं से रञ्जित हुई सारी दिशाएं सूर्य जन्म रूपी महोत्सव को सूचित कर रही है । द्विजगण वैदिक मंगलपाठ कर रहे है एवं दिंगनाए लाल वस्त्रों से रंञ्जित हुई उक्त महोत्सव के पुनीत क्षण को सूचित कर रही है[2] ।

इस समय इस जगत् में कोई ऐसा नहीं दिखाई देगा जो इस सत्प्रसवोन्मुखी दिशा का दिया सुवर्ण (सोना) लेने को उत्सुक न हो अर्थात प्राप्त कर लेंगे । रात्रि का मुख उज्जवल होकर शोभायमान हुआ, सहचारी दिशाएं भी शोभित हो उठीं । सब ओर सुख की सूचना देती हुई मनोहर सुगन्ध फैलाती हुई वायु बह रही है । वायु से इस शुभ सूचना को पाकर ये जड़ वृक्ष लतादि भी पृथ्वी पर सब ओर दलरूपी अपने हाथों से ओस -बिन्दु रूपी मोती बरसा रहे है[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 19

2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 24

3 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 25,27

उपमेय और उपमान का काल्पनिक अभेद रूपक कहलाता है यहाँ हाथ उपमेय और दल उपमान तथा मोती उपमेय और आसे बिन्दु उपमान का काल्पनिक अभेद है अतः यहाँ रूपक है ।

महोत्सव के समय बन्दियों को बन्धन मुक्त कर देना स्वाभाविक ही है, इसी का बहुत ही स्वाभाविक वर्णन कवि ने इस काव्य में किया है - तम (अज्ञान या अन्धकार) से आवृत चित्त वाले जीव, जो काम-निद्रारूप निगड़ (बेडी) में बँधे हुए थे अभी - अभी बन्धन से छूटकर निश्शंकर बिहर रहे हैं । अनेक लताओं के चुम्बन रूप अपराध के कारण कमल कोश रूप कारागार में जो रात्रि के समय बन्द कर दिए थे, वे बन्दी अभी-अभी बन्धन से छोड़े गए है[1] ।

प्रातः का समय है अतः सूर्य को कवि का "बाल" कहकर वर्णन करना बहुत ही मनोरम है - इस उगते बाल सूर्य से सुदिन चाहते हुए व्रती, विद्वान, ब्राह्मण, शुभ्द अर्ध्य प्रदान कर रहे हैं[2] । सूर्योदय रूप सत्य प्रसव में पहले ही यदि इस प्रकार का राग (अनुराग तथा लालिमा) फैला हुआ है तो उसके प्रसूत हो जाने पर कैसा उत्सवानुराग कैसी लालिमा होगी यह अकथनीय है । दिशारूप धाय की गोद में सुखासीन ऐश्वर्यशाली शिशु सूर्य एक नई रोशनी संसार में लाएगा[3] ।

मोह उत्पन्न कर देने वाले घने अन्धकार को स्वाभाविक बाल चापल्य से मारकर उसके खून से लथपथ हुआ यह बाल सूर्य आकाश के भीतर से ही लालिमा लिए चमक रहा है[4] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 28,29
2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 31
3 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 33
4 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 39

कवि उपमा के माध्यम से बाल सूर्य का वर्णन कर रहे है, जिस प्रकार हाथ में लीला कमल लिए स्तनपान के लिए लालायित जटिल नवजात शिशु, अपनी माता का शोकरूप तम हर लेता है अर्थात् उसे प्रसन्न कर देता है उसी प्रकार अपनी किरणों से लीला ललित कमलों का स्पर्श करता हुआ पूर्व दिशावर्ती उदयाचल रूप स्तन में अपनी कान्ति फैलाता हुआ फैलती रश्मियों के जाल से जटित, यह बाल सूर्य रात्रि में फैले हुए अन्धकार को दूर कर देगा[1]।

प्रातःकाल मुर्गों का बोलना प्राकृतिक है उसी का वर्णन करते समय कवि अपने श्रुति ज्ञान को प्रकट करते है - स्वर, मूल भेद, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित से युक्त ऋचा को पढ़ता आहुताम्रचूड़ (मुर्गे रूप ऋत्विजों का बृन्द शुभ सम्पत्ति के लिए जगत के सारे व्यसनों का तेजस्वी सूर्य में हवन कर देना चाहता हूँ[2]। ताम्रचूड़ (मुर्गे) अग्निहोत्र का समय हो गया है, ऐसा जानकर अग्निहोत्रियों को जगाते हुए यह आदेश दे रहे हैं कि हाथ में जुहू (हवन साधन पत्र विशेष) उठाओं कुकुहूकू" नहीं अपितु "कुरूत" करे जुहू" ऐसा कह रहे है[3]। अग्नि को दीप्त करने वाली ऋचाओं को पढ़ते हुए ब्राह्मणगण स्वाहाकार आलापते हवन कर रहे हैं।

प्राभातिक वायु का संचार प्रत्येक स्थानों में हो गया है। इसी का अत्यन्त ही मनोहारी वर्णन कवि ने यहाँ पर किया है :-

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 40
2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 43
3 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 44

सम्भोग के अनन्तर लौटी हुई अभिसारिकाओं के कपोल स्थल में प्रस्वेद रूप मधु द्रव को चाटता हुआ पवन, मानों उन्हीं को ढूँढ़ता घर-घर में घूम रहा है[1]। प्राभातिक पवन लता वृक्षों के नव पल्लवों तथा कमल आदि विभिन्न पुष्पों में लग रहा है।

प्रातः हो गई है अतः जल में कमल खिल गए है उसी का रूपक यहां पर कवि ने बांधा है। जल में खिलते कमलों पर खेलते भ्रमर मण्डल रूप, अन्य के द्वारा आपके (कृष्ण) के मुख कमल में मूर्त्तिमती वेदों की वर्णमाला उपमेय बन रही है[2]। यहां वेदों की वर्णमाला उपमेय तथा भ्रमर उपमान के साथ काल्पनिक अभेद है।

प्रातःकाल हो गया है अतः उस समय के उपर्युक्त जो काम है उसका अत्यन्त ही स्वाभाविक वर्णन इस काव्य में किया गया है। पक्षियों के कल कल से जगे, दूध पीने के लिये रोने से भीगे ओंठ वाले, दूध मुँहे, बालकों को प्रत्येक घरों में मातायें गोद में उठा रही है[3]।

इसलिये हे कमल नयन (भगवान कृष्ण) आपके नयन कमलों को भी विकसित हो जाना चाहिए। आप जागकर अपने प्रताप से सूर्य का अभिमान और चन्द्रमा के अभाव से होने वाली क्षति को दूर करे। तमोगुणी व्यवहार वाले (अन्धकार) के अनुयायी उलूक आदि पक्षी जो अभी तक अपने को सुफल (सुखी) समझते थे। वे अपनी दुर्वृत्ति का दिवान्धता रूप कुफल अनुभव करेंगें ही[4]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 48

2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 50

3 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 50

4 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 53

"समय आ जाने पर किसका दुरभिमान नष्ट होता" इस सूक्ति के द्वारा कवि ने रात्रि के चले जाने का अत्यन्त सजीव वर्णन किया है - खिले कुमुदों वाली, निन्दित हर्ष जिसका एवं दोषाकार होते हुए भी चन्द्रमा जिसे उल्लसित कर रहा था । तथा जो स्वयं भी दोषा {दोषवाली} थी ऐसी जिस रजनी ने गर्व के साथ उल्लुओं से अपने अधिक हर्ष की घोषणा कराई थी वही रात प्रातःकाल ओस के बहाने आँसू बहाती हुई चली जाती है अथवा यों कहिए समय आ जाने पर किसका दुरभिमान नष्ट नहीं होता[1] ।

सन्ध्या वर्णन :-

काव्य के त्रयोदश सर्ग में कवि ने सन्ध्या का वर्णन करते हुए प्रकृति के भीम रूप को दिखाया है । "दिन के ढल जाने पर सूर्य की किरणों के चले जाने पर, आकाश के बहुत अधिक अन्धकार से ग्रसित होने पर सम्पूर्ण लोक के द्वारा अस्पृश्य किन्तु आलोक्य रूप अपनी रोष सहित पीड़ा के कारण उत्पन्न रक्त वर्ण का दिखाई दे रहा है[2] ।

इस प्रदोष में पश्चिमी दिशा के विस्तार से रक्त वर्ण का {शराब पीने के कारण लाल} अपने पतन से दुःखी तथा लोगों के नेत्रों को अन्धा बनाए गए स्खलित तथा कम किरणों से अपने राग का अनुभव करती हुई शराब पीने से स्खलित तथा इधर-उधर पैर पड़ने से प्रेम का अनुभव करते हुए पश्चिमी दिशा में भाग्य से अस्त होने की इच्छा से अभिसार कर रहा है[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 57

2 पारिजातहरण महाकाव्य - त्रयोदश सर्ग - 3

3 पारिजातहरण महाकाव्य - त्रयोदश सर्ग - 4

विभिन्न अलंकारों के माध्यम से भी कवि ने सन्ध्या का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है । सूर्य और चन्द्रमा को उत्प्रेक्षित करता हुआ कवि कहता है - पूर्व दिशा में चन्द्रमा के उदित हो जाने पर और पश्चिमी दिशा में दिन के ढल जाने पर सूर्य बिम्ब के लट जाने पर आकाश रक्त वर्णन का हो गया है और यह दोनों ऐसे लग रहे हैं जैसे मणि के बने हुए पुटभाण्ड के दो खण्ड हो गए हो । और उसके फूट जाने पर कामदेव की स्त्री रति के आभूषण के सिन्दूर का प्रवाह फैल गया हो[1]। और वह सन्ध्या के आने पर ऐसा लगा रहा है जैसे आकाश में बिम्बायमान फैल रहा हो ।

उस सन्ध्या समय सूर्य और चन्द्रमा का वर्णन कवि कर रहे हैं - प्राक दिशा में चन्द्रमा के उदित होते हुए तथा पश्चिम दिशा में सूर्य के अस्त होते हुए अर्थात् दोनों एक साथ रक्त वर्ण के आकाश में दिखाई दिए[2]।

सन्ध्या का मानवीकरण करते हुए कवि ने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है । सन्ध्या समय लाली फैल जाती, है इसी को उत्प्रेक्षित करता हुआ कवि कहता है - मानों बहुत अधिक रक्त वर्ण से उस सन्ध्या ने अपने अंग को ढका है[3]।

कवि ने अपने काव्य में श्रृंगारिक भावनाओं का भी समावेश किया है- रवि के द्वारा त्यागी हुई है फिर भी मन में पाप लिए रक्त वर्ण के हुए वस्त्र वाली वह सन्ध्या अभिसार करती है[4]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - त्रयोदश सर्ग - 2

2 पारिजातहरण महाकाव्य - त्रयोदश सर्ग - 1

3 पारिजातहरण महाकाव्य - त्रयोदश सर्ग - 6

4 पारिजातहरण महाकाव्य - त्रयोदश सर्ग - 7

सन्ध्या का अत्यन्त ही सजीव वर्णन करते समय कवि कहते है - आकाश के एक भाग में अन्धकार फैल रहा है और दूसरे भाग में सूर्य-विम्ब दिखाई पड़ रहा है, ये दोनों ऐसे प्रतीत हो रहे हैं । मानों भगवान् शंकर की शक्ति अम्बिका केश में रहने वाले चन्द्रमा के चारों ओर बिन्दुओं वाले सिन्दूर का सिन्धु फैल रहा है । ॥अर्थात सिन्दूर रक्त - वर्ण का होता है तथा सन्ध्या की लालिमा भी रक्तवर्ण की है ॥ और पृथ्वी पर चंचल बाल सन्ध्या अनुराग से विहार करती है[1] ।

सन्ध्या समय कमल ढक जाता है, उसी की उपमा देते हुये कवि कहते है- सन्ध्या कालीन अंगना के स्मित मुखचन्द्र को देखकर उपमान कमल सोने के समान मुद्रा को प्राप्त हो गया है ॥अर्थात चन्द्रमा के निकल जाने पर वह ढक गया है और लज्जा से जल में डूब गया है । ॥सूर्य के अस्त हो जाने पर ऐसा लग रहा है जैसे कमल समूह अत्यन्त विरह के कारण अवसाद को प्राप्त हो गए हो[2] ।

ऋतु वर्णन :

संस्कृत साहित्य में ऋतु वर्णन आवश्यक अंग होकर आया है ऋतुओं का प्रभाव प्रकृति की रूपश्री और प्रभावोत्पादक पर पड़ता ही है । अतः संस्कृत कवियों ने प्रकृतिवर्णन प्रायः किसी न किसी ऋतु का आश्रय लेकर किया है । ये वर्णन तीन प्रकार के हैं ॥1॥ शुद्ध ऋतु वर्णन जिसमें प्रकृति का स्वतन्त्र अस्तित्व

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - त्रयोदश सर्ग - 9

2 पारिजातहरण महाकाव्य - त्रयोदश सर्ग - 11, 12

है । इन ऋतु वर्णन में कवियों ने अपनी मनःस्थिति से अप्रभावित रहकर शुद्ध सौन्दर्य के दर्शन किए और कराए है ।§2§ दूसरे वर्णन वे है जिनमें कवियों ने अपनी मनःस्थिति के अनुसार प्रकृति को प्रसन्न या उदास रूप में देखा है । यहां प्रकृति अनुचरी बन गई है । सहचरी नहीं ।§3§ तीसरे वर्णन में जहां प्रकृति किसी अन्य वर्णन की उपकर्मी मात्र बनकर आयी है उसका स्वतः अपना अस्तित्व नहीं है ।

ऋतु वर्णन में कवियों की दृष्टि वर्षा, शरद् और वसन्त पर विशेष गई है और इसका कारण है, संस्कृत कवियों ने प्रायः आनन्द की सिद्धावस्था को अपने काव्य में ग्रहण किया है । बाल्मीकि और व्यास ने ही अपनी दृष्टि मंगल की साधनावस्था की ओर भी रखी है । मंगल की सिद्धावस्था के कवि के लिये यह स्वाभाविक है कि वह प्रकृति के उन अंगों को उपादान रूप में ग्रहण करें जिनकी रंजकता स्वयं सिद्ध है । जिसकी मनोरमता के लिए उसे प्रयत्न न करनापपड़े । इस श्रेणी के कवि विभीषक उपकरणों को ग्रहण नहीं करते । इसीलिए ऋतु वर्णन प्रसंगों में ग्रीष्म, हेमन्त, शिशिर के वर्णन कवियों ने प्रायः परम्परा निभाने के लिए किए है । उनकी वृत्ति इन स्थलों पर रमी नहीं है। दूसरे इन ऋतुओं के वर्णन में कालिदास जैसे महाकवि तक ने कोई नवीन कल्पना या उद्भावना नहीं की है कोई लुभावना चित्र नहीं उपस्थित किया है, फिर अन्य कवियों की बात ही क्या है ? पारिजातहरण महाकाव्य में शरदऋतु तथा वसन्तऋतु का बड़ा ही मनोरम वर्णन किया गया है ।

शरदऋतु :-

पारिजातहरण महाकाव्य में कवि उमापति ने विभिन्न अलंकारों के माध्यम से शरदऋतु का चित्र सा उपस्थित कर दिया है । शरदऋतु के सौन्दर्य के वर्णन में उन्होंने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया है ।

जहाँ उपमेय की इसके समान उपमान के साथ तादात्म्य सम्भावना होती है, वहाँ उत्प्रेक्षालंकार होता है । यह लाल चरण चोंच से शोभित अंग वाले, एकान्त आकाश में विलास करते हंस ऐसे जान पड़ते हैं जैसे टूट कर गिरे मूंगे के डंठलों को मुँह पेट में रख समुद्र के भीतर शंख तैर रहे हैं[1]। यहाँ लाल चरण चोंच {उपमेय} तथा टूट कर गिरे मूंगे के डंठल {उपमान} के साथ तादात्म्य है । एकान्त आकाश {उपमेय} की उसके समान समुद्र {उपमान} के साथ तादात्म्य है तथा हंस {उपमेय} की उसके समान शंख {उपमान} के साथ तादात्म्य सम्भावना है । ये सब वैसे हैं नहीं पर सम्भावना की जा रही है अतः उत्प्रेक्षा है ।

श्लेष के द्वारा वाग्देवता की तुलना शरद ऋतु से कर रहे हैं । श्वेत अम्बर वाली {देवता पक्ष में} श्वेत वस्त्र से सजी आरसित बोलते हुए, हंसों की गति संचार से प्रसन्न {देवतापक्ष में} आलसित मन्द या सर्वथा शोभमान हंस {निज वाहन} की गति से प्रसन्न {ऋतुपक्ष में} {श्रृंगार हार के पुष्प समूह से महनोहर छटा वाली {देवता पक्ष में} श्रृंगरार्थ हार के फूलों से अथवा अन्य विधि श्रृंगार तथा हार एवं पुष्प राशि से मनोहर कान्ति वाली {ऋतु पक्ष में} उल्लास से विकसित

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 6

कर रखा है । अपने समय के आश्रित बन्धुजीव दुपहरी के फूल जिसने §देवतापक्ष में§ आनन्दित कर दिया है अपने सिद्धान्त के आश्रित बन्धुओं के जीवों को जिसने ऐसी वाग्देवता §सरस्वती देवी§ के समान हमारे आनन्दार्थ शरदऋतु उदित हो रही है।

उपमेय और उपमान का जो काल्पनिक अभेद है, वह रूपक अलंकार कहलाता है । नाना पुष्प रूप आभरणों को धारण करने वाली विकसित चन्द्ररूप मुख वाली सरोजरूप नेत्रों से सुन्दर अत्यधिक कास कुसुम रूप हास §हंसी§ से सुशोभित, सरस तथा प्रसन्नता से पूर्ण, स्वच्छ अम्बर ही है वस्त्र जिसका ऐसी यह शरद तुम्हारी सुहृद सखी जैसी तुम्हारे अर्थ सिद्धि के लिए उ उत्सुक हो, मुझे तत्परता प्रदान करती है[2] ।

यहां मुख §उपमेय§ तथा चन्द्र §उपमान§ में काल्पनिक अभेद है, नेत्र §उपमेय§ तथा सरोज§उपमान§ में काल्पनिक अभेद है अतः रूपक अलंकार है ।

कवि ने जहां शरद् के सौन्दर्य में उत्प्रेक्षा, श्लेष, रूपक से भरी कल्पना की उड़ानों की सृष्टि कराई है वहां चित्रकार के समान कुछ सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए है । यह धवल हंसों की श्रेणी अपने चरण चंचु चोंच की लालिमा से रंगी, शुकमाला से मिलकर बरसात बीत जाने पर भी आकाश में इन्द्रधनुष की शोभा लग रही है। इन श्वेत तथा, जल न रहने से हलके बिखरे पड़े बादलों के टुकड़ों से व्याप्त तथा नाना प्रकार के शुक सारस आदि उड़ते पक्षियों से सजे आकाश को देखो यह शरद् की स्वच्छ जल वाहिनी नदी, पर्वत श्रृंग को चारों ओर से घेरकर बहती दो गण्ड शैलों के बीच पतली धार में निकलती हुई, तुम्हारे विसंकट दोनों स्तनों के बीच

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 12

2 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 22

लटकती एक लरी मुक्तामाल का अनुकरण कर रही है । क्यारियों से सजी, कहीं पके शस्त्रों से पीली कही कास कुसुमों से उज्ज्वल, कहीं हरी घास से हरी भरी तथा किसी भाग में घनी लता श्रेणी से नीली कहीं रंगे बिरंगे पुष्पादि से चित्रवर्ण वाली कही जपा पुष्पों से रक्त वर्ण वाली योगिराज महादेव की फैलाई हुई कंथरी के समान पड़ी इस भूमि को देखो[1] ।

प्रत्येक सरावरों में खिले हुए नागरूप रंग वाले लक्ष्मी के कमल रूप सजाए आसनों पर मानों शरद्ऋतु के गुणों को देखने के लिए परम शोभा का समाज निकल कर बैठा हुआ है । यह कुमुद का बन दिन में स्वर्ग राज्य में उल्लसित चन्द्र की चांदनी में उत्पन्न पृथ्वी के आनन्द रूप मनोहर चांदनी प्रकाश में अपने को प्रकाशित करने के लिए बिना भयकम्प के आशा युक्त हो सुगन्धित हो गया[2] । सेवार से आच्छादितों सरोवर में रमते नाना रंग और अवस्था वाले हंसों की माला जैसी दीख पड़ रही है[3] ।

और भी शरद ऋतु का सौन्दर्य देखिए – मेघमण्डल को हटाकर सुलभ स्वच्छता से युक्त, प्रचुर फल फूल शालि-धान्य को उत्पन्न करने वाली, जल को विमल विधायक क्रियाओं से शुद्ध कर इस शरद्ऋतु ने मेरे अघों (पाप पुंजों) को मिटाकर प्रसन्नता को सुलभ बना दिया है जिन्होंने, भाई सहित वातापी नामक असुर को पेट में पचा, मकरों सहित समुद्र का पान कर लिया तथा सूर्य के मार्ग को रोकने वाले विन्ध्याचल को स्तम्भित कर दिया उस ऐश्वर्यशाली महात्मा

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य – 7-10
2 पारिजातहरण महाकाव्य – 15, 16
3 पारिजातहरण महाकाव्य – 18

अगस्त्य के उदय में आज चारों ओर से सारी दिशाएं प्रसन्न हो उठी है[1]।

बसन्तवर्णन :

कवियों की दृष्टि बसन्त तथा शरदऋतु वर्णन में अधिक हो गई है। पारिजातहरण महाकाव्य में कवि उमापति ने बसन्त का वर्णन करके प्रकृति के सुकुमार रूप को दिखाया है। बसन्त ऋतु का प्रारम्भ कैसे होता है इसका बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन कवि ने किया है तथा बसन्त ऋतु का मानवीकरण भी किया है - बसन्त भी पृथ्वी में रमण करने के लिए भगवान् विष्णु के साथ हो गया[2]। आज ऋतुपति बसन्त पृथ्वी को जा रहा है।

बसन्त ऋतु को नवों रसों से रमणीय बताया गया है - मैं (भगवान कृष्ण) इस लोक में पृथ्वी में ऋतुराज के स्वागत के लिए पूरे लोक कीपर अधिकार करके नव रसों से रमणीय जो मानव की चेतना है उसको संचालित कर रहा हूँ[3]।

तरुलताएं, पत्ते झड़ने लगे (सुशोभित होने वाले वन के नये रस भूत में कलियां प्रादुर्भूत हो गई और नए-नए किसलयों से युक्त वन हो गए। भौंरों का मधुर वाणी के द्वारा जिस बसन्त का जन्म स्तूयमान हो रहा था और प्रिय कोयल की वचनाली द्वारा गाकर जिसको प्रसन्नता दी जा रही है। पुष्प में लगे गुच्छों से प्रमोद करता हुआ ऋतुराज बसन्त धीरे-धीरे पृथ्वी पर आ गया[4]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - 24,25
2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 20
3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 22
4 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 25

कल्पवृक्ष पारिजात भी बसन्त के आने पर अत्यन्त प्रसन्न हो गया -

कल्पवृक्ष अपनी दिव्यता से उल्लसित हो गया तथा गगन और पृथ्वी के बीच में बसन्त को देखता हुआ तारा तरु,लता,वायु, दिन,रात के द्वारा बढ़ें आनन्द वाली सारी पृथ्वी को उल्लसित करने लगा[1]। उस पारिजातहरण ने समस्त लोकों में अपने द्वारा रचे गए विशेष गुणों से समता धारण करके लोगों के मन के अधिराज्य में कामदेव को अंकृत कर दिया तथा बसन्त में उपस्थित सभी समाज (भौंरों आदि) को सम्पूर्ण सुखों से युक्त कर दिया[2]।

विभिन्न अलंकारों के माध्यम से भी बसन्त का वर्णन करके कवि ने प्रकृति के सुकुमार रूप का बड़ा ही मनोहारी चित्रण किया है तथा बसन्त का कचित्र अंकित कर दिया । रूपक के माध्यम से बसन्त का वर्णन --

"निरन्तर ध्वनि से युक्त भौंरों की पंक्तियों रूपी टंकार करती हुई प्रत्यंचाओं वाली अपने धनुष को यह पुष्प धन्वा कामदेव धारण करता हुआ सकल लोगों के मन को प्रेमपूर्ण कर रहा है तथा कोयल रूपी वीर योद्धाओं के द्वारा गाया जाता हुआ अपने उग्रभाव के प्रभाव वाला वह कामदेव लोगों के मन को राग से क्षुब्ध कर रहा है[3]।

उपमेय और उपमान का काल्पनिक अभेद रूपक कहलाता है । यहाँ प्रत्यंचा उपमान और भौंरों की पंक्तियों में काल्पनिक अभेद है तथा वीर योद्धा

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 35

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 41

3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 27

उपमान में और कोयल उपमेय काल्पनिक अभेद है अतः यहाँ रूपक अलंकार है ।

उत्प्रेक्षा के माध्यम से बसन्त का तो वर्णन बड़ा ही आकर्षक है - रसीले आम के वृक्ष में प्रकट होती हुई मंजरियों में सुन्दर मधु से युक्त मतवाले हो रहे भौरों के द्वारा मधुरता से युक्त तथा कोयलों के हरित कूजन द्वारा भी मानों कामदेव अपनी कमनीय आज्ञा को मतवाली बना रहा है[1] ।

संयोग श्रृंगार के माध्यम से कवि ने बसन्त का वर्णन करके बसन्त को चित्र रूप में अंकित कर दिया है । यहाँ मधुमास और रति के संयोग का वर्णन है -

"विकसित मदन पुष्प के अंगों में मल्लिका नाम की लता पुष्पों से युक्त होकर उसके अंक में समा गई । विकसित होती हुई आम्रलता में माधवी नाम की मदमत्त हो गई । खिलते हुए मौलसिरी के वृक्ष में मालती प्रसन्न हो रही थी । इस प्रकार जड़ और चेतन में मधुमास ने रति को धारण किया[2] । "वह कामदेव बसन्त की परिचर्या की पूर्ति के लिए सभी लोकों में सहचरण के लिए व्याप्त हो रहा था[3] ।

और भी वर्णन देखिए अव्यक्त मनोज्ञ ध्वनि से युक्त पक्षियों के समूह से युक्त शीतल सुप्रभात में मलयानिल के बहते हुए, प्रभात में अलसाई हुई लास नृत्य करते हुए चुटकियों से खिलती हुई समस्त फूलों की उत्सव की शोभा ऋतुराज बसन्त के साथ रमण कर रही है[4] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 31
2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 29
3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 30
4 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 32

इस बसन्त की तुलना किसी से नहीं हो सकती अर्थात यह अतुलनीय शोभा वाली है इसी का वर्णन कवि कर रहे हैं। समस्त संसार की गणना करने वाला यह काल [बसन्त] अपने भावों को स्वयं ने गिने हुए रूप वाला है अर्थात् अज्ञात रूप वाला है, ऋतु सम्बन्धी क्रियाओं द्वारा अपने नाना स्वरूपों को दिखाता हुआ अपने रूप को विस्तृत कर रहा है। इस बसन्त की तुलना किसी से नहीं हो सकती और यह बसन्त स्वयं मानों निदर्श है[1]।

अपने-अपने स्वभाव के अनुसार बूढ़े, युवक, कुमार सभी कामदेव की आराधना कर रहे हैं। यह बसन्त ऋतु प्रकृति द्वारा प्रतिपादित नियमों वाली है तथा इसमें किसी प्रकार का अभियोग नहीं आ सकता।

बसन्त ऋतु के आने पर सबके व्यवहार का वर्णन भी कवि ने किया है -

"रति और काम की तदात्मता को प्राप्त करके सभी स्त्री पुरुष बिना शंका के रमण करने लगे[2]।

पारिजातवृक्ष भी अपने दोहद को प्राप्त करके नाना प्रकार के अभिराम कान्ति वाली लाल, पीली, नीली फूलों वाली शोभा को प्रसन्न चित्त होकर फिर पोषने लगा। कल्पवृक्ष ने अपने से उत्पन्न दिव्य लताओं के विस्तार को आलिंगन कर लिया। दूसरे नर और नारी को भी रामण सुख प्राप्त कराता हुआ यह कल्पवृक्ष कोयल के पंचम स्वर के तेज से युक्त होकर मानो गीत गा रहा था[3]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग -33

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग -42

3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 46

कामदेव को ऋतुराज का मित्र बताया गया है - ऋतुराज के सखा कामदेव के समाज की समभिलाषा करते हुए मलयानिल ने भी लतिकाओं का चुम्बन किया[1]। कामदेव के आने पर किसी लता ने सुगन्धित द्रव्य फेंका, किसी ने पुष्प फेंका, किसी ने केशर तथा किसी ने फूलों का पराग।

"इस प्रकार यह मधुमास का मारूत विहरण करता हुआ लोगों के घर के भीतर बाहर सचिव का काम करने लगा[2]। लताओं के साथ अभिरमण प्रारम्भ करने वाले तथा सभी के परिश्रम को हरने वाले इस बसन्त ने सुगन्धित वायु को चारों दिशाओं में फैला दिया तो फिर इस बसन्त को देखकर श्रृंगार का जो स्वयं देवता है। अर्थात कृष्ण ने शरीर रहित को भी शरीर वाला बनाकर अपने शरीर से उत्पन्न करके उस प्रद्युम्न को तथा उससे भी उत्पन्न अनिरूद्ध में उसकी स्त्री रति को देखकर प्रेम से अत्यन्त विनोद के मोदन से रत वह कृष्ण क्यों न होगें ?

वासन्तिक उत्सव के द्वारा बढ़े हुए माधव कृष्ण स्वयं कामदेव हो गए अर्थात उनकी शोभा अद्वितीय हो गई। सभी लोगों ने भगवान से अनुरोध किया कि जैसी रस गोष्ठी शरद् ऋतु में अपने बाल्यकाल में रचाई थी आज मधुमास में भी वैसी ही रस गोष्ठी रचाओं[3]।

बसन्त ऋतु में पीताम्बर धारण करके कृष्ण रूक्मिणी आदि सखियों के साथ रमण करने लगें। रास शुरू होने पर मधुमास ने सभी स्थितियां अनुकूल

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 46

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 49

3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 53

बना दी । भौरों ने मधुर गुंजन किया अपने-अपने ऊँचे मीठे-मीठे स्वरों को उसी क्रम से सूर्यनाद को विहंगों ने धारण किया । चंचल पत्ते और पुष्प और झुरमुटों में स्थित वृक्ष भी उस बसन्त में कृष्ण जैसा आचरण करने लगे ।

"ऊपर उछलते हुए फेन रूपी हास वाला, जल जीवों से उत्पन्न की गई सैंकड़ों ध्वनियों से तथा जलाशय में अपनी तरंगों से नाना प्रकार के रत्न समूह को प्रकट करने वाली बीचियों के द्वारा वह जलाशय प्रसन्नता के उदय को प्रदर्शित करता हुआ अर्थात खुश होकर नाचने लगा[1] ।

तत्पश्चात भगवान कृष्ण ने अपना रास प्रारम्भ कर दिया भगवान ने वंशी बजाना शुरू कर दिया और उस बांसुरी ने मंगलाचरण का नान्दी गीत गाना शुरू कर दिया । भगवान् माला को धारण करके तथा मयूर के पूँछो से शिर को विभूषित करके त्रिभंगी की मुद्रा में खड़े होकर वंशी बजाने लगे और भगवान् कृष्ण ने काम को प्रसन्न करने वाली सभी चेष्टाओं को प्रारम्भ कर दिया ।

लोक जीवन की झांकी

साहित्य समाज का दर्पण है । इस बहुचर्चित उक्ति के अनुसार कवि के काव्य में उसके युग की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जन जीवन की झांकी प्रतिबिम्बित होती है । संस्कृत काव्य की यह दूसरी विशेषता है कि जन साधारण के मनोभावों का चित्रण बड़ी ही कमनीय शैली में प्रस्तुत करता है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 57

कवि अपने सामयिक समाज से प्रभावित रहता है । कुशल कवि जिस अतीत के इतिवृत्त को अपने काव्य का कथानक बनाता है, उसी अतीत की अन्य स्थितियाँ भी उपस्थित करने का प्रयास करता किन्तु यदि सूक्ष्मेक्षिकया देखा जाय तो वहाँ भी उसका वर्तमान समाज झाँकता दिखायी पड़ता है, क्योंकि उसकी अतीत या भविष्य से सम्बद्ध सारी कल्पनाओं का आधार वर्तमान ही रहता है । कवि की कल्पना वर्तमान की नींव पर अतीत तथा भविष्य के प्रासाद बनाया करती है अतएव किसी काव्य की समालोचना करते समय उसमें चित्रित तत्कालीन समाज का भी विवेचन किया जाता है । कवि "लोक" अवेक्षण द्वारा भी काव्य निपुणता प्राप्त करता है ।

मानव के अन्तकरण के चतुर्दिक राग द्वेष, हर्ष-विषाद क्रोध, शोक, उत्साह-अवसाद आदि जितने भी भाव है उनका चित्रण संस्कृत कवियों ने अपनी ललित लेखनी के द्वारा इतनी स्वाभाविकता से किया है कि पाठक तद्भाव सरिता में उन्मग्न निमग्न होता हुआ अनुभव करता है यद्यपि संस्कृत कवियों का जीवन राजाओं, महाराजाओं के वैभव सम्पन्न दरबारों में बीतता था तथापि वे जनसामान्य के जीवन से पूर्ण परिचित होते थे एवं अपने काव्यों में उनकी नाना मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति करके उनके प्रति अपनी सहानुभूति को प्रकट करते थे ।

इस परिपेक्ष्य में यह मानना असंगत न होगा कि मानव के विभिन्न मनोगत भावों को अभिव्यक्त करने में संस्कृत काव्य वाड्मय पूर्ण रूपेण सफल रहा है। चाहे वह दृश्य काव्य हो या श्रव्य, पर जहाँ तक तत्कालिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक झांकी प्रस्तुत करने की बात है उसमें श्रव्य काव्य विशेष रूप से उल्लेख-नीय है । कारण स्पष्ट है दृश्य काव्यों में कवि जन रस परिपाक के प्रति पूर्णरूपेण से सजा दिखाई पड़ता है । अतः रसवत्ता की आधन्त रक्षा करने के लिये उनमें कथनोपकथन का विशेष महत्त्व होता है ।

कवि ने अपने काल विशेष की सूचना काव्य के दशम सर्ग में दी है । दशम सर्ग में कवि ने शरद ऋतु का वर्णन किया है । शरद वर्णन में लक्षणा से कवि ने अपने काल विशेष की सूचना दी है - यह कुमुद का वन दिन में (ध्वनि से कुमुद दुखित का दल) स्वर्ग राज्य में उल्लसित चन्द्र की चांदनी में (किंच निजी राज्य से उत्पन्न पृथ्वी के आनन्द रूपमनोहर चांदनी प्रकाश में (सर) के भीतर (किंच लक्षणा से देश के भीतर) अपने को प्रकाशित (प्रभाव युक्त) करने के लिये बिना भयकम्प के आशा युक्त हो सुगन्धित तथा बद्ध सम्पुटित रहकर अन्य पक्ष में (शोभन गांधी रूप नेता से बद्ध उनके अनुरोध से गृहीत) अथवा बन्दी खाने में पड़ा सत्याग्रह रूप तप कर रहा है । (लाक्षणिक ध्वनि के द्वारा गांधी के नेतृत्व में चलते स्वराज्य सेवा के लिये सत्याग्रह की स्मृति दिलाकर अपने काल विशेष की सूचना कवि ने दी है)[1]

कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाव्य 19 वीं शताब्दी में लिखा गया है । 1921 ई0 के असहयोग आन्दोलन के बाद यह काव्य लिखा गया है । उस समय देश के युद्ध और आन्दोलन बढ़ रहे थे । अंग्रेजों के अत्याचार हिन्दुओं पर बढ़ रहे थे । प्रतिदिन हजारों की संख्या में लोग मारे जा रहे थे । सम्पूर्ण समाज अंग्रेजों के अत्याचार से विक्षुब्ध था । लोगों का ध्यान उस समय ईश्वर की ओर से हटा हुआ था । उस समय कवि ने लोगों का ध्यान ईश्वर की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया कवि ने जितने काव्य लिखे सभी में ईश्वर की स्तुति की गई । प्रस्तुत पारिजातहरण महाकाव्य में भगवान कृष्ण को अराध्य देव मानकर उनकी स्तुति की गई है । सर्वथा स्वाधीन और सम्पूर्ण जगत् के नियन्ता सर्वेश्वर भगवान् कृष्ण ने मनु सम्बन्धिनी समस्त

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 16

सम्पत्ति को उपाधि रूप में धारण कर लिया अर्थात कपट मानुष होकर भूतल को कंस आदि दानवों के विनाश द्वारा स्वस्थ कर दिया[1]।

उस समय कवि ने शिवास्तुति एक और काव्य लिखा, जिसमें शिव की स्तुति की गई है। शिवास्तुति लिखने पर वहां के राजा ने कवि को कविपति की पदवी से विभूषित किया तथा पारिजातहरण महाकाव्य लिखने पर विशेष रूप से सम्मानित किया। पारिजातहरण महाकाव्य जगत की पवित्रता के लिये तथा लोगों के मानस के विनोद के लिये पारिजातहरण काव्य लिखा गया। ईश्वर में ध्यान लगाने से मन की शान्ति हो सकती थी, अतः हरिवंश पुराण के पंचम सर्ग में नारद के मुख से भगवान कृष्ण की स्तुति का वर्णन निम्न है :-

हे हरे! आपके जिस प्रभाव को मेरे पिता पितामाह ब्रह्मा भी नहीं जान पाते ऐसे आपके विषय में यह मेरी पूर्वोक्त गुणानुवादात्मक स्तुति रूप उक्ति भी असमर्थ होने के कारण अनुचित है, क्या! पांख निकल आने पर भी चींटी कभी चन्द्रविम्ब को चूमती है[2]।

फिर भी तुम्हारे महत्व को (नाम गुणादि वर्णन) न कहती हुई बाणी की उत्पत्ति की व्यर्थ है, वह वाणी पापिनी है। किंच अगम्य विषय में वाणी का प्रसाद भी दूषित ही है। ऐसी दुःखस्थिति में हे भगवन्! आओ अब यहां तुम्हीं प्रमाण हो जो उचित समझो[3] काव्य के चतुर्थ सर्ग में कवि ने गृहस्थ धर्म का निरूपण किया है :-

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 1

2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग -

3 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग

गृह शब्द का अर्थ गृहीत होने वाला यह ग्रहण करने वाला होता है जिसे सज्जन अनुगृहीत करते हैं या अपनी सेवा सत्कारादि गुणों से जो स्वयं महात्माओं को अपनी ओर खींच लेता है । वही वास्तव में गृह है । आपके आ जाने से वैसा ही गृह यह हो गया है । आपके रहने के स्थान को गृह नहीं कहते[1] । गृहस्थ से इतर कुछ भी अपेक्षा जिसे है वह अतिथिमात्र भिक्षु है । उनका कोष आश्रम गृहस्थी की रक्षा करने वाले हम लोगों को महात्माओं को शुभ दर्शन इस अधिकार को सौंपने वाले दैव का दिया पुरस्कार है[2] ।

जो मनुष्य इस गृहस्थाश्रम के सभी सुख दूसरों को न भुगाकर अपने भोगते हैं वे इस लोकोपकारिणी संस्था के सर्वस्व हड़प जाने वाले महान् पापी है[3] ।

काव्य के दशम सर्ग में कवि ने वाणी की प्रशंसा में कहा है कि आमोदिनी किंच सुन्दर गन्ध वाली सरस भावों के विकास से रमणीय अथवा सरस स्वभाव तथा दीप्ति से मनोहर, सन्दर्भ शुद्धि, पद-विन्यास की स्वच्छतापक्ष में सम्यक् ग्रथन की सुरीति तथा पूर्णरूपेण पुष्ट माधुर्यादि गुण, सूत्र से युक्त, प्रसाद वाली, भलीभांति अलंकृत तथा संस्कार से शोभित माला के समान आपकी यह वाणी हृदय में रख लेने से किसकी श्रीको नहीं बढ़ा देगी[4] ।

बिना सन्देह के प्राप्त सिद्धि द्वारा शुभ लाभ वाली तपस्विनी के समान आपकी वाणी हमारे पुण्य से ही हमें अनुगृहीत कर रही है[5] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग

2 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग

3 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग

4 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 57

5 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 59

काव्य के अट्ठारहवें सर्ग में युद्ध की शान्ति के लिये शिव भगवान की स्तुति की गई है -

नर रूपी श्रीकृष्ण ने सदाशिव को बहुत देर तक ध्यान किया । बाण से बलपूर्वक पृथ्वी तल को भेदकर पाताल गंगा के जल को निकालकर मालूर फल में शंकर को स्थापित करके उनकी अर्चना की :-

"प्रतिमील्य लोचनपयोजयोर्द्वयं हृदि हृष्टसाम्बचरणाब्जयोर्न्यधात् ।
अथ तुष्टुवेऽनुरति गद्गदाक्षरं भगवन् । प्रसीद विषमे सुसिद्धये ।।[1]

काव्य के बारहवें सर्ग में गरूड़ भगवान कृष्ण की स्तुति करता है :-

हे परमपूज्य ! यह मेरा शरीर और मेरा मन तुम्हारे चरण कमलों से क्षण भर के लिये भी अलग नहीं है । हे निर्विकार ! तुम्हारी मानव के रूप में जो पद और चेष्टाएं है वह हम लोगों को प्रसन्नता देने वाली है । पवित्र और अनिर्मल होने पर भी समुद्र से अलग शरत्सरोवर सरोज सहित सुशोभित होता है -

"पृथगेव ते परिचयो मुदे सतांप्रभुता तव प्रियतयाऽतिरोचते ।
स्वजनावनव्रत ! भवत्यधीश्वरे परतन्त्रतैव खलु नः स्वतन्त्रता ।।[2]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टादश - 5

2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग -53

अलंकार सौन्दर्य

काव्य सौन्दर्य के दो पक्ष स्वीकृत किये जाते हैं - बाह्य और आन्तरिक ।

बाह्य काव्य सौन्दर्य के अन्तर्गत अनुप्रास, वक्रोक्ति, श्लेष और यमक नामक शब्दालंकारों, पुनरूक्तवदाभास नामक उभयालंकार का चमत्कार आता है । उपमा, रूपक, दीपक आदि अर्थालंकार भी निस्संदेह बाह्य सौन्दर्य से सम्बद्ध है किन्तु उनमें आन्तरिक सौन्दर्य भी कम नहीं है । अर्थालंकारों का सौन्दर्य रसध्वनिगत सौन्दर्य का परिवर्द्धक है और केवल इसी स्थिति में ही वे मान्य है।[1]

काव्यशास्त्र में अलंकार की बहुत चर्चा हुई है । सच बात तो यह है कि अलंकार के प्रयोग से ही काव्य मंडित होता है ।

"अलंकरोतीति अलंकार: अर्थात वह पदार्थ जो किसी की शोभा बढ़ाये, किसी को अलंकृत करें । लोक में हम उन कटक-कुण्डलादि आभूषणों को जो शरीर की शोभा बढ़ाते हैं, अलंकार कहते हैं । ठीक उसी प्रकार काव्य के उन उपकरणों को जो कविता-कामिनी की श्रीवृद्धि करते हैं, अलंकार कहा जाता है[2]।

---

1 (क) रसभावादितात्पर्यमाश्रित्य विनिवेशनम् ।
अलंकृतीनां सर्वासामलंकारत्व साधनम् ।।
-हिन्दी ध्वन्यालोक पृष्ठ-112

(ख) "ध्वन्यात्मभूतश्रृंगारे समीक्ष्य विनिवेशत: ।
रूपकादिरलंकार वर्ग एतियथार्थताम् ।।
-ध्वन्यालोक-2/17

2 "काव्य शोभाकारान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते
-काव्यादर्श - 2.1

"अलंकारवादी आचार्यों ने काव्य में अलंकार को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है । अनेक अनुसार गुणालंकार से रहित कविता विधवा के समान है[1] । सुन्दर से सुन्दर रमणी का वदन बिना अलंकारों के शोभा नहीं पाता, ठीक उसी प्रकार सुन्दर से सुन्दर काव्य भी अलंकारों के अभाव में हीन दिखाई पड़ता है[2] । इन आचार्यों ने उपमादि अलंकारों की भाँति रस को भी अलंकार मान लिया । भामह, दण्डी तथा उद्भट ने रसवत् प्रेयस, ऊर्जस्विनी तथा समाहित अलंकारों के नाम से रसभावादि अलंकार्य को अलंकार के अन्तर्भूत कर लिया[3] । परन्तु काव्यशास्त्र के इतिहास में ध्वनि की अवतारणा के साथ रस को उचित मान्यता मिली एवं काव्य के आत्मतत्त्व के रूप में उसकी प्रतिष्ठा हुई[4] । रस एवं ध्वनिवादी आचार्यों के मत में अलंकार्य { रस तत्त्व } का जो अलंकरण करे वही अलंकार शब्द की मीमांसा करने पर उपर्युक्त धारणा की ही पुष्टि होती है।[5]

---

1 "गुणालंकार रहिता विधवैव सरस्वती-डा0भोलाशंकर व्यास द्वारा कुवलयानन्द की भूमिका में उद्धृत पृ0 62

2 न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्"भामह काव्यालंकार, 1-113

3 {क} भामह काव्यालंकार 3, 1, 5, 6, 7, 10
{ख} काव्यादर्श - 275 - 299

4 {क} अभिनव गुप्त ध्वन्यालोक लोचन - पृ0 85
{ख} महिमभट्ट- हिन्दी व्यक्ति विवेक - पृ0 111
{ग} मम्मट - काव्य प्रकाश 8, 66
{घ} विश्वनाथ-साहित्यदर्पण - 1-4

5 {क} अंगाश्रितास्त्वलंकारा मन्त व्याकटकादिवत्"
-ध्वन्यालोक - 2-6

{ख} उपकुर्वन्ति तं सन्त येऽङ्गद्वारेण जातुचित्
हारादिवदलङ्कारास्ते नुप्रासोपमदयः ।।
- काव्य प्रकाश - 8, 67

" अलंकरोत्यलंकार: अथवा अलंकृयतेऽनेनेत्यलंकार, अथवा अलंकरणमलंकार: ।"[1]

अलंकार की प्रचलित इन तीनों व्युत्पत्तियों में से किसी को भी मानने पर अन्त में यही निर्गलितार्थ निकलता है कि काव्य में शोभाधायक तत्त्व अलंकार कहलाता है । इस प्रकार अलंकार किसी भी दशा में काव्य का प्रधान तत्त्व नहीं है । प्रधानभूत अलंकार्य अथवा धर्मी रस का शोभाधायक होने के कारण वह काव्य का गौणतत्त्व है । जिस प्रकार लोक में लावण्यवती ललना कटकादि भूषणों से हीन होने पर भी सहृदयों के चित्त को आकृष्ट करने में समर्थ होती है, उसी प्रकार अनुप्रासोपमादि अलंकारों से रहित होने पर भी श्रृंगारादि रसों से युक्त काव्य सामाजिकों को आनन्दित करने वाला होता है । परन्तु काव्यात्मभूत रस के अभाव में प्रयुक्त अलंकार काव्य में मृतयुवती के अंगों पर प्रयुक्त कटकादि के तुल्य निरर्थक प्रतीत होते हैं[2] । काव्य में प्रयुक्त ऐसे अलंकार वैरस्य के हेतु होते हैं[3] । अतएव रस अथवा अलंकार्य के प्रति उपेक्षावान एवं अलंकारसाधना में तत्पर कवि का कार्य काव्य संज्ञा का मापन नहीं बन सकता । वह जीवित भूत रस के अभाव में काव्य का चित्रमात्र कहा जाएगा[4] ।

---

1 क्वचित्तु स्फुटालंकार विरहेऽपि न काव्यत्वहानि:
काव्य प्रकाश, पृ0 ।।

2 तथाहि अचेतनं शव शरीरं कुण्डलाद्युपेतमपि न, भाति, अलंकार्यस्याभावात्।"
-ध्वन्यालोक लोचन - पृ0 419

3 श्लेषालंकारमापोऽपि रसानिष्यन्दकर्कशा: ।
दुर्भगा इव कामिन्य: प्रीणन्ति न मनोगिर: - सा0 दर्पण ।.7

4 रसभावादि विषय विवक्षा विरहेसति ।
अलंकार निबन्धो य: स चित्र विषयोमत: ।
- ध्वन्योलोक - पृ0 3।।

एवं मम्मट द्वारा निर्दिष्ट अधम काव्य § शब्द-चित्र, अर्थचित्र § के अन्तर्गत गणना की जायगी ।

आचार्य वामन ने कहा है कि बिना अलंकार के काव्य की प्रतिष्ठा ही नहीं है " काव्य ग्राह्यमलंकरात् " और सौन्दर्य ही अलंकार है -0"सौन्दर्य - मलंकार: ।"[1] सौन्दर्य का अर्थ चमत्कार या सूक्ति का सरसता है चन्द्रालोककार "शब्दार्थयो: प्रसिद्धया वा कवे: प्रौढिवशेन वा ।
हारादिवदलंकार: सन्निवेशो मनोहार: ।।"[2]

"अलंकार अर्थ की भागिमा है, और काव्य या सूक्ति का समस्त चमत्कार अथवा आनन्द इसी अर्थ भंगिमा से उत्पन्न होता है । जब अलंकार के रूप में इस अर्थ भंगिमा की दिशा निर्धारित हो गई तब काव्य की शास्त्रीय चर्चा में इन अलंकारों के प्रति अबाध जिज्ञासा फूट पड़ी । न तो अर्थ भंगिमा का अंत हो सकता था और न अलंकारों की संख्या निर्धारित की जा सकती थी । इसलिए दण्डी ने कहा है —

आज भी अलंकार प्रकारों की नई नई उद्भावनायें प्रस्तुत की जा सकती हैं । भला कौन इन अलंकारों का समग्र रूप से विवेचन कर सकता है[3] ।

आचार्य मम्मट ने काव्य में अलंकारों की क्रिया स्थिति का निरूपण किया है - प्रथम प्रकार की स्थिति में अलंकार अंगरस के अंगभूत वाच्य एवं वाचक के अलंकरण के माध्यम से अन्तत: रस का उपकार करते हैं[4] । दूसरी स्थिति में

---

1 काव्यालंकार सूत्रवृत्ति - 1/1/2

2 चन्द्रालोक - 51

3 आचार्य दण्डी एवं संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास दर्शन - पृ0 87

4 काव्य प्रकाश - पृष्ठ 286

विद्यमान होने पर भी रस का उपकार नहीं करते[1]। तीसरी स्थिति में रस के अभाव में भी उनकी सत्ता रहती है[2]। इनमें से प्रथम प्रकार की स्थिति सर्वोत्कृष्ट है क्योंकि इसी दशा में अलंकारों की अलंकारता है[3]।

अलंकार प्रयोग के औचित्य के प्रसंग में ध्वनिकार का कथन है कि रसादि की अभिव्यंजना के समय रस से आक्षिप्त होकर यदि बिना किसी पृथक् प्रयत्न के अलंकार का प्रयोग स्वतः हो जाय तो वही अलंकार है[4]। क्योंकि इस प्रकार का ही अलंकार मुख्य रूप से रस का अंग होता है। जो अलंकार रस बन्धन में तत्पर कवि को उस रस बन्धना व्यवसयावासना का अतिक्रमण करके अलंकार निष्पादनार्थ दूसरे प्रयत्न का आश्रय लेने पर ही बनता है, वह रस का अंग नहीं होता[5]। ध्वनिकार के कथनों का आशय डा० गणेश त्रयम्बक देशपाण्डे के शब्दों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

"इसका अर्थ यह है कि काव्य रचना के समय रसाभिव्यक्ति और अलंकारों की सृष्टि दोनों कवि के एक ही प्रयास से सिद्ध होना चाहिए तभी वह अलंकार उस रस से अंतरंग होकर व्यंजनक्षम हो सकता है। यदि ऐसा न हुआ और अलंकार के लिए कवि को यदि पृथक् प्रयत्न करना आवश्यक होगा तब कवि

---

1 क्वचित्तु सन्तमपि नोपकुर्वन्ति"

- काव्यप्रकाश पृ0 286

2 यत्र तु नास्ति रसस्तत्रोक्तिव चित्र्यमात्र पर्यवसायिनः

-काव्य प्रकाश पृ0 286

3 रसभावादितात्पर्यमाश्रित्य विनिवेशनम् ।
अलंकृतीनां सर्वासामलंकारत्वसाधनम् - ध्वन्यालोक पृ0 88

4 ध्वन्यालोक - 2-16

5 ध्वन्यालोक - पृ0 105-106

का अवधान रस में नहीं हो पाता और वह केवल अलंकारों की रचना में लगा रहता है । इस अवस्था में रचा अलंकार रस से अन्तरंग सम्बन्ध नहीं रखता, बाह्य हो जाता है यह अलंकार रस व्यंजक तो रहता ही नहीं, प्रत्युत् रस का बाधक होता है । किसी समय यदि वह रस का बाधक न भी हुआ तो रस में गौणत्व रूप लाता है ।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन का निर्गलितार्थ यह हुआ कि काव्य में चाहे रसाभिव्यक्ति का स्थल हो या प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण हो अथवा पशुपक्षियों या बालक-बालिकाओं का स्वाभाविक वर्णन ही अलंकार कवि का साध्य नहीं बनना चाहिए और यदि आत्मभूत रस के परिपोष के लिए अलंकार की योजना की जाए तो अलंकार वास्तव में चारूत्व हेतु बन जाते हैं[2] ।

अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग ही काव्य में चमत्कारधायक होता है प्रयोग के प्रति बहुत अभिनिवेश काव्य का विघातक बन जाता है । आचार्य कुन्तक का कहना है कि पदार्थ के स्वाभाविक प्रस्तुतीकरण में उपमा आदि वाच्य अलंकारों का भूयसा प्रयोग उचित नहीं होता, उसमें सौन्दर्य में मलिनता आने की सम्भावना रहती है[3] ।

यह सत्य है कि अलंकार ही कवि का विधेय नहीं होता । उसे जिस अर्थ को कहना है, उसमें स्वाभाविक रूप से अलंकार का जितना सन्निवेश हो सके, वही उचित होता है और उससे ही काव्य का चमत्कार द्विगुणित होता है ।

---

1 भारतीय साहित्य शास्त्र - पृ0 366

2 ध्वन्यालोक - 2-17

3 वक्रोक्ति जीवित - 3, 1

शब्दालंकारों में शब्द परिवृत्य सहत्व होने के कारण कवि को शब्दों के बन्धन में रहना पड़ता है किन्तु अर्थालंकारों में कवि रसानुकूल अलंकार के प्रयोग के लिए शब्दों के व्यामोह में नहीं फंसता । कवियों को अर्थालंकारों में उपमा[1] सर्वाधिक प्रिय है । सभी आलंकारिक अर्थालंकारों के निरूपण का प्रारम्भ उपमा से ही करते जा रहे हैं । इसका कारण है कि उपमा का अनेकानेक अर्थालंकारों में मूल रूप से होना और काव्य-सौन्दर्य में विशेष रूप से सहायक होना । अलंकार सर्वस्वकार आचार्य रूय्यक ने इसीलिए कहा है कि -- उपमेवानेक प्रकार वैचित्र्येणा- नेकालकांर बीजभूता[2] । उपमा की साधना कवि की समदृष्टि साधना है और इस साधना में जिसकी सिद्धि होती है वह है सौन्दर्य[3] ।

अप्पयदीक्षित ने अपनी चित्रमीमांसा में यहाँ तक कहा है कि उपमा ही वह नर्तकी है जो नाना प्रकार की अलंकार भूमिका में काव्यमंच पर अवतीर्ण होकर काव्य रसज्ञों को आह्लादित करती रहती है[4] ।

कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरणमहाकाव्यको देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने प्रायः सभी प्रचलित अलंकारों का प्रयोग किया है । परन्तु अलंकारों का उतना अधिक महत्व नहीं दिया गया है और साथ ही अलंकारों के भेद- प्रभेद के भी वर्णन का प्रयोग नहीं किया है ।

---

1 साधर्म्यमुपमा भेदे - काव्य प्रकाश 10-7

2 काव्य प्रकाश -डा0सत्यव्रत सिंह पृ0 336

3 काव्य प्रकाश - डा0 सत्यव्रत सिंह पृ0 336

4 उपमैका शैलूषी सम्प्राप्ता चित्र भूमिका भेदान् । रंजयति काव्यरंगे नृत्यन्ती तद्विदाचेतः ॥"

- चित्र मीमांसा पृ0 41 (1965 ई0)

अनुप्रास – पारिजातहरणमहाकाव्य में कहीं – कहीं अनुप्रास का प्रयोग मिलता है । वर्णों अर्थात व्यजंनों का जो सादृश्य है उसे अनुप्रास कहते हैं[1] । अनुप्रास का शब्दार्थ है रसादिमिरनुगतः प्रकृष्टआसो न्यासः[2] अर्थात इस प्रकार का शब्द चयन जिसके सदृश व्यंजनों का रस भावादि के अनुकूल ऐसा अव्यवहित विन्यास जो मनोरंजक लगे आशय यह है कि रस भावादि के अनुकूल वर्णों के प्रकृष्टन्यास स्थापन को अनुप्रास कहते है {अनु प्र + आस} पारिजातहरण महाकाव्य में कहीं – कहीं अनुप्रास का प्रयोग मिलता है —

पदे पदे स्यात्तु मिथो मनोहरौ सदा रमेते सरसी सरोवरौ ।"[3]

"परिस्फुरन्मीन मनोहरेक्षणा क्षमे क्षमे ।
  स्रस्तदुकूलशैवला: ।"[4]

गृहे गृहे अस्या: प्रति गर्जनामहो महा –
भटानां भुजतालजध्वनि ।
प्रतिध्वनद् ग्राव गुहाकुल भवन्
दिशो दशा पूर्ध्य पराङ्मुखाति ।[5]

---

1 काव्य प्रकाश – नवम उल्लास

2 साहित्य दर्पण की वृत्ति

3 पारिजातहरण महाकाव्य प्रथम सर्ग – 19

4 पारिजातहरण महाकाव्य प्रथम सर्ग – 20

5 पारिजातहरण महाकाव्य – प्रथम सर्ग – 29
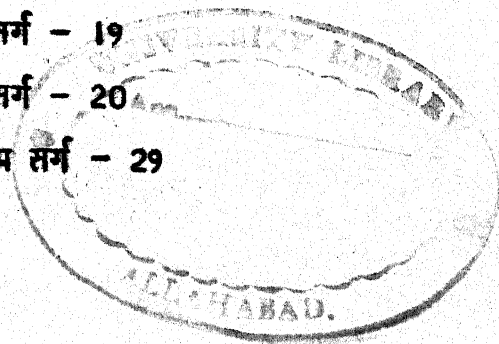
श्लेष अलंकार वहाँ होता है जहाँ एक वाक्य में अनेक अर्थ अभिहित हुआ करते हैं । " एक अर्थ के बोधक शब्दों का अनेक अर्थ हो तो वह अलंकार श्लेष है ।"[1] काव्य प्रकाश में कहा गया है श्लेष वह अलंकार है जिसमें अर्थ-भेद के कारण परस्पर भिन्न भी शब्द उच्चारण सारूप्य के कारण एक रूप प्रतीत हुआ करते हैं ।[2] श्लेष के मूल में जो बात छिपी है वह है - भिन्नार्थक शब्दों के पारस्परिक भेद की अप्रतीति, जिसका कारण है ऐसे शब्दों में, वर्णों की समान आनुपूर्वी होने से उच्चारण की समानता । आचार्य - मम्मट की श्लेष परिभाषा आचार्य - रूद्रट की श्लेष परिभाषा का अनुसरण करती है । रूद्रट ने श्लेष का ऐसा ही स्वरूप निरूपण किया है —

"वक्तुं समर्थमर्थं सुश्लिष्टाक्लिष्टविविधपदसंधि ।
युगपदनेकं वाक्यं यत्र विधीयते स श्लेषः ।।

वर्ण-पद-लिंग-भाषा-प्रकृति-प्रत्यय-विभक्ति
अत्रायं मतिमद्भिर्विधीयमानोऽष्टधा भवति ।।"[3]

श्लेष कहते हैं परस्पर भिन्न-भिन्न अर्थ रखने वाले भी शब्दों में ऐकरूप्य अभेद की प्रतीति को जिसका "अर्थ भेदेन शब्द भेद : - यदि अर्थ भिन्न-भिन्न हैं तो शब्द भी भिन्न-भिन्न होंगे उद्भट-सिद्धान्त की दृष्टि से तो यह अभिप्राय है कि परस्पर भिन्न स्वरूप भी शब्द उच्चारण सारूप्य के कारण भिन्न-भिन्न न प्रतीत होकर एक से प्रतीत हुआ करें किन्तु इस दृष्टि

---

1 काव्य प्रकाश - दशम उल्लास {147}
2 काव्यप्रकाश - नवम उल्लास - 84
3 काव्यालंकार - 4. 1, 2

से [जो कि वास्तविक दृष्टि है] कि काव्यमार्ग में स्वरादिभेद की कोई विवक्षा नहीं [क्योंकि ऐसा होने से श्लेष-सौन्दर्य ही नष्ट हो जाएगा] इसका जो अभिप्राय है वह है भिन्नार्थक भी शब्दों में, एक प्रकार के उच्चारण के कारण उनके स्वरूप भेद के तिरोहित हो जाने का ।

पारिजातहरणमहाकाव्य के कुछ श्लोकों को कवि उमापति ने श्लेषबद्ध किया है ।

निम्न दो श्लोकों में युग्मक से कवि ने शरदऋतु और सत्यभामा के श्लेष का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है --

हे प्रिये । इस समय "सम्प्रत्यपासितघनान्धकृतिः प्रसन्ना" -- कोप रूप तम को हटाकर प्रसन्न हुई, घने अन्धकार को हटाकर निर्मल हुई, "स्वच्छीकृताऽखिलजलाशय जीवना च दुर्वृत्तिपंकपरिशोषणसत्पथोद्यत्" - जड़ीभूत अभिप्रायों को स्वच्छ कर दिखाती हुई दुःखावस्था रूप पंक को सुखा देने से जिसके मार्ग शोभन हो गए हैं, बुरे ढंग का पंक सुखा देने से जिसके मार्ग शोभन हो गए हैं, "पद्मानना सरससारसरावरम्या" - खिलते कमल के समान मुखवाली सारसहंसों के समान मधुर भाषिणी, ऐसी खिलते कमल रूप मुख वाली सारसों हंसों की बोल से रमणीय, "आशासुविस्फुरितवृत्तिरितस्त्वदर्थे यातुं शरद् त्वमिव मां प्रगुणीकरोति" -- आशाओं में विस्फुरण लिए तुम इस शरदऋतु के समान हमें आक्रमण [चढ़ाई] के लिए प्रेरित कर रही हो, दिशाओं में स्फुरित सत्ता वाली तुम जैसी यह शरद ऋतु तुम्हारे निमित्त यहाँ से हमें विजययात्रा के लिए प्रेरित कर रही है ।"[1]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - नवमसर्ग - 51

कवि श्लेष के द्वारा वाग्देवता की तुलना शरदृतु से कर रहे हैं --

"श्वेताम्बरा" - श्वेत अम्बर वाली, श्वेत वस्त्र से सजी, "रसित हंसगतिप्रसन्ना" -- आरसित बोलते हुए हंसों की गति संचार से प्रसन्न, आलसित मन्द या सर्वथा शोभमान हंस{निजवाहन} की गति से प्रसन्न, "श्रृंगारहार कुसुमोत्कर काम्यकान्तिः" -- श्रृंगारहार के पुष्प समूह से मनोहर छटा वाली, श्रृंगारार्थ हार के फूलों से मनोहर कान्ति वाली, उल्लासित - स्वसमयाश्रित बन्धुजीवा" -- उल्लास से विकसित कर रखा है अपने समय के आश्रित बन्धुजीव दुपहरी के फूल जिसने आनन्दित कर दिया है अपने सिद्धान्त के आश्रित बन्धुओं के जीवों को जिसने ऐसी वाग्देवता{सरस्वती देवी} के समान हमारे आनन्दार्थ शरदृतु उदित हो रही है।"[1]

उपमा --
====

यह सभी साम्यमूलक अर्थालंकारों का बीजरूप है। जैसे एक ही नारी भिन्न-भिन्न परिधान पहनकर रंगमंच पर उपस्थित होती रहती है और सहृदय दर्शकों का मनोरंजन करती है वैसे उपमा भी नाना अलंकारों का रूप धारण करके सहृदयों के चित्त को चमत्कृत करती है[2]।

"एक वाक्य में दो पदार्थों के वैधर्म्यरहित, वाच्य सादृश्य को उपमा कहते हैं।"[3]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 12

2 उपमैका शैलूषी संप्राप्ता चित्र भूमिका भेदान्।
रञ्जयति काव्यरंगे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः ।।"
-चित्रमीमांसा

3 "साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमाद्वयोः"-"साहित्यदर्पण" में उपमा की परिभाषा

रूपकादि अलंकारों में भी उपमान और उपमेय में साम्य विवक्षित है किन्तु वह साम्य व्यंग्य होता है । उपमा में साम्य वाच्य होता है । व्यतिरेक अलंकार में वैधर्म्य भी कह दिया जाता है किन्तु उपमा में वैधर्म्य नहीं कहा जाता है । उपमेयोपमा में दो वाक्य होते हैं किन्तु उपमा में एक ही वाक्य होता है । अनन्वय अलंकार में एक ही पदार्थ का सादृश्य निरूपित रहता है किन्तु उपमा में दो पदार्थों का परस्पर साम्य होता है ।

सभी आलंकारिक अर्थालंकारों के निरूपण का प्रारम्भ "उपमा" निरूपण से ही करते आ रहे हैं । इसका कारण उपमा का अनेकानेक अर्थालंकारों में मूलरूप से होना और काव्य सौन्दर्य में विशेषरूप सहायता पहुँचाना । "अलंकार - सर्वस्वकार" ने इसीलिए कहा है "उपमैवानेकप्रकार वैचित्र्येणानेकालंकार बीजभूता ।"

उपमा की साधना कवि की समदृष्टि साधना है और इस साधना में जिसकी सिद्धि होती है वह है "सौन्दर्य" उपमा का यह महारहस्य है ।

"साधर्म्य अथवा समानधर्मता रूप सम्बन्ध कार्यकारण आदि में नहीं अपितु "उपमान" और "उपमेय" में ही हो सकता है और इसलिए उन्हीं दोनों अर्थात् उपमान और उपमेय का ही जो समान धर्म से सम्बन्ध है उसे "उपमा" कहते हैं[1] । उपमालंकार के चार उपादान होते हैं -- उपमेय, उपमान, साधारणधर्म तथा उपमावाचक । शास्त्रीय शैली में इसी बात को इस प्रकार कहा गया है -- " उप समीपेमीयते परिच्छिद्यते (उपमानेन कर्त्रा उपमेयं कर्म) अनया इति उपमा ।

---

1 काव्य प्रकाश - दशम उल्लास - 125

पारिजातहरण महाकाव्य में उपमा का सौन्दर्य देखिए —

" पुरीह सूत्रादिविशेषसृतिमद्धिया विशेषैर्ननु शाब्दिका यथा ।
प्रकल्पयन्ति प्रकला: पटादिकाननेकरूपानपि कारवोऽनिशम् ।।[1]

प्रस्तुत श्लोक में उत्कृष्ट कलामर्मज्ञ शिल्पीगण उपमेय तथा व्याकरण के विद्वान उपमान तथा "प्रकल्पयन्ति" साधारण धर्म तथा "यथा" वाचक शब्द है । अत: यहाँ उपमालंकार है ।

"महोन्नतेच्छत्रपृथि प्रभौ क्षितेः प्रसेव्यमाने ननु चामरैरपि ।
"गृहेऽत्र राजीव वसन्नसंशयप्रसाररीतैरपि संगृहीतरि ।।[2]

प्रस्तुत श्लोक में "भगवान कृष्ण" उपमेय है, "राजा" उपमान है, "संगृहीत" साधारण धर्म है तथा "इव" वाचक शब्द है । अत: यहाँ उपमालंकार है ।

"कनककक्ष्क चित्रकुथोच्चरन्मणिविभातडिदिन्द्रधनुश्छटा ।
घनघटेव यथौ मदवर्षिणी करिघटाऽरिघटाविघटाकृतिः ।।"[3]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 25
2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 51
3 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 10

प्रस्तुत श्लोक में "करिघटा" उपमेय है, "घनघटा" उपमान है, "ययौ" साधारण - धर्म है तथा "इव" वाचक शब्द है । प्रस्तुत श्लोक उपमा के सभी उपादानों से युक्त है ।

रूपक --

उपमेय और उपमान का जो अभेद-अभेदारोप अथवा काल्पनिक अभेद है उसे रूपक अलंकार कहा जाता है[1] ।

रूपक शब्द का अर्थ है --"रूपयति एकतां नयतीति रूपकम् " अर्थात् एकता अथवा अभेद की प्रतीति का उत्पादन । साहित्यदर्पण में रूपक की परिभाषा इस प्रकार है -- "निरपह्नव अर्थात् निषेधरहित विषय (उपमेय) में रूपित (अपहृत भेद उपमान) के आरोप को रूपक अलंकार कहते हैं ।"[2]

पाश्चात्य अलंकार - शास्त्र में रूपक भी रूपक की बड़ी महिमा गायी गई है ।

पारिजातहरण महाकाव्य के निम्न श्लोकों में रूपक अलंकार की छटा दिखाई पड़ती है --

---

1 काव्य प्रकाश दशम उल्लास - 139

2 "रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे"

- साहित्यदर्पण की परिभाषा

"परिपाण्डुचन्द्रिराननना विरलोडुव्रज भूषणा उप्यतौ ।
शिशुभानुभूतान्तरा भूशं भूगम्म विभावरी वभौ ।।"[1]

प्रस्तुत श्लोक में "मुख" उपमेय में "चन्द्रमा" उपमान का, "आभूषण" उपमेय में "नक्षत्र" उपमान का तथा "सूर्य" उपमेय में "बाल" उपमान का आरोप किया गया है, अतः यहाँ रूपक अलंकार है ।

"राधालताकलितकल्पतरोस तवाच्छ -
छायेव भिन्नकुसुमेषु धृतापरागा ।
मूर्ता छयेव विशदा हि सदाशिवस्य
कीर्णा तमोमया धिया थ ममानुरागैः।।[2]

यहाँ पर "तिरंगा प्रवाह" उपमेय में त्रिवेणी उपमान का, "राधा" उपमेय में "लता" उपमान का तथा "श्रीकृष्ण" उपमेय में "कल्पतरू" उपमान का आरोप किया गया है अतः रूपक अलंकार है ।

"पुष्पाभरा विकसितेन्दुमुखी सरोज
नेत्रा तिकाशहसिता सरसप्रसादा ।[3]

प्रस्तुत श्लोक में पुष्प उपमेय में आभूषण उपमान का, चन्द्र उपमेय में मुख उपमान का तथा सरोज उपमेय में नेत्र उपमान का काल्पनिक अभेद है अतः यहाँ रूपक अलंकार है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 22

2 "भवेत् संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना"
- साहित्य दर्पण

3 काव्य - प्रकाश - दशम उल्लास - 137

उत्प्रेक्षा --

"किसी प्रस्तुत वस्तु (उपमेय) की अप्रस्तुत वस्तु (उपमान) के रूप में संभावना ही उत्प्रेक्षा है[1]।

यह सम्भावना तभी अलंकार रूप होगी जब चमत्कारिणी होगी ।" उत्प्रेक्षा वह अलंकार है, जिसे प्रकृत (उपमेय) की उसके समान अप्रकृत (उपमान) के साथ तादात्म्य - सम्भावना कहा करते हैं ।"[2]

आचार्य भामह तथा आचार्य-उद्भट का उत्प्रेक्षा निरूपण इस प्रकार है --

"अविवक्षितसामान्या किंचिचोपमया सह ।
अतद्गुणक्रियायोगादुत्प्रेक्षाऽतिशयान्विता ।।"[3]

और उद्भट के इस उत्प्रेक्षा समीक्षण अर्थात् --

"साम्यरूपा विवक्षायां वाच्येवाद्यात्मभिः पदैः । अतद्गुण-क्रियायोगादुत्प्रेक्षाऽतिशयान्विता ।। लोकातिक्रान्तविषया भावाभावाभिमानतः । संभावनेयमुत्प्रेक्षा"[4]

पारिजातहरण महाकाव्य के निम्न श्लोकों में उत्प्रेक्षा निरूपण --

---

1 "भवेत् संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना "
-साहित्य दर्पण

2 काव्य-प्रकाश - दशम उल्लास - 137

3 काव्यालंकार - 2.90

4 काव्यालंकारसार संग्रह - 3.3.4

"तडित्वती योद्धमत्कृतायुधैरमन्द्रमंगल्यकदुन्दुभीध्वनिः ।
धृतेन्द्रचापा वलभी विशेषकैर्धनायतेऽसौ सधनाश्मवेश्मभिः ।।"[1]

प्रस्तुत श्लोक में उपमेय "गृहपंक्तियों" की उपमान "मेघों" के रूप में सम्भावना की गई है, उपमेय "दुन्दुभियों की ध्वनि की" उपमान "मेघों की गर्जना" के रूप में तथा उपमेय रंग-बिरंगे छज्जों की उपमान इन्द्र-धनुष के रूप में सम्भावना की गई है, अतः उत्प्रेक्षालंकार है ।

"गगनादधिभूमि भास्करादिव सन्त्रस्य निलेतुमागताः ।
तदुपागमशंकितारिका इव निर्यान्त्यभिसारिकाः कति ।।"[2]

इस श्लोक में उपमेय "ताराओं" की उपमान "अभिसारिकाओं" के रूप में सम्भावना की गई है अतः उत्प्रेक्षालंकार है ।

"आलोहितैश्चरणचंचुभिराच्युतांगा
व्योम्नीह विभ्रमभृतो निभृते मराला: ।
क्रोडीकृतत्रुटितविद्रुमवृन्तमंगा-
अध्यब्धि कम्बव इवाम्बुषु संचरन्ति ।।"[3]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 23

2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 19

3 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 6

प्रस्तुत श्लोक में उपमेय "लालचरण चोंच" की उपमान "मूँगे के डंठल" के रूप में तथा उपमेय एकान्त आकाश की उपमान "समुद्र" के रूप में तथा हंस उपमेय की "शंख" उपमान के रूप में सम्भावना की गई है अतः उत्प्रेक्षालंकार है ।

सन्देह --
====

"प्रकृत अर्थात् उपमेय में अन्य अर्थात् उपमान के संशय को सन्देहलंकार कहते है । यह संशय कवि की प्रतिभा द्वारा उत्थित होना चाहिए[1] अर्थात् वैचित्र्यजनक या चमत्कारोत्पादक संशय ही सन्देहालंकार कहलाता है ।

"ससन्देह अलंकार वह है जिसमें (उपमेय की उपमान के साथ एकरूपता में) एक (सादृश्यमूलक) संशय अथवा संदेह रहा करता है जो कि "भेदोक्ति" (उपमेय और उपमान में किसी वैधर्म्य के स्पष्ट कथन) और भेदानुक्ति उपमेय और उपमान में किसी वैधर्म्य के अकथन) दोनों प्रकार से सम्भव है[2] ।

पारिजातहरणमहाकाव्य के निम्न श्लोकों में सन्देह अलंकार का निरूपण किया गया है --

"रोषारूणांजनविमिश्रसिताश्रुधारां
दुष्कान्त भारतभुवः किमु वा प्रयोधे ।
श्वेतप्रभालसितभालविभासिभासं
सीमान्तसीमसुभमाभुत रागरेखाम् ।।"[3]

---

1 "सन्देहः प्रकृतेऽन्यन्स्य संशयः प्रतिभोत्थितः"
-साहित्य दर्पण

2 काव्य प्रकाश - दशम उल्लास - 138

3 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 51

क्या ! यह दुष्टों से आक्रान्त भारत भूमि की शोभा से अरूण तथा अंजन की कृष्ण कान्ति से मिली श्वेत अश्रु की धारा है अथवा श्वेत भाल स्थल की प्रभा से भासित केशपास के बीच माँग से भरी सुभग सिन्दूर रूपराग की रेखा है। ﴾अन्ततः यह कौन है इस बात का निश्चय नहीं हो पाता फलतः यह सन्देहालंकार है﴿ ।

1. तिलप्रसूनान्तधरौ कृतश्रिधन्नवीनकुन्दावलिकुड्मलाश्रि ।
   यदा चकोराविदमीयवक्त्रसुधाकरापीतसुधाकिरौ स्तः ।
   किंवा निमीर्णाग्निकणान् गिरन्तावसूत्रमुक्तावलिकल्पिनौवा ।।[1]

क्या यह तिल कुसुम के पास विहरता, नेत्र के आकार में भंवरे का जोड़ा है था यह दो चकोर हैं या निकली हुई आग की चिनगारियाँ बरसा रहे हैं अथवा बिना सूत की मोतियों की माला गूँथ रहे हैं, अन्ततः यह कौन है इसका निश्चय नहीं हो पाता फलतः यह सन्देह अलंकार है ।

भ्रान्तिमान —

" सादृश्य के कारण अन्य पदार्थ में अन्य पदार्थ में अन्य पदार्थ के निश्चयात्मक ﴾मिथ्या﴿ ज्ञान को भ्रान्तिमान अलंकार कहते हैं । यह ज्ञान भी कवि की प्रतिभा से ही उत्थित होना चाहिए ।"[2]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टम सर्ग - 45,46

2 साम्यादतस्मिंस्तदबुद्धिर्भ्रान्तिमान प्रतिभोत्थितः ।
   —साहित्य दर्पण

पारिजातहरण महाकाव्य के निम्न श्लोकों में भ्रान्तिमान् अलंकार का निरूपण किया है --

"वितायमानाम्बुशरद्घनान्तरे प्रवृष्टमुक्ताकृति विन्दुलोलुपाः
यदीयधारागृहवारियन्त्रके समाश्रयन्ते शिखिचातकादयः ।।[1]

प्रस्तुत श्लोक में मयूर आदि पक्षीगण को जलचादर अन्य पदार्थ में शरद्घन अन्य पदार्थ में मिथ्याज्ञान हो रहा है तथा मोती के आकार की बूँदों इस अन्य पदार्थ में तथा धारागृहों अन्य पदार्थ में चातक को मिथ्या ज्ञान हो रहा है । अतः सादृश्य के कारण यहाँ भ्रान्तिमान अलंकार है ।

"विदूरसम्पातिकणेषु दाड़िमप्रवीणविभ्रान्त शुकैश्च सारसैः ।
विसाववोधैराधिरमाश्रिता सदैह सन्नृत्यति वारियन्त्रिका ।"[2]

बहुत दूर से ऊँचाई से गिरने वाले जलकणों ‖अन्य पदार्थ‖ में अनार के बीच ‖अन्य पदार्थ‖ का भ्रम ‖मिथ्याज्ञान‖ होने से शुक और ऊँचे तक उठी हुई धाराओं ‖अन्य पदार्थ‖ में कमल नाल ‖अन्य पदार्थ‖ का भ्रम ‖मिथ्याज्ञान‖ होने से सारस सदा इस फौव्वारे के पास बने रहते हैं । यह भ्रम सादृश्य के कारण ही है इसलिए प्रस्तुत श्लोक में भ्रान्तिमान अलंकार है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 16

2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 17

अर्थान्तरन्यास —

"अर्थान्तरस्य प्रस्तुतेतरार्थस्य न्यासस्थापनम् इति अर्थान्तरन्यासः ।" जहाँ विशेष से सामान्य अथवा समान्य से विशेष तथा कारण से कार्य अथवा कार्य से कारण साधर्म्य के द्वारा अथवा वैधर्म्य के द्वारा समर्थित होता हो वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है । अर्थान्तरन्यास का तात्पर्य है साधर्म्य रूप समर्थन हेतु अथवा वैधर्म्यरूप समर्थन हेतु के द्वारा सामान्य का "विशेष" से समर्थन किया जाना ।

"सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा ।।"[1]

पारिजातहरण महाकाव्य के निम्न श्लोकों में अर्थान्तरन्यास का निरूपण किया गया है —

सबहुगन्धसुगन्धवहैः श्रमं
समपनुद्य हरेः प्रियतामगात् ।
व्यवहृतिः परिचाययति क्षणात्
प्रियजनान्यजनानविसंगतौ ।।"[2]

"अपने शीतल भिन्न-भिन्न गन्धवाली मनोहर वायु से श्रम को दूर कर उस पर्वत ने भगवान् के हृदय को आकर्षित कर लिया" इस विशेष बात का समागम होने पर "क्षण मात्र में प्रियजन तथा अन्य जन की पहचान व्यवहार ही करा देता है"

---

1 काव्य प्रकाश – दशम उल्लास – 165
2 पारिजातहरण महाकाव्य – तृतीय सर्ग – 40

इस सामान्य बात से साधर्म्य के द्वारा समर्थन हो रहा है, अतः प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

"ईश्वरत्वमधिगम्य विवेकों येन नाऽर्ज्यलममेन जनेन ।
किं कृतं जलधिनाऽतिभृतेन क्षारता यदि न हन्त हृता तत् ।।"[1]

"पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त करके भी जिसने विवेक का अर्जन नहीं किया ऐसे पुरुष से क्या लाभ है ? यदि समुद्र की क्षारता नहीं निकली तो वह भरा रहकर भी क्या किया ।"

प्रस्तुत श्लोक में पूर्वार्ध में एक सामान्य बात का प्रतिपादन किया है । उत्तरार्ध का वाक्यार्थ विशेष रूप है जो उस पूर्वार्द्ध के सामान्य का साधर्म्य के द्वारा समर्थन करता है । अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 66

"रस और भाव की अभिव्यक्ति"

"वाक्यं" रसात्मकं काव्यमिति"[1] रसात्मक वाक्य ही काव्य होता है। दृश्य श्रव्य काव्य में रस ही प्रधान होता है। काव्य में जो लोकोत्तर आनन्द होता है वह रस के ही कारण होता है। रस वेदों में भी अनुभव किया जाता है भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में प्रमाणित किया है - रसादाथर्वणादापि॥[2] तैत्तरीयोपनिषद् में रस की परिभाषा इस प्रकार दी गई है - "रसों वै सः। रस ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवतीति।[3]

"रस्यते आस्वाद्यते इति रसः यह रस की व्युत्पत्ति की गई हैइसका अर्थ यह है कि काव्यों में आस्वादन योग्य रस ही होता है रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया गया है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार —

"काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम्, रसादिश्चात्मा,
"गुणाः शौर्यादिवत्, दोषाः काणत्वादिवत्
ृतयोऽवयवसंस्थानवत् अलंकारः कटककुण्डलादिवत् ।।"[4]

आचार्य मम्मट के अनुसार रस की परिभाषा निम्न है - लोक में रति {प्रेम} आदि रूप भावों के ऐसे भावों के जिन्हें अन्य भावों की अपेक्षा स्थायी भाव माना जाया करता है, जो करण और कार्य और सहकारी कहे जाया करते है। वे ही जब काव्य अथवा नाटक में, कवि अथवा नाटककार द्वारा उपनिबद्ध हुआ करते है तब ये विभाव और अनुभाव और व्यभिचारिभाव कहे

---

1. साहित्य दर्पण - 1 परिच्छेद
2. भरतमुनि का नाट्यशास्त्र
3. तैत्तरीयपनिषद
4. साहित्य दर्पण - मपरिच्छेद

जाया करते है । अब जिसे रस के रूप में स्मरण किया जाया करता है वह है इन्हीं विभावों अनुभावों और व्यभिचारिभावों के द्वारा [सहृदय-हृदय में] अभिव्यक्ति वह [रत्यादिरूप] भाव जो [निरन्तर अवस्थित रहने के कारण] स्थायी भावा माना जाया करते हैं [क्योंकि लोक में रत्यादिरूप चित्र वृत्तियां न तो अभिव्यक्त होती है और न रस ही कही जाया करती है यह तो काव्य और नाट्य की कला की महिमा है कि सहृदय सामाजिक के हृदय की ये सूक्ष्म सुप्त-सदा अवस्थित इत्यादि रूप वृत्तियां उद्‌बुद्ध हुआ करती है और जब उद्‌बुद्ध हुआ करती है तो रस आनन्द रूप ही उद्‌बुद्ध हुआ करती है[1]।

आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार :-

"विभावानुभावव्यभिचारिभिरभिव्यक्तः स्थायीभावो रसः[2]

इस प्रकार काव्यानन्द का प्रधान रूप रसानुभूति है । किन्तु अलंकार वादी या चमत्कारवादी के लिए काव्यानन्द वह है जो चमत्कारजन्य होता है, जिसमें अलंकार आदि की प्रधानता होती है । आचार्यों ने काव्य रस के चार अवयव माने है ।

1. स्थायी भाव [2] विभाव [3] अनुभाव [4] संचारी भाव

मोटे तौर पर हम उन्हें दो पक्षों में बाँट सकते हैं [1] आश्रय पक्ष [2] आलम्बन पक्ष । दृश्य या श्रव्य काव्य में जिस पात्र के हृदय में रति इत्यादि कोई स्थायी भाव व्यंजित होता है वह पात्र उस भाव का आश्रय

---

1 आचार्य मम्मट का काव्य प्रकाश - चतुर्थ उल्लास - 27-28

2 काव्यानुशासन - 2-1

कहा जाता है । हृदय में उस भाव की अनुभूति के समय आश्रय की जो चेष्टाएं होती है उन्हीं को अनुभाव कहते हैं तथा स्थायीभाव में उन्मग्न-निमग्न होने वाले अन्य सहभावों को सहचारी भाव कहा जाता है । इस प्रकार आश्रय पक्ष में स्थायी भाव अनुभाव सहचारी - भाव तीनों का अन्तर्भाव हो जाता है आलम्बन पक्ष में विभाव के दोनों पहलू आलम्बन तथा उद्दीपन आ जाते है । आश्रय का स्थायी भाव जिस पात्र या वस्तु के प्रति उद्बुद्ध हुआ है वह उसका आलम्बन है तथा उस पात्र या वस्तु की अवस्था चेष्टा या अन्य परिस्थितियां जिनके कारण आश्रय में वह भाव विशेष जागृत होता है, उद्दीपन के अन्तर्गत गिनी जाती है । आलम्बन सजीव या निर्जीव दोनों प्रकार के हो सकते है । उदाहरणार्थ करूण रस का आलम्बन जिस प्रकार बाल्मीकि के आश्रम में लक्ष्मण द्वारा परित्यक्त उन्मुक्त रोदन करने वाली सती सीता हो सकती है[1] । उसी प्रकार राम के स्वर्गारोहरण के पश्चात् कुश द्वारा परित्यक्त उजड़ी अयोध्या भी हो सकता है[2] । इसमें आलम्बन सबसे प्रधान होता है । यदि आलम्बन का चित्रण सफल हो गया तो रसोद्बोध निश्चित हो जाता है ।

कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाव्य महाभारत के समान शान्त रस प्रधान काव्य है । शेष रस अंश रूप में आते हैं । पारिजातहरण महाकाव्य में स्थान - स्थान पर शान्तरस अथवा भक्ति भावना का चित्रण मिलता है । हरि के यश का गान करना ही कवि का काव्य लिखने का मुख्य उद्देश्य था । अतः उनके इस काव्य में रस का उतना अच्छा चित्रण

---

1 रघुवंश - 14 वां सर्ग

2 रघुवंश - 16 वां सर्ग

नहीं हो पाया है फिर भी जगह-जगह पर ईश्वर की भक्ति और जीवों के इस संसार में बार-बार जन्म लेने के और मरण के उदाहरण से ऐसा ज्ञात होता है कि यह काव्य शान्त रस प्रधान काव्य है । इनकी व्यंजना में विभाव, अनुभाव तथा संचारियों की पूर्ण योजना करने का प्रयत्न नहीं किया गया है । कहीं केवल आलम्बन का चित्रण है तो कहीं केवल आश्रय का कहीं केवल अनुभाव का ही उल्लेख करके भाव व्यंजना कर दी गई है इतने पर भी व्यंजना बड़ी सफल हुई है ।

किसी काव्य को पढ़ते पढ़ते उसके अनुशीलन से जो अलौकिक आनन्द की उपलब्धि होती है उसे रस कहते हैं । इसमें रतिभाव प्रधान होते हुए भी उत्साह, हास, विस्मय, जुगुप्सा, शोक क्रोध वात्सल्य आदि भावों की भी अवसरोपयुक्त मनोरम व्यंजना हुई है । महाकाव्य में प्रधान रस के अतिरिक्त अन्य रसों का भी समावेश किया जाता है । पारिजातहरण महाकाव्य का प्रधान रस तो शान्त रस है । इसके अतिरिक्त श्रृंगार, रौद्र, वीर आदि रस अंग रूप में इस काव्य में मिलते हैं । इस काव्य में पातिव्रत्य-भाव, भक्ति-भाव, वात्सल्य आदिभावों की सफल व्यंजना हुई है । इसके अतिरिक्त धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पुरुषार्थों में मोक्षरूप परम पुरुषार्थ की विशेष रूप से व्यंजना की गई है क्योंकि यह काव्य शान्त रस प्रधान काव्य है और मोक्ष रूप परम पुरुषार्थ से ही शान्त रस की प्राप्ति होती है ।

" शान्त रस "

आचार्य मम्मट के अनुसार "निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः"[1]

---

1 काव्यप्रकाश - चतुर्थ उल्लास - 44

शान्त रस का स्थायी - भाव निर्वेद है तथा उद्दीपन-विभाव संसार की असारता है । धर्म, अर्थ, काम रूप पुरुषार्थ त्रितय की प्राप्ति के सम्बन्ध से जैसे श्रृंगारादि आठ रस माने जाया करते हैं वैसे ही मोक्ष रूप परम पुरुषार्थ की प्राप्ति की दृष्टि से शान्त रूप नवम रस की भी मान्यताकाव्य और नाट्य के लिए परमावश्यक है[1] ।

तृष्णाओं का अर्थात विषयाभिलाषाओं का क्षय अर्थात सभी ओर से निवृत्त रूप निर्वेद वही सुख-स्थायी भूत उसका जो आस्वादनीयता से उत्पन्न परिपोष वही जिसका लक्षण हो वह शान्त रस होता है ।

विषयाभिलास से चारों ओर से निवृत्त हो जाना ही निर्वेद या वैराग्य कहलाता है । उस निर्वेद में एक अभूतपूर्व आनन्द आया करता है । यह निर्वेद रूप आनन्द ही शान्त रस का स्थायी भाव है, जब उसका परिपोष आस्वाद में हेतु हो जाता है तभी शान्त रस कहा जाता है । यही शान्त रस का लक्षण है सब चित्तवृत्तियों का प्रशम ही इसका स्थायी माना गया है ।

शान्त एक सामान्य प्रकार प्राकृत चित्तवृति होती है और रति इत्यादि वैकृत चित्तवृत्तियां है, यही बात भरत मुनि ने कही है - अपने अपने निमित्त को प्राप्त कर शान्त से भाव प्रवृत्त होता है फिर निमित्त के अपाय में शान्त में ही प्रलीन होता है[2] ।

---

1 अभिनव भारती - शान्त रस प्रकरण - पृष्ठ 334

2 स्वंस्वं निमित्तमासार्थ शान्ताद्भाव: प्रवतति ।
पुनर्निमितापाये तु शान्त एवं प्रलीयते ।।
भरतमुनि का नाट्यशास्त्र- षष्ठ अध्याय

शान्तरस सभी रसों के मूल में रहता है । सभी रसों की शान्तावस्था ही शान्तरस कहलाती है अतः शान्तरस का स्थायी भाव वही चित्तवृत्ति होती है जिसमें किसी अन्य प्रकार की चित्तवृत्ति की विशेषता का आविर्भाव न हुआ है ।

शान्तरस की प्रतीति होती ही है कहने का आशय यह है कि विषयों से पूर्ण तृप्ति के बाद उनके परित्याग में उसी प्रकार का आनन्द आता है जिस प्रकार भोजन से तृप्त होने के बाद एक प्रकार के आनन्द का अनुभव होता है । यह तृप्ति जन्य आह्लाद सर्वजनानुभव सिद्ध है ।

पारिजातहरण महाकाव्य महाभारत के समान ही शान्त रस प्रधान काव्य है । महाभारत के पर्यवसान सभी के विनाश में होता है । वृष्णि वंश वाले इतने महान और संख्या में इतने अधिक है किन्तु अन्त में शाप से वे सब लड़कर ही समाप्त हो जाते हैं । महाभारत में पाण्डवों की कथा मुख्य है महाभारत जैसे महासंग्राम में अभूतपूर्व पराक्रम दिखाकर सभी शत्रुओं का संहार कर देते हैं । किन्तु अन्त में सभी पाण्डवों को हिमालय पथ की ओर जाना पड़ता है और अनेक वर्णनातीत विपत्तियों को सहते हुए हिमराशि में अपनी काया समाप्त कर देनी पड़ती है । उस युग पुरुष भगवान कृष्ण का ही क्या होता है, अन्त में एक बहेलिए के द्वारा मारे जाते है । सभी का कितना नीरस अन्त होता है[1] ।

---

1 महाभारत (महाकवि व्यास)

मानव कितना भी बढ़ जाए किन्तु अन्त में समाप्ति नीरसता में ही होती है क्योंकि विश्व की सभी वस्तुयें क्षणभंगुर होती हैं ।

पारिजातहरण महाकाव्य के पंचम सर्ग में नारद के द्वारा भगवान कृष्ण की स्तुति शान्त रस का उदाहरण है ।

"हे मुक्तिनाथ अपनी शरीर पर रेंगते क्षुद्रातिक्षुद्र कीटों के समान संसार सारे जीवों को विशेष आस्था न होने के कारण जब तक आप उपेक्षित किए रहते हैं अर्थात उसकी ओर ध्यान नहीं देते तब तक ये संसार में आते जाते बन्धन में पड़े रहते हैं । जब कभी उनकी क्रियाओं या अपनी इच्छा से ही आपकी दृष्टि के वे लक्ष्य बन जाते हैं तब बन्धन रहित मुक्त हो जाते हैं । यही उनका मोक्ष है।[1]

प्रस्तुत श्लोक में स्थायी भाव निर्वेद है । आलम्बन जीव है, अनुभाव-विशेष आस्थावान होना है तथा उद्दीपन विभाव जीवों का मुक्त हो जाना है ।

काव्य के छठे सर्ग में रूक्मिणी के द्वारा कहा गया यह वचन शान्त रस का उदाहरण है :-

अपने पति से अलग सारे जगत को भी जो कुछ नहीं समझती ऐसी सतियों के लिए यह त्रिलोक आनन्दमय हो उठता है क्योंकि यह भेद ही संसरण अर्थात विविध व्यवहारों वाला यह संसार है । इस बन्धन को तोड़कर ही प्राणी परम सुख भोगता है[2] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 21

2 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 28

यहाँ स्थायी भाव निर्वेद है तथा आलम्बन प्राणी है । अनुभाव संसार के बन्धन को तोड़ना तथा उद्दीपन विभाव प्राणी को परम सुख भोगना है ।

पारिजातहरण महाकाव्य महाभारत के समान शान्त रस प्रधान काव्य है । उसी प्रकार पुरुषार्थ निरूपण के विषय में भी महाभारत के समान ही इस काव्य में मोक्षरूप परम पुरुषार्थ की श्रेष्ठता बताई गई है ।

महाभारत में कवि भगवान व्यास को मुख्य रूप से यह कहना अभीष्ट है कि शान्त रस ही इस ग्रन्थ का अंगीरस है और मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है । मुख्य कहने का आशय यह है कि गौण रूप में इसमें दूसरे रस भी विद्यमान है किन्तु उनका पर्यवसान शान्त रस में ही होता है । इसी प्रकार गौण रूप में इसमें धर्म, अर्थ और काम को भी पुरुषार्थ के रूप में प्रतिपादित किया गया है किन्तु परमपुरुषार्थ मोक्ष ही है । पुरुषार्थ निरूपण के विषय में महाभारत का यह श्लोक प्रसिद्ध है -

" धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ।[1]

पारिजातहरण महाकाव्य के प्रथम सर्ग में द्वारिका वर्णन में मोक्षरूप परम पुरुषार्थ की व्यंजना हुई है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 2।

द्वारिका को मोक्ष देने वाली सप्तपुरियों में मोक्षोत्पादन में यह द्वारिका मुख्य द्वार है, इसलिए अनादिकाल से ही विद्वान इसे द्वारिका इस सत्य नाम से पुकारते हैं । इसमें रहने वाले के लिए आवश्यक नहीं है कि यज्ञादि कार्यों एवं उत्कृष्ट उपासना दानादि सत्कर्म से ही कल्याणमय फलोपार्जन करें ।

केवल यहाँ के निवास करने मात्र से ही लौकिक सुखों का उपभोग कर मानव आलौकिक सुख की प्राप्ति कर लेता है[1] ।

इस भूलोक में अनन्त ऐश्वर्य सुख को देने वाली तथा परलोक में अक्षयपरमपद को पहुँचा देने वाली इस पुरी को देखो ही देवता लोग भी अपनी अमरता पर घृणा करते हुए यहाँ मनुष्य होने की कामना करते है । इस पुरी से दूर रहकर भी इसका केवल निरन्तर नाम लेने से सभी ऐश्वर्य प्राप्त होते है । इसके दर्शन से पापों की राशि भी विलीन हो जाती है तथा सेवन से मनुष्य संसार बन्धन से रहित हो मुक्ति का भागी हो जाता है[2] ।

भक्ति-भाव

पारिजातहरण महाकाव्य के कई सर्गों में भक्ति-भाव की बड़ी विशद व्यंजना हुई है । ईश्वर में ध्यान लगाने से ही मन की शान्ति हो सकती है । अतः स्थान-स्थान पर भगवान की स्तुति का वर्णन इस काव्य में किया गया है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 38, 39

2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 40, 41

काव्य के पंचमसर्ग में नारद के द्वारा भगवान् कृष्ण की स्तुति की गई है। हे जगन्नाथ ! आपने जो कहा सब सत्य है किन्तु इसे संसारी लोग ही ठीक कह सकते है । हे संसार के तारने वाले ! आपके दर्शन मात्र से कृतार्थ होने वाले हमारे प्रति आपके द्वारा यह प्रयोग योग्य नहीं है[1] । हे निरीह यह सम्बोधन पद साभिप्राय है । सर्वथा पूर्ण होने से निरीह की उपाधि तो आपकी ही हो सकती है । सर्वोत्कृष्ट दिव्य अवतार धारण किए हुए आप ऐसा नर सा धारण साध्य व्यवहार करते हुए अपने को छुपा क्यों रहे हो ।

कार्य से कारण का अनुमान बताते हुए कवि कहते है - इस अनुमान से कारणी भूत आपकी {कृष्ण की} चेतनात्मक सत्ता की प्रतीति कैसे मिटाई जा सकती है । हे भगवान जाति{जन्म} आकृति क्रिया गुणों से आपका कोई वर्णन नहीं कर सकता क्योंकि नित्य शुद्ध आत्मा के ये सभी असत्य उपाधिमात्र है[2] ।

सब लौकिक व्यवहार आपकी कृपा से ही होते हैं - हे देव ! इस प्रकार छोटे - बड़े प्रमाण वाले समय विभागों द्वारा घरों घरों या जन्म जन्मान्तरों में क्रम से ही बार-बार घूमते हुए हम सबों का यह आपका इस प्रकार का अनुग्रह {इस रूप में दर्शन} देना ही लाभ है[3] । भगवन् आपकी ऐहिक लीला भी प्राकृतिक नियमों से रहित सर्वथा स्वतन्त्र है अतः आपका सर्वोत्तर प्रभुत्व लौकिक व्यवहारों में भी छिप नहीं सकता ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 3

2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 7

3 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 22

विभिन्न अवतारों का वर्णन करते हुए नारद भगवान कृष्ण की स्तुति कर रहे है --

आपने मछली होकर वेदों का उद्धार किया कछुआ हो पृथ्वी को पीठ पर धारण किया सूकर हो पृथ्वी को फैलाया सिंह बनकर हिरण्यकशिपु जैसे अजेय दैत्यों को मारा । कपटवामन बन त्रिलोक को दो पग में ही नाप लिया । तपस्वी ब्राह्मण का अवतार धारण कर बहुत बढ़े हुए क्षत्रिय राजमण्डल को प्रमथित किया । फिर स्वयं क्षत्रिय राम होकर अपने ही अवतार परशुराम को पराजित कर ब्राह्मण कुलोत्पन्न लोक विजयी दशमुख रावण को समूल उखाड़ डाला[1] ।

छत्र के समान पर्वत गोवर्द्धन को धारण किया ।

सूक्तियों के वर्णन के द्वारा कवि उमापति ने अपने काव्य में भगवान कृष्ण की स्तुति की है -

हे हरे ! आपके जिस प्रभाव को मेरे पिता, पितामह ब्रह्मा भी नहीं जान पाते, ऐसे आपके विषय में यह मेरी पूर्वोक्त गुणानुवादात्मक स्तुति रूप उक्ति भी असती अर्थात असमर्थ होने के कारण अनुचित है । क्या आँख निकल आने पर भी चींटी कभी चन्द्रबिम्ब को चूमती है[2] ।

फिर भी तुम्हारे [कृष्ण के] महत्त्व को नाम गुणादि वर्णन न करती हुई वाणी की उत्पत्ति ही व्यर्थ है वह वाणी अधमाली [पापिनी] है अगम्य विषय में वाणी का प्रसार भी दूषित ही है । ऐसी दुःस्थिति में हे भगवान !

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 23

2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 22

अब यहाँ तुम्हीं प्रमाण हो जो उचित समझो[1]।

पारिजातहरण महाकाव्य के द्वादश सर्ग में गरूड़ के द्वारा भगवान कृष्ण की स्तुति की गई है गरूड़ भगवान् कृष्ण से कहता है – हे परमपूज्य वह मेरा शरीर और मेरा मन तुम्हारे चरण कमलों से क्षण भर के लिए भी अलग नहीं है।

सूक्ति के द्वारा भगवान् कृष्ण की गरूड़ के द्वारा स्तुति की गई है – हे निर्विकार। तुम्हारी मानव के रूप में जो पद और जो चेष्टाएं है, वह हम लोगों भाव यह है कि अवतार ऐश्वर्य अत्यन्त अलक्ष्य नहीं रहा, इतने पर भी यदि जीव अपने उद्धारार्थ आपकी शरण न आएं तो आपका क्या दोष है इसी प्रकार भगवान के अवतरों का रहस्य कवि ने अपने काव्य में बताया है।

इस संसार का आदि कारण आप कृष्ण की असाधारण इच्छा ही बतलाई गई है – यह आकाश जो ताराओं घनघटाओं सूर्य तथा चन्द्र मण्डल से मण्डित है यह आपकी ही इच्छा के परिणाम है। हे तटस्थ किसी भी वृत्ति में आस्था न रखने वाले आपके वह प्राकृतिक (स्वाभाविक) विलास है। हे नाथ। हम सभी आपकी क्रीड़ा के साधन हैं। जिस प्रकार अनादि अनन्त काल के भीतर रहने वाले सभी किसी उपाधि विशेष से परिच्छिन्न करके वर्ष, ऋतु मासपक्ष आदि से इसका व्यवहार करते हैं। किन्तु इसकी महत्ता को सही कोई जानता नहीं। उसी प्रकार उस काल स्वरूप आपके विषय में अपने व्यवहार को निभाने के लिए अपनी वाणी प्रस्तुत करने वाले हम भी अवाच्य है अर्थात् अधिक्षेप के पात्र नहीं है[2]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य – पंचम सर्ग – 23

2 पारिजातहरण महाकाव्य – पंचम सर्ग – 24

इस सम्पूर्ण विश्व का निर्माण करने वाले तथा इस वाड्मय जगत का विस्तार करने वाला एक ईश्वर ही है," इसी को बताते हुए गरूड़ के द्वारा भगवान की स्तुति की गई है। नामों की पावन कथा से विशद वाड्मय जगत की सृष्टि करने की इच्छा से मानों रचना करते हो। प्रकृष्ट ज्ञान {चैतन्य} द्वारा जड़ को परिमार्जित करता हुआ इस जड जगत् को विभिन्न जन्मों में प्रकाशित करते हो अर्थात विभिन्न जन्म लेकर तुम इस संसार को प्रकाशित करते हो, यह व्यापक वाड्मय तुम्हारे गुण जाति तथा कर्म की शुद्धता से प्राप्त है। हे अनन्त! प्रतिदिन नए जंगत का निर्माण करते हो। हे ईश्वर! जैसे सद और अमूर्त्त को विस्तृत करते हो वैसे ही अकथनीय इस वाड्मय जगत को विस्तृत करते हो। सभी मनुष्य ईश्वर के अधीन है। " ईश्वर से अलग मनुष्य को कोई अस्तित्व नहीं होता " इस प्रकार की स्तुति करता हुआ गरूड़ भगवान कृष्ण से कहता है - पवित्र और अनिर्मल होने पर भी समुद्र से अलग शरत्सरोवर सरोज सहित सुशोभित होता है हे अनन्त! नूतनता के व्यापार से नवीनता ही रमणीयता का आश्रय है।[1]

प्रकृति के पंचीकरण की प्रक्रिया बताते हुए कवि भगवान की स्तुति करके अपने दर्शन सम्बन्धी पाण्डित्य को बताते हुये ईश्वर के प्रति भक्ति को प्रकट करते हैं। गरूड़ भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुये कहता है - हे अनधीश! {अर्थात जो स्वयं ईश्वर है जिसका कोई ईश्वर नहीं है} तुम्हारे {भगवान कृष्ण के} पंचीकरण से आकाशादि पंचक इस प्रपंच से उत्पन्न हुए है। अलग-अलग करके अद्भुत जगत अभिन्न होता हुआ भी देखने वालों में भेद पैदा करता है। दूर से गिरी हुई जल की बूंदे मिट्टी में, अनिल में या पृथ्वी में और कहीं लीन

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 40

हो जाए किन्तु परमार्थतः वह पृथक नहीं है उसी प्रकार तुम एक ही इस जगत के रचयिता हो[1] ।

तुम्हारा (भगवान कृष्ण का) परिचय अलग ही सज्जनों को प्रसन्न करता है और तुम्हारी प्रभुता प्रियता के कारण बहुत रुचिकर है अपने जन की रक्षा करने का जिसने व्रत लिया है ऐसे ईश्वर आप अधीश्वर की परतन्त्रता ही हम लोगों की स्वतन्त्रता है । अर्थात हम लोगों का अलग कोई अस्तित्व नहीं है[2] ।

दीपक से भगवान कृष्ण की उपमा देते हुए गरूड़ भगवान की स्तुति करता है -

विविध सन्धिमय वाड्मय के द्वारा अज्ञान देवता आपका नाम लेते है । जैसे दीप दीपन की अपेक्षा नहीं रखता स्वयं ही प्रकाशित होता है और वस्तु को दृष्टिगोचर करता है अर्थात स्वयं प्रकाशित करता होकर वस्तु को दिखाता है उसी प्रकार तुम स्वयं प्रकाशित होते हो[3] ।

काव्य के अष्टादश सर्ग में भगवान कृष्ण स्वयं युद्ध की शान्ति के लिए भगवान शिव की स्तुति करते हैं । नर रूपी भगवान कृष्ण ने बहुत देर तक सदाशिव को ध्यान किया । भगवान ने बाणं से बलपूर्वक पृथ्वी तल को भेदकर पाताल गंगा के जल को निकालकर मालूर फल में शंकर को स्थापित करके शिव की अर्चना की । दूसरे विधाता की मानो सृष्टि उत्पन्न करते हुए से कृष्ण ने उमा

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग- 41-43

2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 53

3 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 52

के साथ शंकर को ध्यान किया । इस प्रकार गद्गदाक्षरों में कृष्ण ने भगवान की स्तुति की है । हे भगवन ! इस विषम स्थिति में हजारों सिद्धि के लिए प्रसन्न हो[1]। जैसे कृष्ण भगवान शिव की स्तुति करते हुए कहते हैं - कि वास्तव में हमारे तुम्हारे में भेद नहीं है जैसे आकाश में अद्वय रहता है वैसे हमारे तुम्हारे में है तुम्हारे द्वारा उपेक्षित विषम किन्हीं घटनाओं में, मैं सुघट ढंग से सिद्धि के लिए हुआ हूँ अर्थात मैंने सिद्धि प्राप्त की है । तुम्हारी उपेक्षा द्वारा मेरी स्थिति सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ओतप्रोत हो गई है । दिव्यता का पोषण करने वाले आपकी आत्मा से युक्त हूँ । जन्म और मृत्यु के व्याज से इस शरीर को धारण कर रहा हूँ । तत्वत मैं तुमसे क्षण भर के लिए भी अलग नहीं हूँ[1]।

कृष्ण भगवान शिव को अपना प्रभु मानते हुये कहते है - हे अज ! मेरी अजता तुम्हारे द्वारा अधिश्रित अन्तरता से सिद्ध होती है मेरे पास कुछ भी ऐसा नहीं है जो तुम्हारा नहीं हैं । तुम्हीं मेरे प्रभु हो इसलिए अपने की तरह मेरी रक्षा करो[2]।

मुझ कृष्ण के भीतर तुम हो और तुम्हारे भीतर यह सम्पूर्ण जगत् है । हे अनन्त मेरी प्रसिद्ध समृद्धियाँ तुम्हारे अनुग्रह से ही होने वाली है । ऐसा तुम जानो तुम्हारा शिवलिंग रूपी पिण्ड इस संसार में पहला पिण्ड है उसके बाद विविध अंगों वाले हम इस संसार में विस्तृत हुये[3]। संहार काल में निराश्रय का पद तुम्ही हो । जगत् में रोग, दारिद्र्य आदि का अभाव

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टादश सर्ग - 9

2 पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टादश सर्ग - 10

3 पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टादश सर्ग - 12

तुम्हारी ही कृपा से है। तुमसे उपेक्षित संसार की गति विषम बन जाती है। हे ईश ! मुझ पर अनुग्रह करो। मेरा मन तुमको ही आश्रय बना रहा है। हे देव ! अपनी विगुणता का त्याग कर गुणवान बनो अर्थात सत्व रजस् तमस को धारण करो और अपनी प्रभुता से अनुकूल बनाने वाले भेद को धारण करो[1]।

काव्य के विंश सर्ग में मुनि नारद के द्वारा नारायण की स्तुति की गई है " हे अनन्त ! तुमको नमस्कार हो। तुम सत्व, रजस, तमस् गुणों में रहने वाले हो। हम लोगों के रक्षक हो। संसार के आश्रय हो। दुर्लक्ष्य होते हुए भी भक्त के आत्मभाव के अनुकूल क्रिया कर्म के लिए तुम स्वतन्त्र हो[2]।

भगवान के विभिन्न अवतारों का रहस्य बताते हुये मुनि नारद उनकी स्तुति कर रहे हैं - गदा, पद्म, शंख, चक्र, से मीनादि अनेक अवतारों से क्रीड़ा करने के लिए न दिखाई देने वाले भी दिखाई पड़ने वाले दृश्य स्वरूप होते हुए भी ज्ञान के धाम के रूप में तुम्हारी आत्मा होती है तुम्हे नमस्कार हो। शेषनाग के फन पर शयन है जिसका, अपनी नाभि से उत्पन्न कमल, कमल से उत्पन्न ब्रह्मा, ब्रह्मा से उत्पन्न जो तेज है, वह तेज तुम्हारा है "अनवस्था (पृथ्वी में भुखमरी, बाढ़ आदि) रूपी गृह से ग्रस्त भू-भार की धारा के लिए कूर्मावतार धारण करने वाले माया के तुम आश्रय हो[3]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टादश सर्ग - 15

2 पारिजातहरण महाकाव्य - विंश सर्ग - 29

3 पारिजातहरण महाकाव्य - विंश सर्ग - 31

यह सम्पूर्ण विश्व ईश्वर की आत्मा है । ईस ईश्वर को भक्ति से जाना जाता है -

"सभी प्रमाणों का अतिक्रमण करने वाले प्रमिति का आश्रय होते हुए भी भक्ति से जानने योग्य तुम सबको शरण देते हो । सुर के शत्रुओं के समुदाय को अपने चक्र से नाश करने वाले तुम्ही हो । ब्राह्मण देवता के दुःख का नाश करने वाले तुमको नमस्कार है[1] ।

ईश्वर की भक्ति करने वाले मनुष्यों के लिए स्वयं भगवान कृष्ण कहते है- मेरी स्तुति पढ़ने वालों का अभय निश्चित होता है[2]।

इस प्रकार कवि उमापति ने अपने पारिजातहरण महाकाव्य में स्थान-स्थान पर भगवान की स्तुति का वर्णन करके भक्ति भाव की बड़ी विशद अभिव्यंजना प्रस्तुत की है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - विंश सर्ग - 33

2 पारिजातहरण महाकाव्य - विंश सर्ग - 35

श्रृंगार - रस

पारिजातहरण महाकाव्य में श्रृंगार रस का अंग रूप में वर्णन हुआ है । महाकाव्यों में प्रधान रस के अतिरिक्त अन्य रसों को भी गौण रूप में रखने का नियम रखा गया है[1]। क्योंकि जीवन में सदा एक ही रस या भाव नहीं बना रहता है कभी हास-परिहास है तो कभी रोदन विलाप, कभी उत्साह है, तो कभी अपार शोकावेग, कभी वात्सल्य की सरस धारा बहती है, तो कभी क्रोध का प्रचण्ड-ताण्डव देखने को मिलता है । इस बहुरंगी रूप में ही जीवन का स्वारस्य है । अतः काव्यों में अनेक रसों की उपस्थिति उचित और स्वाभाविक ही समझ पड़ती है ।

श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति है । इसमें स्त्री पुरुष के प्रेम का वर्णन होता है । जब स्त्री पुरुष में वियोग नहीं होता और दोनों बातचीत के आदि के द्वारा संयोग का अनुभव करते हैं तब संयोग श्रृंगार और जब दोनों में वियोग होता है तो विप्रलम्भ श्रृंगार होता है । काव्य के द्वितीय सर्ग में उद्धृत विप्रलम्भ श्रृंगार का उदाहरण प्रस्तुत है -

नायक - प्रिये तुम्हारा यह मुख मण्डल उदास क्यों है ?
नायिका - चन्द्रमा के अन्तिम आशा {दिशा} में डूब जाने से
{भाव यह है कि तुम्हारे द्वारा अन्तिम आशा के भंग हो जाने से}

---

1 अंगा निलर्वेऽपि रसा : ।।" साहित्यदर्पण 6/3/178

नायक - प्रिये ! चन्द्रमा तो फिर नूतन रूप धारण करके उदित होगा (अर्थात् अब ऐसा नहीं होगा)
नायिका - जो गया वह उसी रूप में नहीं लौटता[1]।

यहाँ स्थायी भाव "रति" है। आश्रय-नायिका है क्योंकि रतिभाव नायिका के ही मन में जागृत हुआ है। आलम्बन नायक है क्योंकि आश्रय नायिका का स्थायी भाव रति नायक के प्रति उद्बुद्ध हुआ है, अतः वह उसका आलम्बन है। उद्दीपन विभाव नायक का उसी रूप में न लौटना है क्योंकि इसी कारण नायिका आश्रय में रति भाव जागृत होता है।

काव्य के प्रथम सर्ग में संयोग श्रृंगार का वर्णन मिलता है। द्वारिकापुरी में स्थित मनोहर बावड़ी और सरोवर, नायक और नायिका की भाँति परस्पर रमण करने से प्रतीत होते हैं[2]।

"इस इच्छानुसार बहने वाली वायु के आघात से क्षुब्ध हुए इन जलाशयों में जल की तरंगे उठती हैं, उन्हीं के ब्याज से मानों उन नायक नायिकाओं के अन्तःकरण में बढ़े हुए काम विकार के कारण इसकी लहरें उठ रही हैं। सारस पक्षी के कलरव के बहाने वे रसमग्न प्रेमी मानों एकान्त वार्तालाप सा कर रहे हैं। प्रफुल्ल पंकजों के रूप में उनके चंचल नेत्र ही कटाक्षपात आदि की चेष्टाओं में निरत है, भ्रमरों के गुंजारत के ब्याज से उन मधुमत रसिकों के अमर्यादित या असंबद्ध प्रेमालाप ही चिरकाल तक श्रवण गोचर होते हैं[3]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 15
2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 18
3 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 18, 19

यहाँ स्थायीभाव रति है । आश्रय रसमग्न प्रेमी है । आलम्बन नायक नायिकाहै क्योंकि आश्रय का स्थायी भाव रति नायक का नायिका के प्रति उद्बुद्ध हुआ है । उद्दीपन विभाव जलाशयों में जल की तरंगे एकान्त, स्थान आदि हैं क्योंकि इसी कारण रसमग्न प्रेमी के हृदय में रति भाव जागृत होता है।

पातिव्रत्य-भाव

पारिजातहरण महाकाव्य के षष्ठ सर्ग में पातिव्रत्य भाव की बड़ी विशद व्यंजना हुई है । पातिव्रत्य भी प्रेम ही है - पूज्यत्व भावना मिश्रित दाम्पत्य प्रेम । उसमें प्रिय के प्रति रति के साथ पूज्य होने की भावना भी रहती है । वह पूज्य भाव धर्मानुप्राणित रहता है । वह प्रिय की महत्ता के सामने किसी को नहीं मानता प्रिय की महत्ता में अपनी आत्मीयता निहित होने से उसमें गर्व भी रहता है ।

पारिजातहरण महाकाव्य के प्रथम सर्ग में दासी आकर भगवान कृष्ण से कहती है - आपकी एकमात्र उपासना ही जिसे इष्ट है ऐसी अपनी प्रियतमा सती रुक्मिणी को अपनी अनुमति दे अनुग्रहीत करें । क्योंकि सती रुक्मिणी आपकी कृपा के परोक्ष कुछ भी नहीं करना चाहती हैं[1] ।

काव्य में नारद का रुक्मिणी के साथ जो संवाद है, उसमें पातिव्रत्य की उच्चकोटि की व्यंजना हुई है । अन्य स्त्री के अनादर रूप भाववाली रुक्मिणी की प्रशंसामयी नारद की वाणी सुनकर रुक्मिणी जी भी इस [कृष्ण] के महत्त्व का

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य -प्रथम सर्ग - 62

वर्णन करते हुये यों बोल उठी - हे मुने ! इस भगवान कृष्ण की सेविका हूँ इससे बढ़कर मेरे सौभाग्य की सूचना दूसरी क्या है[1]।

रुक्मिणी किस दृढ़ता के साथ अपने प्रेम एक निष्ठा का परिचय देती है- यदि भगवान के चरण कमलों की सेवा का अवसर मुझे प्राप्त है तो पृथ्वी तल में जन्म लेकर भी मैं इस पुष्प की तो बात ही क्या है सारे देव सौराज्य को भी तृण के समान तुच्छ मानती हूँ। सारे विश्व सुख को भी मात करने वाले पति के चरण प्रक्षालन जल से अपने को कृतार्थ माने वाली एवं पति को ही देवता समझने वाली ऐसी कौन पतिव्रता स्त्री होगी जो ऐसे पुष्पादि रूप लुभाने वाले विषयों पर इच्छा प्रगट करेंगी[2]।

सतियों को अपने पति को प्रसन्न करने के अतिरिक्त और कुछ भी अभीष्ट नहीं है। वह जिस वस्तु को पति की हित कर सकती हैं, उसी की चाह प्रकट करती है अन्यथा पति रूप ईश्वर की सेविका उस स्त्री के लिए संसार की सारी प्रिय वस्तुयें अहितकर हैं। आपने पति से अलग सारे जगत् या जगदीश को भी जो कुछ नहीं समझतीं ऐसी सतियों के लिये यह त्रिलोक आनन्दमय हो उठता है।

सतीधर्म का निरूपण करते हुये रुक्मिणी, नारद से कहती है - जो आधे क्षण भी कभी जिसके अनुराग से रहित हो नहीं रहती तथा जिससे अलग हो जीती हुई भी जो मरी सी रहती जिसके लिए ही, जो सारी अभिलाषाओं को फैलाती

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 21

2 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 23,24

है उसकी वही दयिता ﴾प्रियस्त्री﴿ है तथा वही उस दयिता का भी कोई प्रधान वस्तु है अर्थात उससे भिन्न कुछ नहीं है[1]।

करूण - रस

शोक अथवा दुख की दशाओं के वर्णन में करूण रस होता है। करूण रस का स्थायी भाव शोक है। जिसके हृदय में शोक का भाव जागृत हो, वह आश्रय है।

पारिजातहरण महाकाव्य के नवम सर्ग में एक से बाइस श्लोकों में "सत्यभामा के दुःख में करूण रस की मनोरम अभिव्यक्ति हुई है।

पारिजात के पुष्पदान से वर्द्धित भगवान के लिए अपने को अत्यन्त कटु, रूक्मिणी के सम्मनातिशय को सखी के मुख से सुनकर सत्यभामा का मानस, क्रोध से भर गया सरस हृदय वाले श्रृंगार समुद्र के पारंगत भगवान कृष्ण उस मृगाक्षी सत्यभामा को इस प्रकार नई रीति से मनाते हुए, आँखे उसके पाँवों पर चढ़ाकर झुकाना चाहते थे। धीर बुद्धि वाली सत्यभामा उदासीन सी बनी हुई यों बोल उठी। हे नाथ! जिस पर आपके प्रेम का रंग चढ़ चुका है एवं देवर्षि नारद के लिए पारिजात पुष्प को आपसे प्राप्त कर जिसका महत्व आज बढ़ गया है ऐसी रूक्मिणी के रहते और किसी बेचारी को आपके प्रीति प्रमाण सहन करने का सौभाग्य कहाँ है[2]।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 32

2 पारिजातहरण महाकाव्य - नवम सर्ग - 2

यहाँ पर स्थायी भाव सत्यभामा का शोक है आश्रय सत्यभामा है क्योंकि शोक सत्यभामा के हृदय में हो रहा है। आलम्बन कृष्ण है क्योंकि आश्रय सत्यभामा का स्थायी भाव शोक कृष्ण के प्रति उद्‌बुद्ध हुआ है अतः वह उसका आलम्बन है । कृष्ण पर रुक्मिणी के प्रेम का रंग चढ़ना तथा कृष्ण पारिजात पुष्प को रुक्मिणी को देना आदि उद्‌दीपन विभाव है क्योंकि इसी कारण सत्यभामा आश्रय में शोकभाव जागृत हुआ है ।

सत्यभामा कृष्ण से कहती है आप जायँ दूसरे के आदर न सहने के कारण उत्पन्न क्रोध वाली रुक्मिणी को भी मेरे समान दुखिनी न बनाएँ और भी "हा कष्ट है ! यदि दया या लज्जा अथवा भय या प्रेम की स्वच्छ पवित्र परिपाटी आप को रोकती तो क्या जगत में अतुलनीय सुनी जाती राधा विषम विरह कष्ट आज तक सहती ही रहती[1] । यहाँ आश्रय राधा है क्योंकि शोक राधा के हृदय में जागृत हुआ है स्थायी भाव राधा का शोक है आलम्बन कृष्ण है क्योंकिराधा का शोक कृष्ण के प्रति उद्‌बुद्ध हुआ है ।

यह आप कृष्ण की अच्छी प्रीति वाली जो मनाने की रीति है मैं तो समझती हूँ किसी छिपे गुण प्रपंच को लक्ष्य कर यह आपकी धूर्तता ही है । मेरे प्रति (सत्यभामा के प्रति) किया गया आप (कृष्ण का व्यवहार है उससे तो तिरस्कार ही लक्षित होता है । इस प्रकार सत्यभामा अपने दुःख को प्रकट करते हुये कहती है - हे नाथ ! यदि हत्यारे दैव ने हमारे भले भाग्य भी व्यर्थ नहीं बना दिए होते तो क्या ? समान धर्मा भीष्मक सुता रुक्मिणी के द्वारा आपसे तिरस्कार पाती[2] । इस प्रकार व्यंग्य वचनों की रचना से चित्त पर

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - नवम सर्ग - 15

2 पारिजातहरण महाकाव्य - नवम सर्ग - 21

यद्दी एकाग्रता से विलास रस को भुलाकर करूण रस का प्रदर्शन करती हुई सत्यभामा ने दोनों आंखे आंसुओं से भर ली[1] ।

यहाँ स्थायी भाव सत्यभामा का शोक है आश्रय सत्यभामा है क्योंकि शोक सत्यभामा के हृदय में हो रहा है तथा आलम्बन् कृष्ण है क्योंकि आश्रय सत्यभामा का स्थायी भाव शोक कृष्ण के प्रति उद्बुद्ध हुआ है । अतः वह उसका आलम्बन है ।

दैव के द्वारा भले भाग्य को व्यर्थ बना देना उद्दीपन विभाव है क्योंकि इसी कारण सत्यभामा आश्रय में शोक-भाव जागृत होता है । आँखों में आंसुओं का भर जाना" अनुभाव है क्योंकि स्थायी भाव शोक के समय आश्रय सत्यभामा की ये चेष्टा है ।

रौद्र-रस

क्रोध की मुद्रा में रौद्र रस होता है । इसका स्थायी भाव क्रोध है ।

कवि उमापति विरचित पारिजात-हरण महाकाव्य के सातवें और आठवें सर्ग में सत्यभामा के क्रोध में रौद्र रस की अभिव्यक्ति हुई है ।

पारिजात के पुष्पदान से वर्द्धित भगवान के किए अपने को अत्यन्त कटु रूक्मिणी के सम्मानातिशय को सखी के मुख से सुनकर सत्यभामा का मानस

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - नवम सर्ग - 22

मान से {क्रोध से} भर गया । क्रोध की गर्मी से भरी सूर्य के प्रचण्ड ताप से तपी दिवस की प्रभा के समान उस सत्यभामा को मुनिवर नारद ने देखा । क्रोध से लाल सत्यभामा प्रदोष की रक्तप्रभाव से अनुरंजित आकाश भूमि सी भीष्णदीख पड़ रही थी । क्लेश में पड़ी सी, विलास रहित उस सत्यभामा को देखकर मुनि नारद ने उनकी उदासी का कारण पूछा । तत्पश्चात् सत्यभामा ने अपने क्रोध भाव को प्रकट करते हुए नारद से कहा - " हे मुने ! तिरस्कार ही जिनके अन्त में फलित होता है ऐसे मेरी {सत्यभामा की} प्रशंसा के लिए प्रयुक्त अपने वचनों से अब अधिक मत दुःखाइए । आपके प्रिय कृष्ण में जो आदर भाव था, वह आज मेरा भ्रम सिद्ध हुआ[1] ।

यहाँ पर स्थायी भाव सत्यभामा का "क्रोध" है । आश्रय सत्यभामा है क्योंकि क्रोध सत्यभामा के हृदय में जागृत हुआ है । आलम्बन कृष्ण है क्योंकि आश्रय सत्यभामा का स्थायी भाव क्रोध कृष्ण के प्रति उदबुद्ध हुआ है अतः वह उसका आलम्बन है । "मुनि नारद का सत्यभामा के लिए प्रयुक्त वचन" उद्दीपन विभाव है क्योंकि इसी कारण सत्यभामा आश्रम में क्रोध भाव जागृत होता है ।

"सारे विषयों को छोड़, इन पर ही अपने को न्योछावर करने वाली रूप, गुण, शील, चतुरता आदि से सारे जगत् में जिससे बढ़कर दूसरी नहीं है, ऐसी वह राधिका इनके {कृष्ण के} प्रेम पद्धति के गुणों को जानती है । उसे कुल कलंकिनी बनाकर भी आज तक नहीं पूछते ।"[2]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तम सर्ग - 30

2 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तम सर्ग - 34

यहाँ पर स्थायी भाव क्रोध है । आश्रय राधा है । क्योंकि {क्रोध} राधा के हृदय में जागृत हो रहा है । आलम्बन कृष्ण हैं क्योंकिराधा का क्रोध कृष्ण के प्रति है । "राधा का क्रोध कृष्ण के प्रति है । "राधा को कुल कलंकिनी बनाना" उद्दीपन विभाव है, क्योंकि इसी कारण "राधा" आश्रय में क्रोध भाव जागृत होता है । सत्यभामा मुनि के प्रति क्रोध भाव को प्रकट करते हुए कहती है - " हे मुने ! पति के परम अनुराग रूप भाग को पाने वाली रूक्मिणी की ही आप प्रशंसा करे, जो आपके उपहार रूप दिए समस्त कामना पूरक पारिजात का फूल पाकर सौभाग्य रूप तेज में फूली नहीं समाती है[1]।

यहाँ स्थायी भाव क्रोध है, आश्रम-सत्यभामा है । आलम्बन नारद है क्योंकि आश्रय सत्यभामा का स्थायी भाव क्रोध नारद के प्रति उद्बुद्ध हुआ है अतः वह उसका आलम्बन है ।"नारद का रूक्मिणी को उपहार रूप में पारिजात का फूल देना " - उद्दीपन विभाव है क्योंकि इसी कारण सत्यभामा आश्रय में क्रोध भाव जागृत हुआ है ।

सत्यभामा के रौद्र रस की ओर भी व्यंजना देखिये :- जो एक स्वयंवर विशेष से अपने ही द्वारा बलात्कार से हर लाई गई है, वही उन्हें प्रिय होगी । हम {सत्यभामा} जैसी माता पिता से दान स्वरूप दी गई, भोग की साधन, गुण रहित स्त्रियों में इनका {कृष्ण का} अनुराग क्यों कर होगा ।"[2]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तम सर्ग - 41
2 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तम सर्ग - 42

यहाँ स्थायीभाव सत्यभामा का क्रोध है । आश्रय सत्यभामा है क्योंकि स्थायी भाव क्रोध सत्यभामा के हृदय में उद्बुद्ध हो रहा है । आलम्बन कृष्ण है क्योंकि आश्रय सत्यभामा का स्थायीभाव क्रोध कृष्ण के प्रति उद्बुद्ध हुआ है, अतः वह उसका आलम्बन है । "रुक्मिणी का कृष्ण के लिए प्रिय होना " उद्दीपन विभाव है क्योंकि इसी कारण सत्यभामा आश्रय में क्रोध-भाव जागृत होता है ।

पारिजातहरण महाकाव्य के आठवें सर्ग में भी सत्यभामा के क्रोध-भाव की अत्यन्त सुन्दर व्यजनों हुई है ।

दरवाजे के पास छिपकर भगवान् कृष्ण अपनी प्रियतमा सत्यभामा की कोप स्थिति को देखने लगे । जिस सत्यभामा के अधिक श्वासोच्छवास के कारण काँपते हृदय पर कमल कोष के समान वृक्षोजयुगल जोरों में हिल रहे थे । वह सत्यभामा क्रोध युक्त टेढ़ी भौंहों से युक्त मुख को धारण किए हुए दीख रही थी । बढ़े रोष के संसर्ग से लाल हुऐ मनोहर शरीर को धारण कर रही थी । सत्यभामा क्रोध से भौंहे तान कर कठोर शब्दों में उन (कृष्ण को) कुछ उलटी सीधी सुना रही थी ।

सत्यभामा क्रुद्ध सर्पिणी की भाँति लम्बी-लम्बी भयंकर साँसें ले रही थी तथा काँपते हृदय पर भुजपंजर बाँध कर लम्बी उसासे ले रही थी । तब तक चारों ओर मेघ की छटा सी प्रभा फैलाते हुये उन कृष्ण ने सत्यभामा के अन्तर्गृह में प्रवेश किया ।

"बुद्धिमती सत्यभामा, जिनके (कृष्ण के) आने की कोई सम्भावना तत्काल नहीं थी ऐसे अपने प्राण बल्लभ को सामने देख क्रोध के आवेश में कर्तव्यज्ञान स्थिर

न होने से अभ्युत्थान के लिए न उठ सकी, न पड़ी ही रही ।[1] यहाँ स्थायी भाव सत्यभामा का क्रोध है आश्रय सत्यभामा है तथा आलम्बन कृष्ण है क्योंकि सत्यभामा का क्रोध कृष्ण के प्रति उद्बुद्ध हुआ है, अतः वह उसका आलम्बन है" अभ्युत्थान के लिए न उठना और पड़े रहना" यह अनुभाव है क्योंकि क्रोध भाव के समय आश्रय सत्यभामा की ये चेष्टाएँ हैं । पारिजातहरण महाकाव्य के विंशसर्ग में असुर के प्रति भगवान कृष्ण के क्रोध में रौद्र-रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है ।

"माता आदिति के कुण्डल भौमासुर - हर लेगया है" ऐसा प्रवचन करने वाले महर्षि कश्यप के कहने पर आवेश सहित जिस कृष्ण के शरीर में लोमपंक्तियाँ प्रकट हो गई हैं । दिखाई पड़ने वाले रक्त वर्ण की कान्ति से युक्त शरीर वाले भगवान श्रीकृष्ण में अम्ल सहित पाकमधुर रस ने ‡आँसू‡ ने प्रवेश किया ।

"आर्द्र के कारण अभिनव हो जाने पर सोचते हुए पसीने से मण्डित इस विष्णु की फैली हुई आँखें, बढ़े हुए क्रोध से कसैली और रक्त वर्ण की हो गई है[2] ।"

यहाँ स्थायी भाव-क्रोध है और आश्रय भगवान् कृष्ण हैं क्योंकि क्रोध भगवान के हृदय में जागृत हो रहा है । आलम्बन राक्षस है क्योंकि आश्रम भगवान का क्रोध राक्षस के प्रति उद्बुद्ध हुआ है अतः वह उसका आलम्बन है । "फैली हुई आँखे" इत्यादि अनुभाव है । क्योंकि क्रोध भाव के समय आश्रय कृष्ण की ये चेष्टाएं हैं । उद्दीपन विभाव-भौमासुर राक्षस का कुण्डलों को हर लेना है क्योंकि इसी कारण भगवान का क्रोध उद्बुद्ध हुआ है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टम सर्ग - 29

2 पारिजातहरण महाकाव्य - विंश सर्ग - 23

"{क्रोध के कारण} शान्ति को न प्राप्त हुई उन भगवान कृष्ण की भुजाएं फड़फड़ाने लगी । इन्द्र के शत्रु उस राक्षस को मारने के लिए उनका चक्र नाचने लगा । अगर यह असुर मेरे द्वारा {कृष्ण के द्वारा} नहीं मारा गया तो आपके मौन रहते हुए भी आज से हे तात् । तुम्हारे भीतर विषाद के होते हुए भी काश्यपी का पुत्र मैं कृष्ण कहाँ खड़ा होगा । इस प्रकार कहते हुए वह कृष्ण उठ खड़े हुए"[1] । यहाँ स्थायी भाव "क्रोध" है । आश्रय भगवान् कृष्ण है । आलम्बन असुर है क्योंकि भगवान का क्रोध राक्षस के प्रति उद्बुद्ध हुआ है, अतः वह उसका आलम्बन है । उद्दीपन विभाव-भौमासुर राक्षस का कुण्डलों को हर लेना है क्योंकि इसी प्रकार भगवान का क्रोध उद्बुद्ध हुआ है । अनुभाव-भगवान की भुजाओं का फड़फड़ाना तथा चक्र का नाचना है क्योंकि स्थायी भाव क्रोध के समय आश्रय भगवान् कृष्ण की ये चेष्टाएं है ।

वीर - रस

"कार्यारम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते ।"[1]

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है । युद्ध वर्णन में वीर रस का चित्रण मिलता है ।

पारिजातहरण महाकाव्य के सत्रहवें सर्ग में नारायण तथा इन्द्र के युद्ध वर्णन में इस रस की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति की गई है ।

इन्द्र श्रीकृष्ण से बोले कि बलपूर्वक इस वृक्ष को ले जाने में समर्थ नहीं हो तुम्हारा अधिकार इसके पत्ते पर भी नहीं हो । अतः पारिजातवृक्ष के प्रति इच्छा त्याग दो । इतना कहते हुए उन्होंने भगवान से कहा यह मेरा बाण ले लो यह तुम्हें मैं पारितोषिक में दे रहा हूँ ।

---

1 काव्य प्रकाश - चतुर्थ उल्लास - 30

"ऐसा कहने वाले महान् ओजस्वी इन्द्र ने अचानक अपने विशाल धनुष को कान तक खींचा और कृष्ण पर छोड़ दिया ।"[1] यहाँ स्थायीभाव उत्साह है, आश्रय इन्द्र है क्योंकि उत्साह इन्द्र के हृदय में हो रहा है । आलम्बन भगवान कृष्ण है क्योंकि इसी कारण स्थायी भाव उत्साह आश्रय इन्द्र के हृदय में जागृत हो रहा है अतः वह उसका आलम्बन है उद्दीपन पारिजातवृक्ष का बलपूर्वक कृष्ण का ले जाना है अनुभाव इन्द्र को धनुष का खींचना आदि है । क्रोध से भगवान ने भी उसके बाण को निराकृत कर दिया और गम्भीर वाणी में बोले "सम्पूर्ण सिद्धियां पराक्रम में होती है" महर्षि नारद द्वारा जो तुम्हें विदित कराया जा चुका है, उस निश्चय को तुम{इन्द्र} जानते हो वह बेकार नहीं है यह पारिजात वृक्ष मैं{कृष्ण} ले जाऊँगा ।

"इसलिए अपनी सफलता के लिये निश्चय मत करो हे वीर ! पराक्रम के बिना समृद्धियां नहीं होती, मैं {कृष्ण} तुम्हारे {इन्द्र के} बल को काट नहीं रहा हूँ इसलिए गर्व से तुम मुझको {मेरी शक्ति को} नहीं समझ रहे हो।"[2] यहां स्थायी भाव उत्साह है आश्रय भगवान् कृष्ण है आलम्बन इन्द्र है क्योंकि इसी कारण उत्साह कृष्ण के हृदय में जागृत हो रहा है अतः वह उसका आलम्बन है " इन्द्र का गर्व करना उद्दीपन विभाव है क्योंकि इसी कारण भगवान कृष्ण में स्थायी भाव उत्साह जागृत हो रहा है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग - 3

2 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग - 4

भगवान् कृष्ण ने युद्ध के लिए धनुष तैयार कर लिया जो टेढ़ा होकर भयंकर लग रहा था और भ्रूभंग के समान तन गया था । भगवान कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और इन्द्र के पुत्र पुरन्दर दोनों ने एक दूसरे का रास्ता रोक लिया और एक दूसरे को मारने के लिए उद्यत हो गए । उन दोनों ने द्युलोक को भी प्रकाशित कर दिया और जैसे आकाश से ओले बरसते है उसी तरह अत्यधिक वेग से बाण समूह बरसने लगे । दोनों हरि के पुत्र ने युद्ध में अपना-अपना कौशल दिखाया ।

दोनों {प्रद्युम्न तथा पुरन्दर} कालातिपात के न सह सकने वाले रोष से पूर्ण थे तथा फैंके गए धनुष के बाणों के समूह से कभी जीर्ण न होने वाले पिंजरे के अन्दर दोनों की प्रच्छन्न हो गई है"[1] ।

यहाँ स्थायी भाव उत्साह है तथा आश्रय प्रद्युम्न तथा पुरन्दर है क्योंकि युद्ध का उत्साह दोनों के हृदय में है । दोनों का धनुष बाण फैंकना अनुभाव है ।

इन दोनों ईश्वरों {भगवान कृष्ण तथा इन्द्र} का रोष सहित युद्ध में अभिरूचि देखकर देवगण डर गए और स्वर्ग में दिशाओं से भाग खड़े हुए । पृथ्वी फट गई और उसमें चीत्कार पैदा हो गया । दोनों के धनुष की डोरी की टंकार से जैसे स्वर्ग लोक फट गया ।

इन्द्र के हस्तिवाहक ने उतनी देर में जब तक भगवान कृष्ण ने मुँह फेरा एक भारी गदा सात्यकि के वक्षस्थल पर मार दिया[2] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग - 13

2 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग - 21

यहां स्थायीभाव उत्साह है । आश्रय हस्ति वाहक तथा सात्यकि है कि और हस्तिवाहक का गदा मारना अनुभाव है क्योंकि आश्रय हस्विाहक की युद्ध के समय ये चेष्टा है ।

वह सात्यकि जन्म से कभी किसी से पराजित नहीं हुआ था तथा भगवान कृष्ण का जो दाहिना हाथ था आज उसका अपमान हुआ था अतः यह अपमान सात्यकि के द्वारा कैसे सहा जाता ।

"उस सात्यकि ने सूर्य के समान प्रचण्ड अपने भाले से इन्द्र के छत्र को आकाश की ओर उड़ा दिया और हाथी को पालने वाला वाहक (पीलवान) के पास जो आभूषण रूप में शर था उसको भी गिरा दिया ।"[1]

यहां स्थायी भाव उत्साह है तथा आश्रय सात्यकि है और आलम्बन इन्द्र तथा हस्विाहक है क्योंकि उसी कारण आश्रय सात्यकि में स्थायी भाव उत्साह जागृत हो रहा है अतः वह उसका आलम्बन है । उद्दीपन विभाव हस्विाहक का गदा मारना है क्योंकि इसी कारण से आश्रय में उत्साह भाव जागृत हो रहा है । अनुभाव इन्द्र के छत्र को उड़ाना तथा वाहक के शर को गिराना है क्योंकि ये आश्रय की चेष्टाएं है ।

सात्यकि के अदभुत कर्म से भगवान कृष्ण प्रसन्न हो गए और इन्द्र क्रोध से युक्त होकर हार माने लगे ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग - 25

"तब क्रोध से व्याप्त शरीर वाले इन्द्र ने अपने इस अपमान को दूर करते हुए से हाथ में बाण उठाया और जब तक कृष्ण के मान हानि की ईर्ष्या से बाण उठाया तब तक सात्यकि ने दूसरी दिशा से बाण काट दिया ।"[1]

यहाँ स्थायी भाव उत्साह है आश्रय इन्द्र तथा सात्यकि है अनुभाव इन्द्र का बाण उठाना तथा सात्यकि का बाण काटना है क्योंकि स्थायी भाव के समय आश्रय इन्द्र तथा सात्यकि की ये चेष्टाएं है ।

इस प्रकार युद्ध वर्णन में सात्यकि के पराक्रम का अद्भुत वर्णन किया गया है "साथ ही सात्यकि ने ऐरावत के हाँकने वाले के मस्तक प्रदेश को बाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया और इन्द्र के ध्वज के धूनन में विचार किया[2] ।

यहाँ स्थायी भाव उत्साह है आश्रय सात्यकि है क्योंकि स्थायी भाव उत्साह सात्यकि के हृदय में जागृत हो रहा है । आलम्बन इन्द्र तथा पीलवान है क्योंकि इसी कारण आश्रय सात्यकि में उत्साह जागृत हो रहा है अतः वह उसका आलम्बन है इन्द्र तथा पीलवान का बाण आदि चलाना उद्दीपन विभाव है क्योंकि इसी कारण सात्यकि में स्थायी भाव उत्साह जागृत हो रहा है पीलवान के मस्तक प्रदेश को छिन्न-भिन्न करना आदि अनुभाव है क्योंकि आश्रय की ये चेष्टाएं है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग - 28

2 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग - 29

वात्सल्य भाव :-
==========

पारिजातहरण महाकाव्य के दशमसर्ग के दो श्लोकों में इस भाव की अभिव्यक्ति हुई है । इन्द्र को कृष्ण का बड़ा भाई बताया गया है । भगवान् कृष्ण नारद से कहते हैं आप साम के द्वारा ही इन्द्र से देव वृक्ष की याचना कीजिए वे इन्द्र हमारे नाम वाले मित्र तथा बड़े भाई हैं । वे हमारे अर्थ की पूर्ति अवश्य करेंगे क्योंकि छोटे भाई पर स्वाभाविक वात्सल्य पूर्ण प्रेम होता है।[1]"

सम्बन्ध जो पारस्परिक भातृत्व रूप मिलाने वाला है उसके सम्मुख और किसी गुण की उपयोगिता नहीं । आरम्भ से ही उन्हें (इन्द्र को इस वृतान्त को सुनाकर कहिएगा कि उनकी स्नुषा अनुजवधू होने से पुत्रवधू के समान, शरीर मात्र से भिन्न मेरे प्राण के समान जो सत्यभामा है वह, इन्द्राणी के लिए दुलार पाने की योग्य है[2] । पति के प्रसन्न हृदय रहने पर हृदय से हर्षित रहने वाली जो अपने पति के प्रसाद रूप सुखों में स्वर्ग - नरक को भी समान ही मानती है तथा जो नित्य अपने पति गति का ही अनुसरण करने का निश्चय रखती है । इस प्रकार केवल पति के एक प्रेम मात्र गुण की चाह रखने वाली वही स्त्री है।" इस प्रकार सतियों की साधारण स्थिति को रुक्मिणी ने बताया[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 76

2 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 77

3 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 33

भाषा शैली :-

कवि उमापति विरचित पारिजातहरण महाकाव्य में कवि ने बहुत ही प्रांजल भाषा का प्रयोग अपने इस काव्य में किया है । उनकी भाषा स्वाभाविक रूप से अंकुरित पल्लवित और विस्तार प्राप्त वृक्ष की शाखायें जैसी मनोहर लगती है । विद्वान होने के कारण भाषा और शैली पर उनका पूर्ण अधिकार है । इनकी भाषा में कहीं भी कुछ अस्वाभाविक नहीं लगता है । चाहे प्रकृति वर्णन हो या ऋतु का वर्णन हो ।

कवि का पारिजातहरण महाकाव्य के तेरहवें सर्ग में सन्ध्या का वर्णन कितना स्वाभाविक सा जान पड़ता है - रात्रि में चन्द्रमा के उठने पर मानों ताराओं का हार पहने हुये बहुत अधिक रक्त वर्ण वस्त्र से अंग को ढके हुये तथा ढके हुये मुख की कान्ति वाली सन्ध्या मानों सूर्य का अनुसरण कर रही है[1] ।

कवि ने रात्रि की उपमा गर्भवती स्त्री से की है उस समय रात्रि गर्भवती स्त्री के समान प्रतीत होती थी उसका चन्द्रमा रूपी मुख पीला पड़ गया था उसके अंगों पर नक्षत्र रूपी आभूषण इने गिने ही रह गये थे और उसने अपनी भीतर वाले रूपी सूर्य को धारण कर रखा था[2] ।

कवि ने अपने काव्य का प्रारम्भ ही द्वारिका वर्णन से किया है । द्वारिका वर्णन में द्वारिका के राजमहलों का वर्णन भी किया है द्वारिका के बावड़ियों का तथा सरोवरों का वर्णन भी विभिन्न अलंकारों के माध्यम से इस

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - त्रयोदश - 6

2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 4

काव्य में किया गया है । द्वारिका के बावड़ियों और सरोवरों की तुलना नायक नायिका[1] से की गई है जो अत्यन्त ही स्वाभाविक लगती है ।

स्वर्ग का वर्णन तो बहुत ही स्वाभाविक और मनोहर है - "कनक पर्वत के शिखर के बीच इन्द्र नीलमणि के बने प्राकार के भीतर विशाल प्रांगण वाले जिसमें सभी दिग्पाल घूम रहे थे ऐसे इन्द्र के भवन में प्रवेश किया[2] ।

स्वर्ग वर्णन में कवि ने कुलक रीति से सुधर्मा सभा का भी वर्णन किया है ।

भगवान कृष्ण ने स्वयं उस इन्द्र की नगरी का अर्थात स्वर्ग के सौन्दर्य का वर्णन किया है । दिन में यहाँ के महलों में चन्द्रमा की चाँदनी रहती है जो रात में पृथ्वी में प्रकट हो जाती है । चन्द्रमा अमावस्या की रात को इस इन्द्र लोक में अपने कान्तिमण्डल को छुपाकर स्थित रहता है[3] ।

रैवतक पर्वत को सुवर्ण मय होना कवि परम्परावश इस काव्य में किया गया है । ऊपर छाए सघन बादलों से लदे दैदीप्यमान सुवर्णमय शिखरों से वह रैवतक पर्वत ऐसा जान पड़ता था जैसे भगवान शंकर अपने प्रशस्त हाथों पर हाथी का चमड़ा उठाए नाचने को तैयार हो[4] । भाव यह है कि पर्वत राजरैवतक भगवान कृष्ण की उपस्थिति में मानो हर्षातिरेक से नाचने के लिये भी उद्यत हो गया है ।

द्वारिका से रैवत पर्वत की यात्रा का वर्णन इस काव्य में किया गया है यद्यपि यह कोई विशेष यात्रा नहीं थी किन्तु यह रीति थी कि महाराजों की सपरिवार यात्रा ससैन्य ही होती रही, अतः कवि ने पारिजातहरण महाकाव्य

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 18, 19
2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 3
3 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचदश सर्ग - 5
4 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग -49

के तृतीय सर्ग में भगवान कृष्ण की इस यात्रा का सांगोंपांग वर्णन किया है क्रमशः सैनिक गति से चलते पैदल, घोड़े, रथ, हाथियों से युक्त विविध प्रकार के बाजों की उत्तेजना से बढ़ते बलवाली -चतुंरंगिणी सेना को वह वनमाली भगवान चतुरता के साथ बढ़ाते हुये चल रहे थे [1]।

कवि ने वस्तु वर्णन में द्वारिकापुरी, इन्द्रपुरी, रैवतक पर्वत तथा यात्रा का वर्णन महाकाव्य में चित्र सा अंकित कर दिया है और साथ ही अपने चित्तात्मक ज्ञान को प्रकट किया है ।

प्रकृति वर्णन में समुद्र का वर्णन त्रिवेणी आदि का बहुत स्वाभाविक वर्णन इस काव्य में किया गया है ।

"तरंगरूप भुजाओं को फैलाए दण्डवत् सर्वांग से पृथ्वी पर पड़ा गम्भीर ध्वनि के बहाने स्तुति पाठ करता समुद्र भगवान कृष्ण के प्रति साष्टांग प्रणत सा दिखाई दे रहा था [2]।

कवि ने त्रिवेणी का वर्णन कुलक रीति से किया है - इस प्रयाग भूमि में सूर्य पुत्री यमुना की घनी नीलतरंगों से आक्रान्त तथा लाल रंग में तरंगित सरस्वती को अंग में लिए स्वभाव से ही श्वेत वर्ण वाली जो गंगा शोभित हो रही है [3]। त्रिवेणी का प्राकृतिक वर्णन [4] भी तीन श्लोकों में कवि ने किया है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 6
2 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 79
3 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 42
4 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 61-63

शरदृतु तथा बसन्त ऋतु को तो बहुत ही स्वाभाविक और अत्यन्त ही मनोहारी चित्रण कवि ने अपने इस काव्य में करके अपनी अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया है -

शरदृतु और भगवान कृष्ण की प्रिया सत्यभामा की श्लेष तथा उपमा के माध्यम से तुलना बहुत ही सुन्दर है -

हे प्रिये । इस समय कोप रूप तम को हटाकर प्रसन्न हुई जड़ी भूत अभिप्रायों को स्वच्छ कर दिखाती हुई दुःखावस्था रूप पंक को सुखा देने से जिसके व्यवहार मार्ग शोभन हो गये है । खिलते कमल के समान मुख वाली सारस हंसों के समान मधुर भाषिणी गले के विशेष भूषण आदि उतर जाने से निर्मल उरोजों से शोभित आभासित प्रकाश है जिसका ऐसा कामदेव का प्रभाव जिसमें विलसित है । आशाओं में विस्फुरण लिये तुम (सत्यभामा) इस शरद ऋतु के समान हमें आक्रमण के लिये प्रेरित कर रही हो[1] ।

बसन्त ऋतु का अत्यन्त मनोरम तथा स्वाभाविक वर्णन पारिजातहरण महाकाव्य के एकविंश सर्ग में किया गया है -

"शिशिरजनितजाऽऽड्यं जातु यात्वप्रियं वः
प्रियशिशिरसुरम्ये मत्प्रभावे रमध्वम्,
अहमिह ऋतुराजस्त्वागतायाधिलोक,
नवसरमणीयां चेतनां धारयामि ।।[2]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - नवम सर्ग - 50, 51

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 22

इस स्वाभाविकता की पृष्ठभूमि में कवि का अनुभव और पाण्डित्य विद्यमान है । यही कारण है कवि उमापति के इस काव्य में अनेक अलंकार और भाव संयोजन की अभिव्यक्तियाँ अत्यन्त स्वाभाविक है और भावों की स्वाभाविकता ही उनका प्रमुख गुण है ।

काव्य के पंचम सर्ग में 22 श्लोकों में कुलक में त्रिवेणी का वर्णन[2] सातों विभक्तियों में करके कवि ने अपने व्याकरण शास्त्रीय पाण्डित्य को प्रदर्शित किया है ।

कवि उमापति की भाषा में वैदर्भी और गौडी रीति, विशिष्ट गुण प्रसाद, माधुर्य और ओज आदि का मनोहर प्रयोग हुआ है इनकी भाषा में छोटे-छोटे समासों का प्रयोग हुआ जिससे इनकी भाषा अत्यन्त ही सरल हो गई है और जनमानस की भाषा हो गई है ।

कवि उमापति की शैली सरल और प्रभावोत्पादक है । इनकी शैली संक्षिप्त और सुबोध है । वह किसी बात का लम्बा-चौड़ा वर्णन न करके सूक्ष्म और मार्मिक रूप से व्यंजना कर देते है । विषय को मार्मिक ढंग से जिस रूप में जितना रखना आवश्यक है, उतना ही वह प्रस्तुत करते हैं । इनकी व्यंजना को पूर्ण रूप से समझना सहृदय की सहृदयता पर निर्भर है ।

इनके काव्य में गुणों का मणिक कांचन योग हुआ है । इनकी रचना में माधुर्य, ओज और प्रसाद की अवतारणा का कोमल सामंजस्य है, प्रसाद गुण युक्त वैदर्भी का प्रयोग तो काव्य में सर्वत्र ही काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाने वाला है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 22

2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 42, 64

अप्रतिहत प्रवाह और सरल शब्दों के संयोजन से भाषा में सौन्दर्य आ गया है । इन्होंने प्रणयलीला, भगवान् की स्तुति के कोमल तथा युद्ध स्थल के भयंकर दोनों प्रकार के चित्र खींचने में दक्षता प्राप्त की है ।

वह वर्णन में असाधारण कुशल है । प्रत्येक वस्तु का सजीव वर्णन कवि उमापति के इस पारिजातहरण महाकाव्य में किया गया है । जैसा भी भाव है कवि की भाषा वैसी ही सरल एवं स्पष्ट है । प्रकृति वर्णन में तो बहुत ही पटु है । उन्होंने पर्वत, नदी, समुद्र, शरद, बसन्त, सन्ध्या, प्रभात, नगरी आदि का बहुत ही सुन्दर वर्णन इस काव्य में किया है ।

इनकी भाषा भावों तथा वर्ण्य विषय के अनुरूप सरल एवं सुबोध है । इनको पढ़ते ही श्लोक का भाव स्पष्ट प्रतीत होने लगता है । कवि ने मुत्तर, दरबार आदि अपने बनाए शब्दों का प्रयोग भी इस काव्य में किया है । यह उनकी अपनी विशेषता है ।

"समेत सामन्तसहस्रवाहिमुत्तरादियानैरधिसंकुलाजिरे ।।"[1]

अनेक सामन्तों की मोटर आदि विभिन्न सवारियों से जिसका प्रांगण भरा हुआ है । §मुत्तर"शब्द कवि का कल्पित मोटर के अर्थ में स्वरचित शब्द है ।

इनकी भाषा में स्थान-स्थान पर लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 52

"देवभूमि से उत्पन्न पुष्प, मेरी सौत को देकर मुझे, भिक्षा मांगने को कह रहे है । यह मेरे अत्यधिक अपकार से भरा इस प्रकार का परिहास कटे पर नमक छिड़कने के समान सहने योग्य नहीं है[1] ।

यदि इन्द्र मेरे किए अपने पराभव का स्मरण करें तो उससे हमारे अभीप्सित कार्य की सिद्धि ही है, क्योंकि पशु भी अपनी हानि के स्थान से डरता है, लोकोक्ति है —

"जाने गड्ढे में बैल भी पांव नहीं डालता[1] । इस प्रकार क्षारं क्षते क्षममिव क्षिपसि और "पशुश्च परिभूतिपदाद्बिभेति" आदि लोकोक्तियों का प्रयोग कवि ने किया है । स्थान-स्थान पर सूक्तियों का वर्णन करने से कवि की भाषा में मधुरता का समावेश और भी बढ़ गया है ।

"आमोदिनी सरसभावविकाररम्या, सन्दर्भशुद्धिपरिपुष्टगुणप्रसादा ।
सम्भूषिता स्रगिव संस्कृतिशालिनीभीर्हधाहिताश्रियमियं नकमान्येत[2] ।

कवि उमापति के अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक दिखता है । अभीष्ट अर्थ की अभिव्यंजना में अलंकार सहायक हुये हैं । अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष, अर्थान्तरन्यास, आदि विभिन्न अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग इस काव्य की शोभा को बढ़ाने में भी सहायक हुये है ।

रूपक, उपमा, श्लेष तथा अनुप्रास अलंकारों का प्रयोग एक ही श्लोक में कवि ने किस निपुणता के साथ किया है -

"परिस्फुरन्मीनमनोहरेक्षणाः क्षणे क्षणे स्रस्तदुकूलशैवलाः ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 7।

2 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 57

"फुदकते हुए मीन रूपी मनोहर एवं चंचल नेत्रों वाली क्षण-क्षण में खिसकते हुए वस्त्ररूप शैवाल से सुशोभित होने वाली तथा चिरकाल तक ऊँची जलराशि को उन्नत उरोजों के रूप में धारण करने वाली बावड़ियाँ नायिकाओं की भाँति किसके मन को नहीं हर लेती[1]। कवि अर्थान्तरन्यास के प्रयोग में बहुत सिद्धहस्त है। सैकड़ों अर्थान्तरन्यास - सुभाषित के रूप में प्रचलित हो गये है। कुछ सूक्तियों का वर्णन निम्न है -

"प्रस्ताव के बिना सन्तों का अनुग्रह किसी पर नहीं होता[2]। क्या पाँख निकल आने पर भी चींटी कभी चन्द्रबिम्ब को चूमती है[3]। भला घर के कोने में मिलते मधु के लिये दुर्गम गिरिशिखर पर चढ़ना किसको उचित है[4]। आदि विभिन्न सुभाषितों का अत्यन्त ही स्वाभाविक वर्णन कवि ने अपने इस काव्य में किया है[5]। कवि उमापति भावों के अनुकूल छन्दों का प्रयोग करते है प्रत्येक सर्ग में विभिन्न छन्दों का प्रयोग इस काव्य में किया गया है। सवैया, कवित्त तथा दोहा आदि हिन्दी के छन्दों का प्रयोग भी कवि ने किया है और अपनी अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया है।

वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, उद्गाथा, बसन्ततिलका, मालिकनी, उपजाति आदि विभिन्न छन्दों का प्रयोग इस काव्य में किया है।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 107

2 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 22

3 पारिजातहरण महाकाव्य - नवम सर्ग - 23

4 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 66

कवि उमापति के संवादों में दीर्घता नहीं हैं । पारिजातहरण महाकाव्य में स्थान-स्थान पर संवादों का वर्णन किया गया है । काव्य के एकादश सर्ग में नारद-इन्द्र में संवाद का अत्यन्त ही स्वाभाविक वर्णन किया गया है "बाद में इन्द्र ने नारद जी से कहा --

जैसा पहले ही मैंने सोचा था, वैसा उनका सही मत अब आप सत्य रूप में कह रहे हैं । इसलिये जाइये उनसे कहिये कि बिना युद्ध के उस वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं मिल सकता ।"[1]

काव्य के एकोनविंश सर्ग में कश्यप का भगवान कृष्ण से संवाद वर्णन मिलता है । इस प्रकार स्थान-स्थान पर संवाद का वर्णन कवि के कथानक का विस्तार करने वाला है तथा संक्षिप्त संवादों का वर्णन कवि की अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन करने वाला है ।

कवि उमापति ने पुराणों के कथानक का आधार लेकर आवश्यकतानुसार उन्हें परिवर्तित करके अपने पारिजातहरण महाकाव्य की रचना की । प्रस्तुत पारिजातहरण महाकाव्य शान्तरस प्रधान काव्य है । स्थान-स्थान पर भगवान की स्तुति का वर्णन इस काव्य में मिलता है जो कवि की ईश्वर की प्रति भक्ति भावना को प्रकट करता है काव्य के अट्ठारहवें सर्ग में भगवान कृष्ण के स्वयं भगवान् शिव की स्तुति करते हैं :-

दोनों नेत्र कमलों को मूँदकर शंकर पार्वती के चरण कमलों में अपने को स्थापित करके भक्तिपूर्वक गद्गद्‌ कण्ठ से भगवान की स्तुति किया । हे भगवन्! इस विषम स्थिति में हमारी सिद्धि के लिये प्रसन्न हो[2] । कवि उमापति के इस काव्य में महाकाव्य के नियमों का पालन सर्वांगीण हुआ है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 100

2 पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टादश सर्ग - 5

कवि उमापति की शैली पर दार्शनिकता का प्रभाव दिखाई देता है कवि ने अपने पारिजातहरण महाकाव्य में विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का वर्णन करके अपने दर्शन सम्बन्धी पाण्डित्य को प्रदर्शित किया है । सांख्य शास्त्र के तो वे पण्डित थे । सांख्य शास्त्र के माध्यम से कवि का त्रिवेणी वर्णन बहुत ही स्वाभाविक और कवि के दार्शनिक पाण्डित्य का परिचय देने वाला है ।

"यह एक ओर संसार की प्रकृति जन्य मलिनता ही यमुना है और दूसरी ओर उस परम पुरूष कीश्वेत विभूति ही गंगा है । इनके पदारविन्द की प्रेमिका यह सरस्वती नामक नदी इन दोनों को संहित कर रही है अर्थात प्रकृति पुरूष के संयोग को अनुराग भरी कवि सरस्वती जैसे बखान रही है[1] ।

काव्य के षष्ठ सर्ग में दर्शनशास्त्र के विभिन्न मतों का निरूपण किया गया है । गुण, लिंग आदि उपाधियों से रहित शुद्ध ज्ञान रूप परम ईश्वर स्वरूपिणी रूक्मिणी को कहा गया है । सांख्यमत वाले प्रकृति कहते है, वेदान्ती चिद्ब्रह्म्म बतलाते हैं, जो स्त्री पुरूष सामान्य का वाचक है वहीं माया भी कहकर प्रपंचित किया गया है । मीमांसक क्रिया कहते है । योगदर्शन वाले सिद्धि मानते है और तार्किक बुद्धि इच्छादि ईश्वर के गुणों में गिनकर गुणात्मकबुद्धि रूप में देखते है । पौराणिक परमेश महिषी पराम्बा कहते हैं[2] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य – पंचम सर्ग – 43

2 पारिजातहरण महाकाव्य – षष्ठ सर्ग – 41

संक्षेप में कहा जा सकता है कि महाभारत के समान इस काव्य का अंगीरस भक्ति अथवा शान्त है । अन्य रस अंग रूप में यहाँ वहाँ निष्पन्न हुए हैं । गौडीय और वैदर्भी रीति का काव्य में दर्शन होता है । ओजस्वी शब्द विन्यास उदार अलंकार-योजना, सर्वथा अभिनवभाव, सर्वथा अनवद्य संवाद इस काव्य की विशेषताएं है ।

"गुण-दोष एवं रीति"

गुण एवं रीति :-

काव्य की एक पहचान शब्दार्थ की सगुणता को माना गया है । आदि कवि बाल्मीकि की यह सूक्ति "शब्द और अर्थ की जिस उदारता और मनोरमता का संकेत करती है उसी को अलंकार शास्त्र ने औदार्य और माधुर्य गुणों की परिभाषा में प्रकट किया है[1] ।

संस्कृत के महाकवियों ने भी शब्द और अर्थ के गुण वैशिष्ट्य का परिचय यत्र-तत्र दिया है । महाकवि भारवि की इस सूक्ति अर्थात-किरातार्जुनीयम में जिस अर्थसम्पत और उक्तिविशुद्धि का निर्देश है वह तो अलंकार शास्त्र में अलंकार अथवा सौन्दर्य की द्विविध संभावनाओं के रूप में स्पष्ट प्रतिपादित है[2] ।

अलंकारवाद के प्रथमाचार्य "भामह ने गुणों का अनुशासन करते हुये जो यह कहा है "माधुर्यमभिवाच्छन्तः प्रसादं च सुमेधसः । समासवन्ति भूयांसि न पदानि प्रयुंजते[3] ।।

---

1 उदारवृत्तार्थपदैः मनोरमैस्ततस्स रामस्य चकार कीर्तिमान ।
समाक्षरैः श्लोकशतैर्यशस्विनो यशस्करं काव्यमुदारधीर्मुनि ।।"
-बाल्मीकि रामायणःबालकाण्ड 2, 42

2 किरातार्जुनीयम - 14, 5

3 आचार्यभामह का काव्यालंकार

उससे माधुर्य और प्रसाद के अतिरिक्त ओज की गुणरूप में मान्यता का सम्प्रदाय चल निकलता है ।

ध्वनिवाद की काव्यदृष्टि से देखते हुये आचार्य मम्मट ने काव्य का यह स्वरूप देखा । "तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलड़कृतीपुनः क्वापि।[1] वे शब्द और अर्थ काव्य कहे जाते है । जो दोषरहित हो, गुण युक्त हो और यदि रसाभिव्यंजक हो तो अलंकृत हो या नहीं । आचार्य मम्मट के अनुसार माधुर्य, ओज और प्रसाद गुण रसनिष्ठ है[2] ।

आचार्य मम्मट के अनुसार माधुर्य उसे कहते है । वह एक ऐसा आह्लाद अथवा आनन्द है जैसे कि श्रृंगार रस के आस्वाद का आनन्द । जिसमें सहृदय सामाजिक का मन पिघलता सा प्रतीत हुआ करता है और ऐसा लगा करता है जैसे उसमें कोई अलौकिक कोमलता व्याप्त हो गई हो[3] । और ओज वह गुण है जिसे सामाजिक हृदय का प्रज्वलन धधक उठना कहा जा सकता है जो कि वीर रस में स्वभावतः हुआ करता है और जिसमें ऐसा लगा करता है जैसे चित्त की सारी शीतलता अकस्मात् नष्ट हो गई और बदले में चित्त उद्दीप्त हो उठा ।" और प्रसाद गुण उसे कहते हैं जो सभी रसों का एक ऐसा धर्म है जिससे सामाजिक हृदय इस प्रकार भर उठता है जिस प्रकार अग्नि के द्वारा सूखाईन्धन अथवा जल के द्वारा के साफ कपड़ा[4] ।

---

1 मम्मट काकाव्यप्रकाश - प्रथम उल्लास - 4

2 काव्य प्रकाश - अष्टम उल्लास - 66

3 काव्य प्रकाश - अष्टम उल्लास - 68

4 काव्य प्रकाश - अष्टम उल्लास - 70

आचार्य वामन के अनुसार उक्ति वैचित्र्यं माधुर्यम् ।
अर्थस्य प्रौढिरोजः एवं अर्थवैमल्यं प्रसाद : ।।[1]

ध्वनिवादी आचार्य के द्वारा माधुर्यगुण श्रृंगारादि रसास्वाद में सहृदय हृदय की द्रुति से सम्बद्ध है । ओज गुण रौद्रादि रसास्वाद में सामाजिक चित्त की दीप्ति से सम्बद्ध है और प्रसाद गुण सर्वरस साधारण गुण है क्योंकि मन की प्रसन्नता सभी रसों के आस्वाद में सिद्ध है ।[2] पदों के संघटन या मेल को रीति कहते हैं जैसे मनुष्य के शरीर में विभिन्न अंगों का संस्थान या संघटन होता है वैसे ही काव्य के शरीर भूत शब्द और अर्थ का भी संघटन होता है । यह रीति काव्य के आत्म भूत तत्त्व रसादि का उत्कर्ष या उपकार कराती है ।

संस्कृत काव्य शास्त्रियों ने मुख्य रूप से तीन रीतियों का विश्लेषण किया है - 1- वैदर्भी रीति {2} गौडी रीति {3} पांचाली रीति

आचार्य वामन ने रीति को ही काव्य की आत्मा माना है - रीतिरात्माकाव्यस्य और रीति का लक्षण है -

"विशिष्टापदरचना रीतिः ।[3]
यहाँ विशिष्ट का अर्थ है गुणों से युक्त विशेषागुणात्मा"[4]
वामन के पूर्वदण्डी ने भी रीति का निरूपण किया है । उन्होंने रीति को मार्ग कहा है । और काव्य के वैदर्भ और गौड दो मार्ग बताए है[5]।

---

1 काव्यालंकार सूत्रवृत्ति - 3.2. 1-14
2 ध्वन्यालोक लोचन - 2.7
3 काव्यालंकार सूत्र वृत्ति - 1/2/5
4 काव्यालंकार सूत्रवृति - 1/2/6
5 अस्त्यनेको गिरा मार्गःसूक्ष्मभेदःपरस्परम् ।
तत्र वदर्भगौडी यौ वर्ण्येते प्रस्फुटान्तरो । -काव्यादर्श = 1/40

पुनः दण्डी ने वैदर्भ मार्ग के प्राण 10 गुणों का व्याख्यान किया है ये दस गुण है - "श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थ-व्यक्ति, उदारता, ओज, कान्ति और समाधि - ये दस गुण वैदर्भ मार्ग (काव्य) के प्राण है । गौडमार्ग के भी ये प्राण है किन्तु वहाँ इनका कुछ विपर्यय (लक्षण में उलट फेर) पायाजाता है[1] । वामन के गुण भी यही है । वैदर्भी काव्य गौड़ और पांचाल मार्ग से भिन्न होता है । भामह ने वैदर्भ काव्य की निम्न विशेषताएं बताई है - प्रसन्न (तुरन्त समझ में आने वाला) ऋजु (जिसमें अर्थ सीधे कहा गया हो) कोमल (सुनने में मधुर)[2] ।

वैदर्भ काव्य को प्रसाद गुण युक्त काव्य भी कह सकते है यही वैदर्भी रीति का अपना विशिष्ट अभिधान है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसमें अर्थ वक्रता और कथन की वक्रता नहीं होती ये भी उसमें रहते हैं पर प्रसन्न पदावली का प्रयोग उसकी सर्वोपरि विशेषता है ।

आचार्य वामन के अनुसार "समग्रगुणोपेतावैदर्भी"[3]

अर्थात माधुर्य और प्रसाद गुण से युक्त वैदर्भी रीति होती है ।

वैदर्भी रीति की मुख्य विशेषताएं है - मधुर शब्द, ललित रचना, समासों का सर्वथा अभाव या थोड़े समास युक्त पदों का होना तथा वर्ण माधुर्यगुण के व्यंजक होते है ।

ओज की कान्ति से युक्त गौडी नाम की रीति कही गई है-"ओजः कान्तिमती गौडीया"[4] ।

---

1 काव्यादर्श - 1/41-42
2 काव्यालंकार - 1/34
3 काव्यालंकार सूत्रवृत्ति - 1.2.11
4 काव्यालंकार सूत्रवृत्ति - 1.2.12

गौडी रीति में प्राय: समासों की सुदीर्घ परम्परा होती है । उद्भट रचना होती है और ओज प्रकाशक वर्ण होते है । वीर रस की रचना प्राय: इसी रीति में होती है ।

माधुर्य गुण से युक्त पांचाली रीति कही गई है –
"माधुर्यसौकुमार्योपपन्ना पांचाली"[1]

उक्त दोनों रीतियों में प्रयुक्त वर्णों से अवशिष्ट वर्णों द्वारा जो रचना की जाय और जिसमें पांच-छ: पदों तक के समास हो उसे पांचाली रीति कहते है । इसमें शब्द और अर्थ का मंजुल गुम्फन होता है । महाकवि बाण इस रीति के सर्वाधिक सफल आचार्य माने जाते है ।

कवि उमापति द्विवेदी विरचित पारिजातहरण महाकाव्य में काव्य के गुणों का मणिकांचन प्रयोग हुआ है ।उनकी रचनाओं में माधुर्य, प्रसाद ओज गुणों की अवतारणा का कोमल सामंजस्य हुआ है तथा वैदर्भी और गौडी रीति के समाहार का मनोहर प्रयोग हुआ है ।

साधारणतया इनकी भाषा में सर्वत्र प्रसाद गुण प्राप्त होता है कवि उमापति की वैदर्भी रीति प्रसाद गुण युक्त है । माधुर्य और ओज गुणों का भी समावेश हुआ है । इसमें प्रसंग के अनुकूल गुणों का प्रयोग है । श्रृंगार वर्णन में माधुर्य का और वीर रस में ओज का समावेश है । प्रसाद गुण तो सभी जगह है ।

---

1 काव्यालंकार सूत्र वृत्ति – 1.2.13

काव्य के दशम सर्ग में नारद के द्वारा भगवान् कृष्ण के प्रति कही गई यह युक्ति कवि उमापति के काव्य में प्रयुक्त गुणों का प्रदर्शन करती है । आमोदिनी सुन्दर गन्ध वाली, सरस भावों के विकास से रमणीय अथवा सरस स्वभाव तथा विकास से मनोहर, सन्दर्भ शुद्धि, पद विन्यास की स्वच्छता पक्ष में सम्यक् ग्रथन की सुरीति तथा पूर्ण रूपेण पुष्ट (माधुर्यादि) गुण सूत्र से युक्त, प्रसाद वाली, भलीभांति अलंकृत तथा संस्कार से शोभित माला के समान आपकी यह वाणी हृदय में रख लेने से किसकी श्री को नहीं बढ़ा देगी[1] ।

पारिजातहरण महाकाव्य में श्रृंगार वर्णन में माधुर्य गुण का समावेश है — इच्छानुसार बहने वाली वायु के आघात से क्षुब्ध हुए इन जलाशयों में जल की तरंगे उठती है - उन्हीं के व्याज से मानों उन नायक और नायिकाओं के अन्तःकरण में बढ़े हुये काम विकार के कारण इसकी लहरे उठ रही है तथा रसमग्न प्रेमी एकान्त वार्तालाप कर रहे है[2] ।

पारिजातहरण महाकाव्य के युद्ध वर्णन में ओजगुण युक्त गौडी रीति का प्रयोग हुआ है -

"अपनी सफलता के लिए निश्चय मत करो हे वीर ! पराक्रम के बिना समृद्धियां नहीं होती मैं (कृष्ण) तुम्हारे (इन्द्र के) बल को काट नहीं रहा हूँ । इसलिए गर्व से तुम मुझको (मेरी शक्ति को) नहीं समझ रहे हो[3] ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - दशम सर्ग - 56

2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 18

3 पारिजातहरण महाकाव्य - सप्तदश सर्ग - 6

काव्य के §20-24§, §20-28§, §17-3§, §17-10§, §17-18§, §17-32§, §17-52§, §17-70§ आदि श्लोकों में ओजगुण युक्त गौडी रीति का प्रयोग हुआ है ।

प्रसाद गुण युक्त प्रसन्न पदावली अर्थात वैदर्भी रीति का प्रयोग काव्य में सर्वत्र पाया जाता है । कानों से सुनते ही हम इस काव्य को स्पष्टतः ही समझ जाते है । वैसे दस गुणों का दण्डी ने वैदर्भ काव्य का प्राण कहा है पर उनमें भी प्रसाद गुण अर्थ व्यक्ति तथा ओजगुण काव्य में सर्वत्र उपलब्धहोते है ।

प्रसाद गुण तो सर्वत्र है । काव्य के निम्नलिखित श्लोकों में प्रसाद गुण मुख्य रूप से है । इनको पढ़ते ही श्लोक का भाव प्रकट हो जाता है । कवि का प्रसाद गुण युक्त वैदर्भी का प्रयोग बड़ा ही मनोहारी है ।

"प्रवृत्त सौख्ये युवरंजनैः क्वचितक्वचित्यप्रगीते लहरीभिरम्बुधेः ।"[1]

जिस§द्वारिकापुरी§ में कहीं तो युवक वृन्द का क्रीड़ा कौशलादि पूर्ण आनन्दमय व्यवहार चल रहा है[2] ।

"रुदितगला पिताधरांशिचरं प्रतिसर्वांकलयन्ति मातरः ।

दूध मुँहे बालकों को प्रत्येक गृह में मातायें गोद में उठा रही हैं[3] ।

"इरसा शिरसा भक्तया तरंगानलिलिंग्रा सः ।"

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 45

2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 49

3 पारिजातहरण महाकाव्य - चतुर्थ सर्ग - 11

उठी तरंगों का भक्ति पूर्वक हृदय तथा सिर से भी आलिंगन किया ।

अनुप्रास तथा श्लेष से मुक्त प्रसाद गुण युक्त वैदर्भी का मनोरम चित्रण कवि ने अपने काव्य में किया है ।

"संसार संतारक ! न त्वया त्वद्दृष्ट्या,
समाज्ये मयि च प्रयोज्यम् ।"

हे संसार के तारने वाले ! आपके दर्शन मात्र से कृतार्थ होने वाले हमारे प्रति आपके द्वारा यह प्रयोग योग्य नहीं है[1] ।

"पुत्रे कनीयसि चिरादनुरक्त मित्रे, देवे प्रभावधि गुरौ च रते
कलन्ते युक्ता न रिक्करोति - - - - - - - - ।"

छोटे पुत्र तथा चिरानुरागी मित्र और देवताप्रभु गुरू एवं अनुरागिणी अपनी स्त्री को छूछे हाथ देखना उचित नहीं[2] ।

बसन्तवर्णन में तो प्रसाद गुण युक्त वैदर्भी का प्रयोग काव्य की शोभा को बढ़ाने वाला है -

"अथ मलय समीर प्रेरिरत प्राक् स वीरं "
"सुरकुसमतरूं तं पारिजातं च प्रष्टा,
मधुरपि भुवि रन्तु साक मैषीन्मधुकना ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचम सर्ग - 3

2 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग - 6

उस पारिजातहरण को देखकर बसन्त भी पृथ्वी में रमण करने के लिए भगवान विष्णु के साथ हो गया[1]। इत्यादि। इस प्रकार इन श्लोकों में प्रसाद गुण युक्त वैदर्भी रीति का प्रयोग मुख्य रूप से है क्योंकि इनको पढ़ते ही श्लोक के भाव प्रकट हो जाते है।

हरिवंश पुराण के दो अध्यायों में पारिजातहरण[2] की कथा वर्णित है। कवि उमापति ने दूसरी कथा को आधार मानकर पारिजातहरण को महाकाव्य का रूप प्रदान किया। मूल स्रोत से प्राप्त कथा में अपनी उर्वरा कल्पना शक्ति द्वारा नवीन उद्भावनाएं करके इक्कीस सर्गों में निबद्ध किया।

पारिजातहरण महाकाव्य सभी काव्य गुणों से परिपूर्ण है। वस्तु संघटन, सामाजिक चित्रण, नगर वर्णन, यात्रा वर्णन, प्रकृति चित्रण, पात्र चित्रण, मान, प्रकृति का सूक्ष्म विश्लेषण, राजनीति के तत्वों का उद्घाटन, अलंकारों के उत्कृष्ट प्रयोग, पद लालित्य, भाव व्यंजना तथा रसाभिव्यक्ति, भाषा और शैली पर पूर्ण अधिकार, विभिन्न दार्शनिक विषयों का सरस विवेचन, ज्योतिष विज्ञान, पाक विज्ञान, नीतिशास्त्र ज्ञान, धर्मशास्त्र ज्ञान, पुराण शास्त्र ज्ञान, पक्षिविज्ञान, काम शास्त्र ज्ञान आदि विविध विषयों का अगाध पाण्डित्य आदि गुण कवि उमापति के पारिजातहरण महाकाव्य में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 20

2 हरिवंश पुराण - अध्याय 124 - 135

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कवि सम्भाषणों में सरल एवं स्पष्ट है इनके वर्णन में लम्बे लम्बे समासों के तथा लम्बे लम्बे वाक्य विन्यासों का प्रयोग नहीं हुआ है तथा इनके काव्य में वैदर्भी और गौडी रीति का अत्यन्त ही स्वाभाविक तथा मनोरम चित्रण हुआ है ।

दोष तत्व की विवेचना :-

काव्य कल्पना में सर्वथा स्वतन्त्र होते हुये भी कवि को कुछ नियमों अथवा बन्धनों के भीतर ही रहना पड़ता है । उसकी स्वच्छन्दता की कुछ नियत सीमाएं होती है । उनकी अपेक्षा करना उसका प्रमाद कहा जाता है और कवि के उस प्रमाद के कारण काव्य सौन्दर्य में ही कुछ न्यूनता प्रतीत होने लगती है । अतएव आचार्यों ने थोड़ी भी त्रुटि के लिए सर्वोच्च्य महाकवियों को भी क्षमा नहीं दी । दोषों का विवेचन करते समय उन्होंने भारवि, माघ तथा कालिदास तक की कृतियों से अनेक उदाहरण दिए ।

आचार्य भामह का अभिप्राय है एक भी दूषित पद काव्य के सौन्दर्य का विघातक है । न निगाघमवधवत् । विलक्ष्मणा हि काव्येन दुःसुतेनेव निन्द्यते।"[1]

आचार्य वामन का विचार है —

"गुण विपर्ययात्मानो दोषाः अर्थतस्तदवगमः । सौकर्याय प्रपंचः ।[2]

आचार्य आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त के अनुसार दोष को गुण का व्यतिरेक नहीं कहा जा सकता है - नाऽपिगुणेभ्योव्यतिरिक्तं दोषत्वम्"[3] आचार्य मम्मट के अनुसार दोष वह है जिसे काव्य के मुख्य अर्थ का विघात अथवा

---

1 काव्यालंकार - 1.11

2 काव्यालंकार सूत्र 2.1-3

3 ध्वन्यालोक लोचन, पृष्ठ 83

अपकर्ष कहा जाता है[1] । सरस काव्य में दोष के अपकर्ष होने का अभिप्राय है उसके द्वारा रस की अविलम्ब किंवा उत्कट प्रतीति में बाधा उपस्थित होना । सरस काव्य में यदि दोष होता है तो रस की प्रतीति नहीं होती ।

कुछ दोष तो ऐसे होते हैं जो साक्षात रस की प्रतीति में बाधा उत्पन्न किया करते है किन्तु वर्ण रचना शब्द और अर्थ के दोष ऐसे हुआ करते हैं जो परम्परयारस की प्रतीति में बाधा उत्पन्न किया करते है ।

इस प्रकार रस के अपकर्षक तत्त्व का नाम दोष है । ये दोष कई प्रकार के होते हैं - जैसे पददोष,वाक्यदोष, पदैकदोष,वाक्य-मात्रगामी दोष, अर्थ-दोष तथा रसादि दोष ।

कवि उमापति विरचित पारिजातहरण महाकाव्य के कुछ दोष तत्वों का विवेचन निम्नलिखित है ।

ख्याति विरुद्धता :-
===========

जहाँ कवि ख्याति के विरुद्ध कोई योजना करता है । वहाँ ख्याति विरुद्धता दोष माना जाता है[2] । वसन्त की परिचर्य्या की पूर्ति के लिए सभी लोकों में सहचरण के लिए वह कामदेव व्याप्त हो रहा था । उसके विरुद्ध विरही लोगों में क्रुद्ध होकर विरहियों के हृदय को भेदकर खिले हुये पलाशों के हृदय की पंखुडियो को मानों भेद दिया[3] ।

---

1 मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद्वाच्यः ।
उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्यास्तेन तेष्वपि सः ।।
-काव्यप्रकाश-सप्तम उल्लास -49

2 काव्य प्रकाश - सप्तम उल्लास - 55-264

3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकविंश सर्ग - 30

इस श्लोक में बसन्त ऋतु में पलाश पुष्प का खिलना बताया गया है । किन्तु यह लोक प्रसिद्धि के विरुद्ध है । लोक में ऐसा विश्वास है कि पलाश पुष्प बसन्त में नहीं खिलता ।

निरर्थक दोष :-

निरर्थक दोष वह है जिसे किसी पद का जैसे कि च, हि आदि का, केवल पादपूर्ति मात्र के लिए प्रयुक्त होना कहा जाता है - "निरर्थक पादपूरणमात्र प्रयोजनं चादिपदम् ।"[1]

पारिजातहरण महाकाव्य के कई श्लोक इस निरर्थक दोष के उदाहरण है :

तु-§1-19§, §9-5§, §ननु§ 1-25§, §11-60§ हि-§11-43§, §11-44§11-45§इति 4-81 व §4-83§§6-2§ आदि श्लोकों में निरर्थक दोषों का वर्णन मिलता है - "पदे पदेऽस्यस्तु मिथो मनोहरौ सदा रमेते -सरसीसरोवरौ[2] ।

क्लिष्ट्त्व दोष :-

"क्लिष्ट" दोष वह है जिसे किसी पद का विलम्ब से अपने अर्थ का प्रत्यायन करना कहा जाता है -

"क्लिष्ट यतो दुर्थप्रतिपत्ति र्व्यवहिता[3] ।

यथा - अधुनैव मुदा द्विजावली श्रुतिसन्मंगलमंग गायति ।
अरुणांशुकरंजिता दिशः परिशंसन्ति महोत्सवक्षणम्[4] ।

---

1 काव्यप्रकाश -सप्तमउल्लास-147
2 पारिजातहरण महाकाव्य - प्रथम सर्ग - 19
3 काव्य प्रकाश - सप्तम उल्लास- 158
4 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 24

यहाँ सत्यपित पद के द्वारा जो "सत्यभामा" अर्थ है वह विलम्ब से प्रतीत हो रहा है अतः यहाँ क्लिष्ट दोष है । इसके अतिरिक्त (1-5), (10-16) आदि श्लोकों में भी क्लिष्ट दोष है ।

प्रसिद्धिहतत्व :-
==========

प्रसिद्धिहतत्व का अर्थ है कवि प्रसिद्धि अर्थात् मञ्जीरादि के वर्णन में रणित, शिंजित, गुञ्जित आदि, पक्षियों के वर्णन में कूजित, रव, वासित आदि रतिक्रीड़ा के वर्णन में स्तनित मणित, भणित आदि और मेघ आदि के वर्णन में गर्जित रसित आदि का प्रयोग प्रसिद्धि के विपरीत (ऐसे प्रसंगों में) वाक्य की रचना किए जाने का[1] ।

रूद्रट के काव्यालंकार में ग्राम्य दोष के निरूपण-प्रसंग में ये पंक्तियाँ आती हैं :-

"मञ्जीरादिषु रणितप्रायान पक्षिषु च कूजितप्रभृतीन् ।
मणितप्रायान सुरते मेघादिषु गर्जित प्रायान् ।।"

दृष्ट्वा प्रयुज्यमानानेवं प्रायांस्तथा प्रयुञ्जीत ।
अन्यत्रैतेऽनुचिताः शब्दार्थत्वे समानेऽपि ।।"[2]

जिन्हें आचार्य मम्मट ने कुछ पाठ भेद के साथ कवि प्रसिद्धि के निदर्शन में उद्धृत किया है । यहाँ कवि प्रसिद्धि का अभिप्राय है कविजन के प्रयोग नियम का और इस प्रयोग नियम का उल्लघंन है । "प्रसिद्धिहतत्व"।

---

1 काव्य प्रकाश - सप्तम उल्लास - 2,242

2 काव्यालंकार - 6. 25-26

पारिजातहरण महाकाव्य के कई श्लोकों में पूरित, कूजित, मुदित, अलीयव, रुत आदि शब्दों का अनुचित प्रयोग मिलता है -

"इति स बहुशः श्रावं श्रावं विहङ्गमकूजित"[1]
मुखरोदडीयत खमावली रुता।"[2]

उपर्युक्त श्लोकों में पक्षियों के वर्णन में कूजित, रुत इत्यादि शब्दों का प्रयोग प्रसिद्धि के विपरीत किया गया है अतः यहाँ प्रसिद्धिहतत्व दोष है। इसके अतिरिक्त "रुत" §16-1§, § "पूरित" §2-18§, "अलीयत" §2-34§, "मुदित" §6-25§ आदि का प्रयोग भी,प्रसिद्धि के विपरीत हुआ है।

पुनरूक्तत्व दोष -
============

"पुनरूक्तत्व" अथवा शब्दतः प्रतिपन्न अर्थ के ही पुनः शब्दतः प्रतिपादनरूप दोष को पुनरूक्तत्व दोष कहते हैं।[3]

पारिजातहरण महाकाव्य में कई स्थानों पर पुनरूक्तत्व दोष का विवेचन मिलता है।

"रात्रि भर सुरतक्रीड़ा में साक्षी बनकर जो दीपक युवक-युवतियों का लालन-पालन करता रहा, वह उषाकाल में उन्हें निर्लज्ज सोए देख मानों लज्जित हो रहा है[4]। उपर्युक्त अर्थ को पुनः कवि दूसरे श्लोक में कहते हैं -

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 59
2 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वादश सर्ग - 32
3 काव्य प्रकाश - सप्तम उल्लास - 55-258
4 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 20

"एकान्त में निर्भयता के साथ रहकर, रातभर चलने वाली लज्जा शून्य रतिकेलियों की साक्षिता निभाकर, अपने रहते हुए भी दम्पति वर्ग को अन्धकार-रश्मियों से बँधे गए देख, दीपक मानों लज्जित हो रहा है।"[1]

यहाँ एक ही अर्थ को पुनः दूसरे श्लोक में कहा गया है अतः यहाँ पुनरूक्तत्व दोष है।

"सभी में समान व्यवहार रखने वाली जो बुद्धिमानों में उदारता है, सद्बुद्धि से उसके भाव छिपाए रखने पर भी अन्यत्र विशेष स्थान पर हठात् अन्तरंग - बहिरंग भाव से, संकुचित ही हो जाती है। विधाता ने सुधा को, पृथ्वी तथा स्वर्ग के समान रूप से भोगने योग्य बनाया ही नहीं।"[2]

उपर्युक्त अर्थ को ही पुनः निम्न श्लोकों में कवि कह रहे हैं --

"औदार्य्य आदि सद्गुणों की प्रवृत्ति समान रूप से सर्वसाधारण विषय में तब तक ही रहती है, जब तक कोई अन्य विशेष अपवाद का स्थान उपस्थित नहीं होता।"[3]

दक्षिण स्वरूप होने के कारण पुरुष उदारता जो सबके प्रति समान रूप से दिखाई देती है, उसके विशेष रूप से विभाजन करने पर यदि सर्वथा सुन्दर में पक्षपात हो जाता तो उसमें कौन रुकावट है।[4]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 21

2 पारिजातहरण महाकाव्य - नवम सर्ग - 9

3 पारिजातहरण महाकाव्य - नवम सर्ग - 10

4 पारिजातहरण महाकाव्य - नवम सर्ग - 11

"पुरूष में समझदारी रहे, गुरूत्व भी रहे, समझदारी भी पूरी रहे, अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति भी हो, सारी सम्पत्ति रहे, अच्छा विवेक भी हो, यह सभी रह सकता है किन्तु उसमें अनेक प्रिय वस्तुओं में एक रसता समान स्नेह म कैसे रह सकता है । कदापि नहीं ।"[1]

उपर्युक्त श्लोकों में एक ही अर्थ को पुनः कई श्लोकों में कहा गया है अतः यहाँ पुनरूक्तत्व - दोष है ।

इस समय भौमासुर नामक शत्रु के साथ वैर हो जाने से विषाद में पड़ा मुझे सर्वथा असमर्थ मान, इसके अनुसार हठात् मुझे परास्त कर स्वर्ग का परमधन पारिजात वृक्ष रूप रत्न को लूट लेना चाहते हैं ।"[2]

ऊपर के श्लोक का अर्थ निम्न श्लोक में भी व्यंजित है -

"भौमासुर के दुष्कर्म से विषाद में पड़ा मुझे जानकर ही वे नीति के अनुसार मेरे पर चढ़ाई कर देने के लिए वृक्ष की याचना रूप एक व्याज(कपट) रच रहे हैं ।"[3]

यहाँ एक ही अर्थ पुनः दूसरे श्लोक में व्यंजित है, अतः यहाँ पुनरूक्तत्व दोष है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - 12

2 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 58

3 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 59

छन्द योजना

छन्द की गणना वेद के छः अंगों में होती है । इसे वेद का चरण बताया गया है - "छन्दः पादौ तु वेदस्य ।[1] जैसे चरणविहीन व्यक्ति चल फिर नहीं सकता, उसी प्रकार छन्द के बिना वेद अथवा कोई भी काव्य-ग्रन्थ गतिशील नहीं हो पाता है । शिक्षा, कल्प, निरूक्त व्याकरण, ज्योतिष तथा छन्द-वेद के इन छःअंगों में परिगणित होने के कारण छन्द-शास्त्र तथा छन्द की प्राचीनता स्वतः सिद्ध है । वेदों में प्रायः सर्वत्र त्रिष्टुप, जगती और विराटस्थाना आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है । यजुर्वेद के गद्यस्थलों को छोड़कर वेद संहिताओं का अधिकांश छन्दों में ही व्यवस्थित है ।

जैसे व्याकरण शास्त्र के सूत्र पाणिनि ने शिक्षाशास्त्र-प्रतिशाख्य के सूत्र शौनकादि ने कल्पशास्त्र के सूत्र आपस्तम्ब, पारस्कर तथा बोधायन आदि ने तथा कामशास्त्र के सूत्र वात्स्यायन ने लिखे ठीक उसी प्रकार छन्द-शास्त्र के भी सूत्र "महर्षि-पिंगल" ने लिखे । इसीलिए छन्द शास्त्र को कभी कभी लक्षण या पिंगल शास्त्र भी कहते हैं ।

चूँकि वेदमंत्रों की रचना छन्दों में हुई अतएव इसी अभिप्राय को लेकर छन्द शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है । "छादयन्ति ह वाएवं पापात् कर्मण", अर्थात पापकर्म से जो इसको मन्त्र निवारित करते हैं, वे छन्द हैं ।

---

1 "छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरूक्तं श्रोत्रमुच्यते ।।
शिक्षाघ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ।।

-पाणिनीय - शिक्षा

निरूक्त के दैवत काराठु में लिखा है - "अच्छादन अथवा नियमन के ही कारण छन्द को छन्द कहते हैं ।" यह अच्छादन किसका होता है । उत्तर है - भाव अथवा रस का । कविता [पद्य] के चारों चरण काव्यरस की सीमा रेखा होते हैं ।

"चदि आह्लादने [भ्वादिगण धातु - 70] से भी छन्द शब्द निष्पन्न माना गया है । चन्द्रयति आह्लादयति इति छन्दः अर्थात जो पाठकों को आह्लादित कर दें । यहाँ चदेरादेश्च छः [उपादि सूत्र] नियम से च का छ हो गया है असुन प्रत्यय जोड़ दिया गया है ।

भरत के अनुसार काव्यबन्ध दो प्रकार का होता है ।

[1] नियताक्षर-बन्ध [2] अनियताक्षर -बन्ध

नियताक्षर बन्ध का तात्पर्य है, ऐसी बन्ध या रचना जिसमें अक्षर नियत हो सुनिश्चित हो।"

"नियतानि निश्चितानि अक्षराणि यस्मिन् स बन्धः
नियताक्षर बन्धः ।

इसी नियताक्षर बन्ध को पद्य-बन्ध भी कहते हैं अक्षरों को एक निश्चित क्रम तथा संख्या में व्यवस्थित करने से रचना में [क] संगीतात्मकता

---

1 "छन्दांसि छादनात् ।" -दैवत-काराठु [अध्याय-7 तृतीयापाद]

(ख) लयवाहिता और (ग) सहजप्रवाह आदि काव्यात्मक विशेषताएं स्वतः उत्पन्न हो जाती है । फलतः रस पिपासु पाठक की पद्य के प्रति एक नैसर्गिक अभिरुचि बन जाती है ।

पद्य का व्युत्पत्ति परक अर्थ है -

पदम् चरणम् अर्हतीत पद्यम्" अर्थात जो चरणों में व्यवस्थित हो वही पद्य है चरणों की व्यवस्था गद्य में नहीं होती ।

अनियताक्षर बन्ध (गद्य) में ये विशेषताएं नहीं उत्पन्न हो पाती फलतः गद्य लिखकर सहृदय पाठकों को आकृष्ट कर पाना प्रायः असम्भव होता है ।

इस प्रकार नियताक्षर बन्धु अथवा पद की रचना के लिए ही छन्द शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता होती है । छन्दों के ज्ञान के लिए वेदाध्ययन अथवा अध्यापन करने वाले व्यक्ति की गर्हणा करते हुए कहा गया है ।

" यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दो दैवत्-
विनियोगेन ब्राह्मणेन मंत्रेण याजयति
वाडध्यापयति वा स स्थाणुमर्च्छति गर्तं वा
पद्यते प्रमीयते वा पापीयान् भवति ।
यातयामान्यस्यच्छन्दांसि भवन्ति इति ।।"

छन्दों के प्रयोग में भी कविउमापति अत्यन्त कुशल है । उनके सबसे प्रिय छन्द वंशस्थ तथा वसन्ततिलका है । उन्होंने पारिजातहरण महाकाव्य के कई सर्गों में वंशस्थ तथा बसन्ततिलका का प्रयोग किया है । काव्य के प्रथम, पंचम, पंचदश, सप्तदश अष्टादश और एकोनविंश सर्ग में वंशस्थ छन्द का

प्रयोग तथा नवम, दशम, षोडश, विंश तथा एकविंश सर्ग में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग किया है । काव्य में मालिनी छन्द का तृतीय स्थान है काव्य के द्वादश, त्रयोदश तथा एकविंश सर्ग में मालिनी छन्द का प्रयोग कवि ने किया है । इसके अतिरिक्त काव्य के द्वितीय सर्ग में गीति, तृतीय सर्ग में द्रुत विलम्बित, षष्ठ में पुष्पिताग्रा, सप्तम में रथोद्धता, अष्टम में इन्द्रवज्रा, एकादश में स्वागता तथा चतुर्दश में उपजाति छन्द का प्रयोग कवि ने किया है । काव्य में लम्बे छन्दों का प्रयोग सीमित मात्रा में किया गया है । जैसे पुष्पिताग्रा तथा मालिनीछन्द का प्रयोग तीन सर्गों में मिलता है ।

इसके अतिरिक्त कवि ने हिन्दी के छन्दों का प्रयोग भी काव्य के पंचदश सर्ग में किया गया है । जैसे सवैया कवित्त तथा दोहा छन्द का प्रयोग दस श्लोकों में किया गया है ।

कवि उमापति के छन्दों में भी बड़ा लालित्य है उनमें एक समर्थ कवि की भाँति भाषा का सहज व्यवस्थापन देखने को मिलता है । उनके द्वारा प्रयुक्त मुख्य छन्दों के लक्षण निम्न है ।

वंशस्थ छन्द
=========

वंशस्थ छन्द का प्रयोग पारिजातहरण महाकाव्य के कई सर्गों में किया गया है । वंशस्थ छन्द कवि का प्रिय छन्द है ।

जिसका लक्षण है - जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ[1] ।

---

1 वृतरत्नाकर - 3/46

वंशस्थ के प्रत्येक चरण में जगण ‖ ।ऽ। ‖ जगण ‖ ऽऽ। ‖ जगण ‖ऽऽ। ‖ तथा रगण ‖ ऽ।ऽ ‖ होते हैं । उदाहरण के लिए पारिजातहरण महाकाव्य के प्रथम सर्ग का एक श्लोक प्रस्तुत है ।

जगत्कलाकौशल सारशालिनीमणि व्रजावासिततोरणस्रजाम् ।[1]

इस श्लोक के प्रत्येक चरण में । जगण, । तगण, । जगण तथा । रगण है ।

वसन्ततिलका

पारिजातहरण महाकाव्य के कई सर्गों में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग कवि ने किया है काव्य में इस छन्द का द्वितीय स्थान है ।
जिसका लक्षण है –

"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।[2]

वसन्ततिलका के प्रत्येक चरण में तगण ‖ऽऽ।‖ भगण ‖ ऽ।। ‖ जगण ‖ ।ऽ। ‖ जगण ‖ ।ऽ। ‖ तथा दो गुरू ‖ ऽऽ ‖ होते हैं ।

उदाहरण के लिए पारिजातहरण महाकाव्य के विंश सर्ग का एक श्लोक प्रस्तुत है --

"सर्वामरप्रसविनी सविनी मुदा नं ।[3]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य – प्रथम सर्ग – 9

2 वृत्तरत्नाकर – 3/79

3 पारिजातहरण महाकाव्य विंशसर्ग – 8

इस श्लोक प्रत्येक चरण में । तगण, । भगण, । जगण, । जगण तथा दो गुरू हैं ।

मालिनी

पारिजातहरण महाकाव्य में मालिनीछन्द का तृतीय स्थान है । मालिनीछन्द का प्रयोग काव्य के तीन सर्गों में हुआ है जिसका लक्षण है ।

"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः[1]

मालिनी के प्रत्येक चरण में --

(। । ।) जगण, (। । ।) जगण, (ऽ ऽ ऽ) भगण, ( ) ( ) यगण, (।ऽ ।) यगण, होते हैं आठवें तथा अन्त में विराम होता है ।

पारिजातहरणमहाकाव्य के त्रयोदश सर्ग से लिया गया श्लोक उदाहरण के लिए प्रस्तुत है-

" अभिनयति चरित्रं दैष्टिकं चित्रचित्रं गतदिनसमयोऽयं देवि ।
ते दृश्यमानः ।।[2]

प्रस्तुत श्लोक के प्रत्येक चरण में ।, नगण ।, नगण, ।, मगण ।, यगण तथा ।, यगण है और अन्त में विराम है ।

---

1 वृत्तरत्नाकर 3/87

2 पारिजातहरण महाकाव्य - त्रयोदश सर्ग - 30
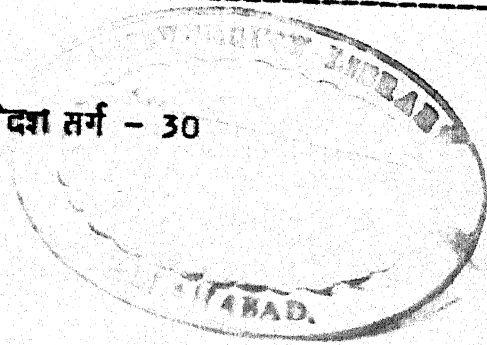
उद्गाथा या गीति

पारिजातहरण महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में गीति छन्द का प्रयोग हुआ है जिसका लक्षण है -

आर्या प्रथमदलोक्त यदि कथमपिलक्षणं
भवेदुभयो:
वलयो:कृतयतिशोभां तां गीतिं गीतवान्
भुजङ्गेश ।[1]

उदाहरण के लिए -

" य उलूकमुखाः सुखान्यथा चक्लन्ताम सपक्ष
पातिनः ।
अपितैरनुभूयते पुरा निजदुर्गन्ति फलन्दिवान्धता ।।[2]

द्रुतविलम्बित

पारिजातहरण महाकाव्य का तृतीय सर्ग द्रुतविलम्बित छन्दोबद्ध है, जिसका लक्षण है —

"द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ ।[3]

द्रुतविलम्बित के प्रत्येक चरण में नगण (। । ।) भगण (ऽ । ।) भगण (ऽ । ।) तथा रगण (ऽ । ऽ) होते हैं ।

---

1 वृत्तरत्नाकर - 2/8

2 पारिजातहरणमहाकाव्य - द्वितीय सर्ग - 53

3 वृत्तरत्नाकर - 3/49
छन्दोमंजरी - 3/10

उदाहरण —

"नभासि भूरि विभासित भास्तोऽसितविभेऽनुचकार
रूचे श्रयम् ।[1]

प्रस्तुत श्लोक के प्रत्येक चरण में । नगण, । भगण, । भगण तथा । रगण है ।

पुष्पिताग्रा

पारिजातहरणमहाकाव्य के षष्ठ सर्ग में पुष्पिताग्रा छन्द का प्रयोग किया गया है, जिसका लक्षण निम्न है —

अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ
जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।[2]

जिस छन्द के विषम में नगण, नगण, रगण, यगण और सम में नगण, जगण, जगण, रगण, तथा एक गुरू होता है ।

उदाहरण के लिए --

इतिहरिवचनं निशाम्य देवे -
श्वरपरिवांछित कार्य सिद्धिमूलम् ।
प्रमुदितमनसा स सत्यभामा
गृहगमने कृतनिश्चयः पुराऽगात् ।।[3]

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - तृतीय सर्ग - 17

2 वृत्तरत्नाकर - 4/10
छन्दोमंजरी - 3/12

3 पारिजातहरण महाकाव्य - षष्ठ सर्ग -5

इस श्लोक के विषम चरण में --

। नगण, । नगण, । रगण, । यगण तथा सम में । नगण, । जगण, । जगण, । रगण तथा एक गुरू है ।

रथोद्धता

पारिजातहरण महाकाव्य के सप्तम सर्ग में रथोद्धता छन्द का प्रयोग मिलता है जिसका लक्षण है --

"रान्नराविह रथोद्धता लगौ ।[1]

रथोद्धता के प्रत्येक पाद में ।। वर्ण होते हैं --

। रगण, । नगण, । रगण, । लघु तथा । गुरू ।

उदाहरण के लिए

काव्य के सातवें सर्ग का एक श्लोक प्रस्तुत है --

"तावदेव विवशाऽन्तराऽपि तत्सत्क्रियार्थमिति
कृत्यशालिनी ।।[2]

प्रस्तुत श्लोक के प्रत्येक पाद में ग्यारह वर्ण हैं - । रगण, । नगण, । रगण, । लघु तथा । गुरू हैं ।

इन्द्रवज्रा

पारिजातहरण महाकाव्य का अष्टम सर्ग इन्द्रवज्रा छन्दोबद्ध हैं ।

---

1 वृत्त रत्नाकर - 3/38

2 पारिजातहरणमहाकाव्य - सप्तम् सर्ग - 10

जिसका लक्षण हैं --

"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः "[1]

इसके प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण होते हैं - दो तगण , । जगण तथा दो गुरू वर्ण ।

उदाहरण के लिए --

विज्ञाय सा विज्ञतमाऽथ नाथं निजं
तमायान्तमतर्कितं प्राक् ।[2]

इस श्लोक के प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण हैं - । तगण , । तगण , । जगण तथा दो गुरू ।

स्वागता
======

पारिजातहरण महाकाव्य का एकादश सर्ग स्वागता छन्दोबद्ध है, जिसका लक्षण निम्न है --

"स्वागतेति रनभाद्गुरुयुग्मक् ।"[3]

इस छन्द ये प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं - । रगण , । नगण, । भगण तथा दो गुरू तथा चरणान्त में यति ।

उदाहरण के लिए -

"कश्यपाय तपते गुरवे ते केवलं हि कुशलं कथयित्वा ।

---

1 वृत्तरत्नाकर - 3/28
  छन्दोमंजरी - 211

2 पारिजातहरण महाकाव्य - अष्टमसर्ग - 29

3 वृत्तरत्नाकर - 3/39

तत्प्रवृत्तिमुपशौरि विवेद दारकात इह मेऽधिगमोऽस्ति ।।"[1]

इस श्लोक के प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर हैं --

। रगण , । भगण तथा दो गुरु और चरणान्त में यति ।

पारिजातहरण महाकाव्य के पंचदश सर्ग में हिन्दी छन्दों का भी प्रयोग मिलता है -

सवैया

यह अत्यन्त लोकप्रिय वर्णिक छन्द है । यह चार चरणों का तुकान्त छन्द होता है । इसके प्रत्येक चरण में 7 भगण और अन्त में दो गुरु होते हैं[2] ।

उदाहरण के लिए -

" सुन्दरमायतनं हि पुरन्दरदम्पतिस्वैरविलासरतीनाम्
नन्दनमाकरितं हरियन्दनमुख्यसुरद्रु सुरव्रततीनाम् "[3]

इस श्लोक के प्रत्येक चरण में 7 भगण (S।। S।। S।। S।। S।। S।। S।।) हैं तथा अन्त में दो गुरु (SS) हैं । अतः यह सवैया छन्दोबद्ध है ।

---

1 पारिजातहरण महाकाव्य - एकादश सर्ग - 34

2 भाषा भूषण - पृ0 230

3 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचदश सर्ग - 49

कवित्त

इस छन्द के प्रत्येक चरण 33 वर्ण होते हैं[1] । उदाहरण के लिए --

"ऋतवोऽमी धृतदिव्यशरीरा: । प्रेरितपावनरम्यसमीरा: ।
देववनीमनिशं सेवन्ते । काव्यनुभूतिरमूदेवंते ।।"[2]

प्रस्तुत श्लोक के प्रत्येक चरण में 33 वर्ण हैं । अत: यह कवित्त छन्दोबद्ध है ।

दोहा

इस छन्द के पहले और तीसरे अर्थात् विषम चरणों में तेरह तथा दूसरे और चौथे अर्थात सम चरणों में ग्यारह मात्राएँ होती हैं । कुल मिलाकर 24-24 मात्राएँ होती हैं ।[3]

उदाहरण के लिए --

"रत्नमयी दिव्या धरा येयं पुरो विभाति
वनाधारिता भूतभूषाधर्म्यं न दधाति ।।"[4]

इस श्लोक के ऊपर दोनों चरणों में कुल मिलाकर 24 मात्राएँ हैं तथा नीचे दोनों चरणों में कुल मिलाकर 24 मात्राएँ हैं अत: यह दोहा छन्दोबद्ध श्लोक है ।

xxxx

---

1 भाषा भूषण - पृ0 230

2 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचदश सर्ग - 57

3 भाषा - भूषण - पृ0 227

4 पारिजातहरण महाकाव्य - पंचदश सर्ग - 51

" कूले कलिंदनन्दिन्याः मूलेवटतरोरयम् ।
भाति भारति तेऽगम्यः कोऽपि गोपीपतिः परः ।।"

— कवि उमापतिद्विवेदी

सहायक - ग्रन्थावली

1. हरिवंश पुराण
2. महाभारत - महाकवि व्यास
3. शतपथ ब्राह्मण
4. वायु पुराण
5. अग्निपुराण
6. विष्णु पुराण
7. कूर्म पुराण
8. ब्रह्म पुराण
9. पद्म पुराण
10. गीता
11. देवी भागवत
12. भागवत पुराण
13. पारिजातहरण नाटक
14. श्रीमद्भगवद्गीता
15. कठोपनिषद्
16. मनुस्मृति
17. शुक्ल यजुर्वेद
18. शतपथ ब्राह्मण
19. व्यास भाष्य योगसूत्र
20. श्वेताश्वतरोपनिषद्
21. विद्वन्मनोरंजनी
22. ऋग्वेद संहिता
23. पंचदशी

24. रघुवंश

25. पाणिनीय शिक्षा

26. सांख्यतत्त्व - कौमुदी

27. सांख्य सूत्र

28. सांख्य कारिका

29. सांख्यदर्शन - महर्षि कपिल

30. सांख्य तत्त्व सुबोधिनी

31. न्याय सूत्र

32. वैशेषिक सूत्र

33. तर्क भाषा

34. तर्क संग्रह

35. वेदान्त सार

36. वाचस्पत्यम्

37. ब्रह्मसूत्र पर वेदान्त कल्पतरू परिमल

38. साहित्यदर्पण - विश्वनाथ कविराज

39. नाट्यशास्त्र - भरतमुनि

40. काव्यादर्श - आचार्य दण्डी

41. काव्यालंकार - आचार्य भामह

42. काव्यालंकार सूत्रवृत्ति - आचार्य वामन

43. साहित्यदर्पण की शालग्राम शास्त्रीकृत विमलानाम की हिन्दी टीका

44. ध्वन्यालोक - आनन्दवर्धन

45. काव्यालंकार - आचार्य रूद्रट

46. काव्यप्रकाश - आचार्य मम्मट

47. काव्यानुशासन

48. कविकण्ठाभरण – आचार्य क्षेमेन्द्र

49. काव्यमीमांसा – राजशेखर

50. हिन्दी ध्वन्यालोक

51. गुणालंकार विधमैव सरस्वती

52. अभिनव भारती (नाट्यशास्त्र पर टीका)

53. अभिनव गुप्त ध्वन्यालोक लोचन

54. चन्द्रालोक – जयदेव

55. आचार्य दण्डी एवं संस्कृत काव्य शास्त्र का इतिहास दर्शन

56. भारतीय साहित्य शास्त्र

57. वक्रोक्तिजीवित – कुन्तक

58. काव्य प्रकाश – डा० सत्यव्रत सिंह

59. चित्र मीमांसा – अप्पयदीक्षित

60. छन्दोमंजरी

61. वृतरत्नाकर

62. छन्दांसि छादनात् – दैवत कारन्ठ

63. छान्दोग्य

64. काव्यालंकार सार संग्रह

65. भाषा भूषण

+
+++
+